डॉ॰ शुकदेव प्रसाद चतुर्वेदी

ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार



3-2

ज्योतिषशास्त्र में रोगविचार

लेखक

डॉ० शुकदेव प्रसाद चतुर्वेदी

एम० ए०, ज्योतिषाचार्य

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली :: वाराणसी :: पटना :: मद्रास

कार्यालय : बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ११० ००७

शाखाएँ : ☐ चौक, वाराणसी–२२१ ००१ (उ० प्र०)

☐ अशोक राजपथ, पटना–८६४ ००४ (बिहार)

☐ ६ अपरस्वामी कोइल स्ट्रीट, मद्रास ६०० ००४

प्रथम संस्करण १९८४

मूल्य { रु० ६५ (सजिल्द)
रु० ४५ (अजिल्द)

श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली ७ द्वारा प्रकाशित तथा
अजन्ता कम्पोजिंग वर्क्स, भूतभैरव, वाराणसी द्वारा मुद्रित

–० प्राक्कथन ०–

प्रायः प्रत्येक रोगी के मन में रोग की साध्यता, असाध्यता, कालावधि एवं परिणाम के बारे में अनेक भय एवं भ्रान्तियाँ रहती हैं, जिनसे उसे रोग की तुलना में कई गुना अधिक कष्ट मिलता है और वह बेचैन सा हो जाता है। यदि इनके बारे में उसको एक निश्चित जानकारी करा दी जाय, तो उक्त भय, भ्रान्ति एवं बेचैनी काफी हद तक दूर हो जाती है। इस सुनिश्चित जानकारी मात्र से रोगी के मन में एक नई आशा का संचार किया जा सकता है और इस स्थिति में उसे चिकित्सा से अधिकतम लाभ मिल सकता है।

किन्तु उक्त प्रश्नों के बारे में सुनिश्चित जानकारी कैसे हो? यह एक ऐसा प्रश्न है, जो अनेक बार मेरे सामने आया-और अन्त में मैंने विचार किया कि जिस प्रकार ज्योतिष शास्त्र के द्वारा जीवन के सभी पहलुओं का विचार किया जाता है, उसी प्रकार इस शास्त्र के द्वारा उक्त प्रश्नों का भी विचार किया जाय। ऐसा निश्चय कर मैं इस शोधकार्य में प्रवृत्त हुआ। 'ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार' यह गन्थ इस दिशा में किया गया एक एक लघुप्रयास है।

नौ अध्यायों में विभक्त इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में ग्रहों का मानव जीवन पर प्रभाव, ग्रहों के प्रभाव को जानने के साधन, ज्योतिष एवं कर्मवाद, ज्योतिष एवं आयुर्वेद, रोगोत्पत्ति के कारण एवं ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार की ऐतिहासिक परम्परा का विवेचन किया है। इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में रोगों की जानकारी के प्रमुख उपकरण, योग, उसके भेद एव उसके मुख्य तत्व तथा रोगविचार के प्रसंग में ग्रह, राशि एवं भावों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय अध्याय में रोग-परिज्ञान के सिद्धान्त तथा रोगों का वर्गीकरण, तृतीय अध्याय में जन्मजात रोग, चतुर्थ अध्याय में दृष्ट निमित्तजन्य आकस्मिक रोग, पंचम एवं षष्ठ अध्याय में अदृष्टनिमित्तजन्य शारीरिक रोग तथा सप्तम अध्याय में मानसिक रोगों का ग्रहयोगों के आधार पर विस्तृत विवेचन किया गया है। अष्टम अध्याय में रोगोत्पत्ति के सम्भावित समय का विचार और नवम अध्याय में रोगों का साध्यासाध्यत्व, रोग-समाप्ति का काल एवं रोगनिवृत्ति के उपायों का विचार किया गया है। इस अध्याय के अन्त में उपसंहार में ज्योतिष शास्त्र में रोगविचार की प्रक्रिया की समीक्षा की गई है।

संस्कृत स्वाध्याय तथा ज्योतिष विज्ञान मन्दिर के निदेशक डा० गिरिधारीलाल गोस्वामी एवं दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्राध्यापक डा० सत्यव्रत शास्त्री का मैं हृदय से आभारी हूँ–जिनके मूल्यवान निर्देशन, स्पष्ट आलोचना एवं सतत प्रोत्साहन के बिना यह कार्य पूरा नहीं हो सकता था। डा० गोस्वामी ने

अत्यधिक व्यस्तता एवं अस्वस्थता के बावजूद भी सहर्ष समय एवं अवसर दिया-उनकी इस उदारता के प्रति धन्यवाद व्यक्त करने के लिये उपयुक्त शब्दों का अभाव प्रतीत हो रहा है। श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के प्राचार्य डा० मण्डन मिश्र एवं दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा० व्रजमोहन चतुर्वेदी के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन्होंने इस कार्य को करने के लिए न केवल अवसर ही प्रदान किया, अपितु सदैव तत्परता पूर्वक सहयोग एवं सुविधाएं देकर इस कार्य को पूरा करवाया। डा० चतुर्वेदी के सत्परामर्शो एवं प्रेरणा से यह कार्य यथा समय सम्पन्न हो सका। डा० शक्तिधर शर्मा, रीडर पंजाबी विश्वविद्यालय तथा राजवैद्य पं० रामगोपाल शास्त्री, अध्यक्ष-व्रज मण्डलीय आयुर्वेद सम्मेलन मथुरा के प्रति उनके बहुमूल्य सुझाव, सुस्पष्ट शास्त्रचर्चा एवं सहजस्नेह के लिये अत्यन्त कृतज्ञ हूं। मैं अपने मित्रों-सर्वश्री डा० ओंकारनाथ चतुर्वेदी, ड० मूलचन्द शास्त्री, आचार्य रमेश चतुर्वेदी, सतीशचन्द्र कीलावत एवं श्री चन्द्रकान्त दवे के प्रति उनके निरन्तर सहयोग और प्रेरणा के लिये हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

दिल्ली, निर्जला एकादशी, संवत् २०३७. शुकदेव प्रसाद चतुर्वेदी

प्रस्तावना

वैदिक दर्शनों में "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" का सिद्धान्त सुदूरतम प्राचीनकाल से प्रचलित है। यह सिद्धान्त बतलाता है कि सौर जगत् में सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों की विभिन्न गतिविधियों एवं क्रिया-कलापों में जो नियम काम करते हैं, ठीक वे ही नियम प्राणी मात्र के शरीर में स्थित सौरजगत् की इकाई का संचालन करते हैं।

इस सिद्धान्त को हृदयंगम करने के लिए हमें प्राणी या पदार्थ की आन्तरिक संरचना के आधार पर ध्यान देना चाहिए। प्रत्येक प्राणी या पदार्थ की सूक्ष्म तथा प्राथमिक संरचना का आधार परमाणु है और इन परमाणुओं की ईटों को जोड़कर प्राणी या पदार्थ का विशालतम भवन बनकर तैयार होता है। यह परमाणु सौरजगत् के समान आकार-प्रकार वाला होता है। इसके मध्य में एक घन विद्युत का बिन्दु होता है, जिसे केन्द्र कहते हैं। इसका व्यास एक इंच के दस लाखवें भाग का भी दस लाखवां भाग होता है। परमाणु के जीवन का सार इसी केन्द्र में बसता है। इसी केन्द्र के चारों ओर अनेक सूक्ष्मातिमूक्ष्म विद्युतकण चक्कर लगाते रहते हैं। और वे इस गतिविधि में सौर-जगत् के प्रत्येक क्रिया-कलाप का अनुकरण करते रहते हैं। इस प्रकार के अनन्त पर-माणुओं–जिन्हें शरीर विज्ञान की भाषा में कोशिकाएँ (Cells) कहते हैं–के समाहार का एकत्र स्वरूप हमारा शरीर है।

हमारे शरीर के कोशाणु बन्धुता नियम (ला आफ एफीनिटी) के अनुसार दलबद्ध होकर शरीर की ऊतकें (टिश्यूज) और उनके द्वारा अंग बनाते हैं। जिनके परस्पर मिलने से हमारा स्थूल शरीर बन जाता है। इस प्रकार जब हमारा शरीर एवं शरीर के अवयव उन कोशिकाओं से बने हैं, जो सौर जगत् के क्रियाकलापों का अनुकरण करते हैं, तो यह अनायास ही समझ में आ जाता है कि इन कोशिकाओं द्वारा बना हमारा शरीर भी सौरजगत् की गति विधियों का अनुकरण करता है।

प्रथम अवलोकन के समय सम्भवतः हमारे लिए यह विश्वास करना कठिन हो, सकता है, कि हमारे और ग्रह-नक्षत्रों के मध्य कोई सीधा सम्पर्क या आदान-प्रदान है। किन्तु हमें यह बात दृष्टि से ओझल नहीं होने देनी चाहिए कि विद्युत् एवं ब्रह्माण्ड-रश्मियों (कास्मिक रेज) द्वारा हमारा सौर जगत् में स्थित ग्रहनक्षत्रों के पिण्डों से सीधा सम्पर्क है–जिनकी रासायनिक बनावट निरन्तर परिवर्तित होती हुई हम पर सतत एवं अविच्छिन्न प्रभाव डाल रही है।

यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि ब्रह्माण्ड एवं उसके वासियों के मध्य सतत एवं सहज सम्बन्ध मानने का समस्त श्रेय प्राचीन भारतीय महर्षियों को ही प्राप्त है, जिन्होंने इस सम्बन्ध को स्वीकार कर ज्योतिष एवं योग शास्त्र के सुमान्य सिद्धान्तों का प्रणयन किया है।

हों का मानव जीवन पर प्रभाव :

सौरजगत् में स्थित ग्रहनक्षत्रों के पिण्डों के साथ हमारा सतत सम्बन्ध उनकी गति स्थिति एवं रासायनिक परिवर्तनों के अनुरूप हमें प्रभावित करता रहता है। इस प्रसंग में जलवायु के परिवर्तन को साक्ष्य रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। वस्तुतः जलवायु का परिवर्तन सूर्य एवं सौरपरिवारीय ग्रहों की राशि विशेष में गति अथवा हमसे निकट या दूर में स्थिति के कारण होता है। ग्रीष्म ऋतु में वृष या मिथुन राशि में स्थित सूर्य की किरणों में प्रचण्डता तथा हेमन्त ऋतु में वृश्चिक या धनुराशि में स्थित सूर्य की किरणों में मृदुता का हेतु पृथ्वी एवं सूर्य का आसन्नत्व-दूरत्व भाव है।[1] तात्पर्य यह है कि ग्रीष्म ऋतु में सूर्य हमारे निकट होता है तथा हेमन्त ऋतु में हमसे दूर। जब वह हमारे निकट होता है तब हम उसकी किरणों में प्रचण्डता और जब वह हमसे दूर होता है तो हम स्वाभाविक रूप से उसकी किरणों में मृदुता का अनुभव करते हैं। सूर्य की तेज किरणों से वाष्पीकरण होने के कारण वर्षा तथा उसकी मात्रा भी पूर्णरूपेण सूर्य पर आधारित रहती है। फलतः जलवायु में जो परिवर्तन होता है तथा इस परिवर्तन का मानव जीवन पर जो प्रभाव पड़ता है, वह प्रकारान्तर से सौर परिवार या ग्रहों का ही प्रभाव माना जायेगा।

मनुष्य के शारीरिक विन्यास एवं उसकी चित्तवृत्तियों का यदि कोई ऐसा कारक है, जो उसे कर्मण्यता या आलस्य, सबलता या निर्बलता एवं प्रखरता या मन्दता की ओर ले जाता है, तो वह जलवायु है। मनुष्य की शारीरिक एवं बौद्धिक शक्तियों का उतार-चढ़ाव जलवायु के परिवर्तन के साथ-साथ होता रहता है। शरद्काल में उसकी शारीरिक एवं बौद्धिक शक्ति बढ़ जाती है, जब कि ग्रीष्म ऋतु में यह शक्ति-न्यूनतम बिन्दु पर होती है। कारण यह है कि जब वायु-दाब (बोरामीट्रिक प्रेशर) धीरे धीरे बढ़ता है तो मानव की शारीरिक या बौद्धिक क्रियाशीलता अत्यधिक बढ़ जाती है। और जब वायु-दाब अपने निम्नतम-बिन्दु पर होता है, तो वह क्रियाशीलता भी न्यूनतम हो जाती है। वस्तुतः शरीर एवं मस्तिष्क की कोशिकाएँ, जो स्पंज की भांति छिद्रपूर्ण होती हैं, वे वायु के दबाव के घटने से शरीर के पानी को चूस लेती हैं तथा फूल जाती हैं। इस चूषण एवं स्फारण के साथ-साथ मनुष्य की क्रियाशीलता एवं कार्यकुशलता में गड़बड़ी आ जाती है। इसीलिए ग्रीष्म ऋतु में वायु का दाब घटने से हमारी शारीरिक एवं बौद्धिक क्रियाशीलता घट जाती है। हेमन्त ऋतु में वायु का दबाव बढ़ने पर हमारे शरीर के कोशाणु न तो पानी को चूसते और न ही फूलते, प्रत्युत वे स्वतन्त्र होकर अपना विहित कार्य सम्पादित करते हैं। इसलिये हेमन्त ऋतु में वायु का दाब बढ़ने से हमारी शारीरिक एवं बौद्धिक क्रियाशीलता उन्नत हो जाती है।

१-सूर्य सिद्धान्त-भूगोलाध्याय श्लो० ४६।

किसी तूफान के तुरन्त बाद जीवित तन्तुओं में मानसिक तनाव (नरवस टेंशन) के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। उस समय पशु निरंकुश, बच्चे चंचल या भावुक तथा प्रौढ़जन क्रोधी, असहिष्णु या भयभीत हो जाते हैं। वायु के दबाव के घटने से उत्पन्न प्रत्येक तूफान मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक क्रिया-कलापों को असामान्य कर देता है। वायु के दबाव में परिवर्तन प्रत्यक्ष रूप से जलवायु की दशा का ही एक परिवर्तन है।

आज के वैज्ञानिक मानव एवं अन्य प्राणियों पर ग्रहों के प्रभाव में आस्था रखें या न रखें; किन्तु वे इस बात से आश्चर्यान्वित हुए बिना नहीं रह सकते कि समुद्र की समतलता में, वायुमण्डल के दबाव में, ऋतुओं के परिवर्तन में तथा भूकम्प आदि की आवृत्तियों में जो घटनाचक्र दिखलाई दे रहा है, उसका सूर्य एवं चन्द्रमा आदि की गति-स्थिति के साथ सीधा सम्बन्ध है। पूर्णिमा एवं अमावस्या को समुद्र के अन्दर ज्वार-भाटे की लहरें बहुत बड़ी हो जाती हैं, वायुमण्डल में भी अन्य अवसरों की अपेक्षा अधिक संक्षोभ होता है या भूकम्प के झटके लगते हैं। आखिरकार ऐसा क्यों होता है ? इसलिए कि जब आकाशमण्डल में सूर्य एवं चन्द्रमा पास-पास होते हैं—जैसा कि अमावस्या को, अथवा जब वे एकेतर से ठीक विपरीत दिशा में होते हैं—जैसा कि पूर्णिमा को, तो वे अपने आकर्षण-विकर्षण द्वारा समुद्र की समतलता में, वायुमण्डल में तथा भूमि के सन्तुलन में एक विलक्षण संक्षोभ पैदा कर देते हैं। जिनके प्रभाववश ज्वार-भाटा, तूफान या भूकम्प जैसी घटनाएं घटित होती हैं।

पूर्व एवं पश्चिम के लोगों की अथवा उत्तर एवं दक्षिण के लोगों की जीवनशक्ति में जो अन्तर पाया जाता है, वह मात्र खान-पान के भेद या, जाति अथवा संस्कृति के भेद के कारण नहीं, अपितु यह भेद जलवायु कि भिन्नता के कारण है। जलवायु की दशाओं तथा इसके परिवर्तनों का; मनुष्य के परिवर्धन, जीवन शक्ति, जीवन क्षमता, अपराध-वृत्ति, समृद्धि, स्वास्थ्य एवं सिद्धि आदि पर सीधा प्रभाव पड़ता है; और चूंकि जलवायु का यह परिवतन प्रायशः ग्रहों की गति एवं स्थिति पर आधारित होता है। अतः जलवायु के परिवर्तन एवं उसकी विविधता के माध्यम से पड़ने वाला प्रभाव एक प्रकार से ग्रहों का ही प्रभाव है।

गर्भाधानकाल एवं जन्मकाल का महत्व :

रूस के प्रसिद्ध जीववैज्ञानिक एवं भौतिक विज्ञानवेत्ता प्रा० जार्जिस् लाखोवस्की सम्भवतः प्रथम आधुनिक वैज्ञानिक थे, जिन्होंने स्पष्टरूप से अपना यह विश्वास प्रकट किया कि तारों एवं ग्रहों से आने वाली रश्मियां गर्भाधान एवं जन्म के समय व्यक्ति के भावी भाग्य को प्रभावित करती हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि आचार्य वराह-मिहिर ने यह तथ्य आज से करीब डेढ़ हजार वर्ष पहिले ही घोषित कर दिया था।

प्रो० लाखोवस्की अपनी बहुर्चाचत पुस्तक (Le Grand Problem)—'महान् समस्या' में यों कहते हैं— "प्राचीन काल के ऋषि अन्तर्ज्योतिर्वशतः या स्वभावतः

जातक के जन्मकाल में आकाशस्थ तारों की स्थितियों की बड़ी महत्ता मानते थे, तो यह अकारण नहीं था। क्योंकि न केवल इन तारों से आने वाली रश्मियां पशु एवं मानव भ्रूण को प्रभावित करती हैं, अपितु पृथ्वी पर समस्त सजीव प्राणियों की बनावट गर्भाधान के समय उनके अण्डे या पिण्ड के ऊपर इन रश्मियों का जो प्रभाव पड़ता है, उस पर सीधी निर्भर रहती हैं। क्योंकि सजीव या निर्जीव सभी भौतिक पदार्थ विद्युत्कणोंसे बने हैं, जो कि भौतिक अवस्था में परिणत रश्मियां ही हैं"।[1]

दूसरे शब्दों में प्रो० लाखोव्स्की ने दिखा दिया है कि ब्रह्माण्ड किरणें (कास्मिक रेडिएशन), जो विविध तारों एवं ग्रहों से आ रही हैं तथा जिनकी वर्षा पृथ्वी पर अन्तरिक्ष से हो रही है, वे कोशिकाकेन्द्र (सैल न्यूक्ली) के गुणसूत्रों (क्रोमोसोम्स) पर आघात करती हैं। ये गुणसूत्र वैश्ववैद्युत-अनुनादक (कास्मो इलेक्ट्रिकल रिसोनेटर्स) होते हैं, जो उन ब्रह्माण्डकिरणों को ग्रहण कर अपने अन्दर रचा लेते हैं, जिनसे दैहिक विद्युत् (वाइटल इलेक्ट्रिसिटी) बनती है तथा वह रहस्य पूर्ण शक्ति अस्तित्व में आती है, जिसे हम जीवन कहते हैं।[2]

प्रो० लाखोव्स्खी के मतानुसार एक निषेचित (फर्टिलाइज्ड) अण्डे के युग्मक (जैमेट्स), जिनसे वंशानुगत गुणों को प्रकट करने वाले जीवाणु बनते हैं, गर्भाधान के समय विशिष्ट तरंगों (स्पेसिफिक वेव लैंग्थ) में परिणत हो जाते हैं तथा वे इस योग्य होते हैं, कि किसी अन्य ग्रह या तारे से आ रही उनके अपने समान प्रकम्पनगति (वाइब्रेटरी रेट) वाली रश्मियों के साथ सदोलन (रिसोनेंस) उत्पन्न कर सके।[3] यहां हमें सोचविचार करने को बहुत सामग्री मिल जाती है। एक महान् विज्ञानवेत्ता वैज्ञानिक जगत् के समक्ष यह वाद प्रस्तुत कर रहा है—कि गभर्धान के समय ही मानव प्राणी ग्रहलोकों से आकृष्ट हो रही रश्मियों द्वारा एक साँचे में ढल जाता है, और कि जीवित देही का भाग्य जीववैज्ञानिक (बायोलाजिकल) दृष्टि से जन्म के साथ ही मुद्रांकित हो जाता है।

ग्रहों के प्रभाव को जानने का साधन :

ऋषियों के पास एक बहुत सूक्ष्म, विश्वसनीय एवं व्यापक साधन था, जिससे ग्रहों के प्रभाव का सूक्ष्म निरीक्षण किया जा सकता था। वह साधन था योग। इसी के बल पर वे सूक्ष्ममापक एवं दूरवीक्षक यन्त्रों बिना ही इस विश्व या ब्रह्माण्ड के बारे में सब बातें जान सकते थे, उन्हें माप-तौल सकते थे तथा उनका वर्गीकरण कर सकते थे।

उन्होंने योग-साधना द्वारा अपनी इन्द्रियों की शक्तियों को भीतर ही भीतर प्रचण्ड करके उन्हें इस योग्य बना दिया था, कि वे काल के उन अल्पतम क्षणों को तथा स्थल के

---

१. देखिए—एस्ट्रोलाजी एण्ड माडर्न थाट—बी०वी० रामन्—बंगलौर पृ० २२।

२. एस्ट्रोलाजी एण्ड माडर्न थाट पृ० २४

३. तत्रैव पृ० २६

उन सूक्ष्मतम मार्गों को भी जान सकते थे, जिन्हें विज्ञान के नवीनतम-उपकरण भी माप नहीं सकते। अपनी इसी विशेषता के कारण वे काल की अकल्पनीय अवधियाँ तथा लोक-लोकान्तरों को जान लेते थे, जिन्हें बड़े से बड़ा दूरवीक्षक यन्त्र भी हमारी दृष्टि में नहीं ला सकता।

प्राचीन महर्षियों ने मात्र मन की गम्भीर एकाग्रता द्वारा वे वे तथ्य खोज निकाले थे, कि 'आइन्ष्टीन्' एवं 'एड्डिटन' अभी उनके बाहरी स्तर को ही छू पाये हैं। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि मनकी एकाग्रताके लिए पूर्ण अनासक्ति की आवश्यकता होती है। अनासक्ति के बिना न तो पूर्वाग्रह नष्ट होता है और न ही तटस्थरूप से अवलोकन किया जा सकता है। इसलिए ऐसी अनासक्ति के बिना अज्ञात क्षेत्र की खोज करना और यथार्थ परिणाम निकाल लेना सम्भव नहीं है। क्या आज के भौतिक विज्ञानवेत्ताओं के पास अनासक्ति का यह गुण है? वास्तविकता यह है कि अन्वेषक के अपने स्वभाव एवं पूर्वाग्रह के कारण कोई भी खाज सर्वथा विशुद्ध नहीं रहती। और इस दोष से अधिकांश लोगों को छुटकारा नहीं मिल पाता। अतः जब तक कि कोई वैज्ञानिक शुद्ध मन एवं शुद्ध विचारों से, अनासक्त या तटस्थ भाव से खोज करने के योग्य नहीं हो पाता, तब तक उसके निष्कर्ष विद्युत्कणों एवं भौतिक पदार्थों के बारे में चाहे कितने ही सत्य क्यों न हों, मानव विज्ञान के बारे में कदापि सत्य नहीं माने जा सकते। यह चमत्कार व्यास, वसिष्ठ, अंगिरा, पाराशर, नारद, कणाद एवं कपिल आदि के ही बस का था, कि उन्होंने शुद्ध विचारों एवं अनासक्त भाव के साथ मन की गम्भीर एकाग्रता द्वारा अदृश्य एवं अमूर्त विषयों के रहस्यमय क्षेत्रों तक पहुंचकर अनेक महान् एवं मौलिक तथ्यों को खोज निकाला।

अन्तर्दृष्टि एवं अवेक्षण :

प्राचीन महर्षियों ने ग्रहों का प्रभाव दो विधियों से विदित किया होगा? १ अन्तर्दृष्टि द्वारा एवं २. अवेक्षण द्वारा। अन्तर्दृष्टि, अन्तर्दर्शन या दिव्यदृष्टि एक वैयक्तिक अनुभव या अनुभूति (पर्सेप्शन) है, अथवा इसे एक प्रकार की बोध क्षमता कह सकते हैं, जिसे महर्षियों ने तपस्या (निष्ठापूर्वक सतत अभ्यास), सदाचारमय जीवन एवं योगाभ्यास द्वारा प्राप्त किया था। बर्टेंड रसेल का विचार है कि 'तथ्य संग्रह के साधन-रूप में अन्तर्दृष्टि एक वैध (वैलिड) विधि है और पर्याप्त अंशों में वैज्ञानिक नियन्त्रण के अधीन आ जाती है।' अन्तर्दृष्टि-अभिज्ञान में एक मौलिक प्रकार की निश्चितता तथा विश्वास का अंश पाया जाता है। क्योंकि यह विचारणीय पदाथ के प्रशंसित गुण-दोषों की छानवीन में ही नहीं लगी रहती, अपितु यह उसकी अन्तर्वस्तुओं (कण्टेन्ट्स) की प्रकृति के विषय में सर्वथा अनासक्त रहते हुए विचारणीय पदार्थ के प्रशंसित गुण-दोषों की छानवीन में ही नहीं लगी रहती, अपितु यह उसकी अन्तर्वस्तुओं (कण्टेन्ट्स) की प्रकृति के विषय में सर्वथा अनासक्त रहते हुए विचारणीय पदार्थ के

सम्पूर्ण रूप का अवलोकन कर उसका यथार्थ रूप चित्रित करती है। हमारे महर्षियों ने योग-सिद्धि के उच्चस्तर पर पहुँचकर ग्रहपिण्डों से सीधा सम्पर्क कर उनके रहस्यों को यान्त्रिक-उपकरणों के बिना ही अन्तर्दृष्टि-अभिज्ञान द्वारा अधिगत कर उनका यथार्थ रूप से आख्यान किया होगा ?

इसके साथ साथ अवेक्षण ने भी अपना कार्य किया होगा। ऋषियों ने अकेली-अकेली तथा सामूहिक घटनाओं को बार-बार घटित होने वाले ग्रहविन्यासों के प्रकाश में ध्यानपूर्वक देखा होगा तथा विशेष ग्रहयोगों के प्रति विभिन्न प्रकार के लोगों की शारीरिक एवं मानसिक प्रतिक्रियाएं देखी होंगी। सैकड़ों वर्षों तक लगातार चलने वाले इस प्रकार के निरीक्षणों ने ऋषियों को समाहित कर दिया, कि विभिन्न राशियों में विविध ग्रहों के होने पर जन्म लेने से व्यक्ति में सुविशेष प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक विलक्षणताएँ होती हैं।

चन्द्रकलाएं एवं रोग :

यह सर्वविदित तथ्य है कि ऋतुओं एवं जलवायु के परिवर्तन, वायु-मण्डलीय दवाव, भूकम्प तथा ज्वारभाटों की प्रक्रियाओं से सूर्य तथा चन्द्रमा की कलाओं का सीधा सम्बन्ध है। पानी का एक-एक विन्दु पूर्ण चन्द्रमा से ठीक वैसे ही प्रभावित होता है, जैसे ज्वार-भाटा की लहरें उसके इशारे पर उठती-बैठती हैं।

साम्प्रतिक खोजों से यह ज्ञात हुआ है कि हमारा रक्त एक प्रवाही पदार्थ ही नहीं है, अपितु इसमें वे ही लवण पाये जाते हैं, जो समुद्र के जल में घुले हुए हैं और वह भी लगभग उसी अनुपात में। इसमें लगभग ८० प्रतिशत सोडियम, ४ प्रतिशत कैल्शियम तथा ४ प्रतिशत पोटाशियम होता है। मैग्नीशियम की प्रतिशतक मात्रा में अवश्य कुछ भिन्नता है। रक्त एवं समुद्र के जल में लवणों के योग के इस सादृश्य को देखकर यह कहा जा सकता है कि चन्द्रमा की कलाएं जिस प्रकार समुद्र की समतलता को असन्तुलित कर उसमें ज्वार-भाटा उत्पन्न कर देती हैं, वैसे ही ये हमारी रक्त संचार की प्रंणाली में भी व्यवधान डालकर हमारे मन में उतार-चढ़ाव पैदा करती हैं, जिन्हें मनोविज्ञान की भाषा में आवेग, उद्वेग या संवेग कहा जा सकता है।

चन्द्रमा हमारा पड़ोसी ग्रह है। अतः हमारे ऊपर ग्रहों का जो खिचाव पड़ रहा है, उसमें सर्वाधिक मात्रा चन्द्रमा की ही है। सूर्य का पिण्ड बड़ा होने के बावजूद भी हमसे चन्द्रमा की तुलना में अत्यधिक दूर होने के कारण उतना खिचाव नहीं डाल पाता। चन्द्रमा की ऊपर उठाने की शक्ति ऐसी है कि जब वह पूर्णिमा को खमध्यासन्न होता है, तो उसके खिचाव के कारण उस समय पदार्थ का भार १८, ४२, ४४० वां भाग घट जाता है। उदाहरणार्थ पूर्णिमा को जब चन्द्रमा खमध्यासन्न होता है, तो समुद्र में चल रहे एक ४,००० टन भार वाले पोत का भार १ पौण्ड घट जाता है। इतना सूक्ष्मप्रभाव मापने के लिए अभी तक कोई मापन यन्त्र आविष्कृत नहीं हुआ। तथापि यह खिचाव

समुद्र में ज्वार-भाटा, वायुमण्डल में संक्षोभ, भूकम्प एवं ऐसी ही अन्य सब घटनाओं को घटित करने के लिये पर्याप्त है।

चन्द्रमा का यही खिचाव हमारे शरीर की रक्तसंचार प्रणाली को भी असामान्य बनाता है। जिस समय यह खिचाव हम पर पड़ता है, उस समय हमारे शरीर के कोशाणु, जिनसे शरीर के अवयव बने हैं, चन्द्रमा की ऊपर उठाने की शक्ति का प्रत्युत्तर देते हैं। कारण यह है कि हमारे शरीर का प्रत्येक कोशाणु विचारयुक्त सत्ता है। वे दलबद्ध होकर ऊतकें (टिश्यूज) तथा उनके द्वारा अंगों को बनाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक अवयव में चिन्तन शक्ति है। क्योंकि वह ऐसी कोशिकाओंसे बना है, जो यह जानती हैं कि उन्हें क्या करना है, कैसे करना है और प्रकृति की यही अभिलाषा है, कि वे अपना विहित कार्य पूर्ण कुशलता से करें, जब तक किसी अवरोध या अन्तराक्षेप से मुठभेड़ न हो जाय। जब चन्द्रमा के खिचाव के साथ इनकी मुठभेड़ होती है और ये सामूहिक रूप से उस खिचाव का प्रत्युत्तर देते हैं, तो इस तात्कालिक खींच-तान से हमारा शरीर एवं मन असामान्य हो जाता है। इस असामान्यता के कारण ही अवसरों की अपेक्षा पूर्णिमा को उन्माद, मिरगी जैसे मानसिक रोग तथा रक्तचाप, रक्तविकार एवं नाड़ी-रोग जैसे शारीरिक रोग अपनी पराकाष्ठा पर होते हैं।

हमारे महर्षियों ने हमें अवलोकित एवं परीक्षित तथ्यों पर आधारित अनेक ग्रह-योग बतलाये हैं, जिनके द्वारा हम किसी व्यक्ति विशेष पर पड़ने वाले चन्द्रमा के प्रभाव को पर्याप्त सूक्ष्मता से जान सकते हैं। महर्षियों ने इस प्रभाव को पहिले से ही खोज रखा है। विज्ञान का तो अब इतना ही काम है कि वह इसकी उत्पत्ति बताए।

वस्तुतः विविध ग्रहस्थितियों का प्राणीमात्र की शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं के साथ कोई सम्बन्ध अवश्य है, जिसका निरूपण अभी तक हमारे ज्ञान विज्ञान नहीं कर पाये। किन्तु इस सम्बन्ध का प्रभाव प्रायः इतने विशदरूप से अनुभव में आता है कि उसकी सत्तासे इनकार नहीं किया जा सकता। आज के वैज्ञानिकों से हमारा नम्र निवेदन है कि वे तथ्यों से स्पर्धा, उपेक्षा या द्वेष के वशीभूत होकर बचने या निर्मूल तर्क-वितर्क करने की अपेक्षा उनको समझने और प्रकृति के रहस्यों को खोलने का प्रयास करें। ऐसा करने से एक न एक दिन हमें उक्त सम्बन्ध की जानकारी हो जायेगी।

कर्मवाद एवं ज्यौतिष :

समस्त भारतीय ज्ञान की पृष्ठभूमि दर्शनशास्त्र है। यही कारण है कि भारत में अन्य प्रकार के ज्ञान को दार्शनिक-मापदण्ड से मापा जाता है। अपने इसी अटल सिद्धान्त के अनुसार वह ज्योतिष को भी इसी दृष्टि से देखता है।

भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा अमर है, इसका कभी भी नाश नहीं होता। केवल यह कर्मों के अनादि प्रवाह के कारण अनेकानेक योनियों को बदलता रहता है।

प्राणी मात्र क शरीर में रहने वाला यह तत्व नित्य एवं चैतन्य है, केवल कर्मबन्धन के कारण परतन्त्र एवं विनाशी दिखलाई देता है।

वैदिक दर्शनों में कर्म के संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण–ये तीन भेद माने गये हैं। किसीके द्वारा वर्तमान क्षण तक किया गया कर्म-चाहे वह इस जन्म का हो या जन्मान्तरों का–संचित कहलाता है। संचित का वह भाग, जिसका फल मिलना प्रारम्भ हो चुका है, उसे प्रारब्ध कहते हैं, तथा जो कर्म हम कर रहे हैं और भविष्यत् में करेंगे, वे सब क्रियमाण कहलाते हैं।

फल परिपाक की दृष्टि से जन्म-जन्मान्तरों से लेकर आज के वर्तमान क्षण तक किये गये कर्मों का फल संचित-फल कहलाता है। अनेक जन्म-जमान्तरों के संचित कर्मफल को एक-साथ भोगना सम्भव नहीं है। क्योंकि इन कर्मों के परिणामस्वरूप मिलने वाले फल परस्पर विरोधी होते हैं। अतः इन्हें एक के बाद एक कर भोगना पड़ता है। परिणामतः संचित में से, जितने कर्मों के फल को भोगना प्रारम्भ हो चुका है, उतने ही को प्रारब्ध कहते हैं। तात्पर्य यह है कि संचित-अर्थात् जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों के फल-संग्रह में से वर्तमान काल में मिल रहे फल के एक छोटे से भाग को प्रारब्ध कहते हैं। तथा जो कर्म अभी हो रहा है या होगा, उसका परिणाम क्रियमाण का फल कहलाता है।

उदाहरणार्थ––जन्म से पूर्व जातक के जो कुछ कर्म होते हैं, जिनके फलस्वरूप वह एक विशेष प्रकार के वातावरण में, विशेष प्रकार की रूपरेखा आकृति एवं विशिष्ट मनोवृत्तियोंके साथ एक परिवार-विशेष में जन्म लेता है–यह संचित कर्मोंका फल कहलाता है। प्रारब्ध वह है जो जन्म के साथ शुरू हो जाता है। जन्म लेते ही बच्चा कुछ क्रियाएं करता है। इनमें से कुछ क्रियाओं का कारण उसकी सहजात रुचि है तथा कुछ अन्य क्रियाओं का कारण उसकी स्वतन्त्र-इच्छा शक्ति है। यह बच्चे की सहजात रुचि उसे पिछले कर्मों के परिणामस्वरूप मिलती है। परन्तु उसकी स्वतन्त्र-इच्छा आंशिक रूप में पुराने कर्मों के अधीन तथा आंशिक रूप में उनसे स्वतन्त्र भी होती है। जैसे हमारे नाखून जीवित भी होते हैं और निर्जीव भी। ये जीवित इसलिए हैं, क्योंकि ये बढ़ते हैं और निर्जीव इसलिए कि किसी प्रकार की पीड़ा के बिना इन्हें किसी अंश तक काटा, कुरेदा या जलाया जा सकता है। इसी प्रकार जन्मजात बच्चे की क्रियाएँ कुछ अंशों तक सहजात अभिरुचि पर तथा कुछ अंशों में स्वतन्त्र इच्छा पर आधारित होती हैं। चूंकि सहजात रुचि पूर्व कर्मों के परिणामस्वरूप मिलती हैं। अतः सहजात रुचि के कारण होने वाली समस्त क्रियाएं प्रारब्ध का परिणाम कहलाती है। और बच्चों की पूर्ण स्वतन्त्र इच्छा पर आधारित क्रियाएं क्रियमाण का रूप होती हैं। यह क्रियमाण भी संचित एवं प्रारब्ध के मिलाप से उत्पन्न होता है।

हमारे जीवन में उत्पन्न होने वाले रोग इन्हीं त्रिविध कर्मों के परिणाम हैं। मनुष्य को होने वाले रोग तथा वंशानुक्रम से प्राप्त रोग हमारे संचित कर्मों के परिणाम

हैं। तथा जानबूझकर किये गये दुष्कर्मों द्वारा उत्पन्न रोग क्रियमाण का फल होते हैं।

ज्योतिष शास्त्र ने इन त्रिविध कर्मों का विचार करने के लिए तीन भिन्न-भिन्न पद्धतियों का आश्रय लिया है। फलित शास्त्र में संचित कर्म के फल का विचार आधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली में बने योगों द्वारा, प्रारब्ध के फल का विचार दशाओं द्वारा तथा क्रियमाण के फल का विचार गोचर एवं प्रश्नकुण्डली द्वारा किया जाता है। इसीलिए, अन्धत्व, काणत्व, मूकत्व, बधिरत्व आदि जन्मजात रोगों का विचार करते समय फलित शास्त्र के आचार्यों ने गर्भाधान एवं जन्म कुण्डली के योगों को ही महत्व दिया है। ये रोग दशा, अन्तर्दशा या प्रत्यन्तर्दशा आदि के विचार की अपेक्षा नहीं रखते। किन्तु वात, पित्त एवं कफ के विपर्यय द्वारा उत्पन्न रोग तथा शरीर के विविध अंगों में उत्पन्न होने वाले विकारों का विचार योगों के साथ दशा, अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर दशा आदि की अपेक्षा रखता है। कारण यह है कि प्रारब्ध संचित का ही एक अंग है। अतः इसका विचार करते समय संचित की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसीलिए इन रोगों का विचार करते समय ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने योग तथा दशा इन दोनों पद्धतियों का आश्रय लिया है। मिथ्या आहार-विहार आदि के द्वारा उत्पन्न रोगों को क्रियमाण का फल माना जाता है। किन्तु यह क्रियमाण भी संचित एवं प्रारब्ध के मिलाप से उत्पन्न होता है। अतः ऐसे रोगों का विचार करते समय योग एवं दशा के अलावा तात्कालिक गोचरीय ग्रहस्थिति का भी बारीकी से अध्ययन किया जाता है।

ज्योतिष शास्त्र की महत्ता के बारे में अपना मत व्यक्त करने से पहिले कर्म-सिद्धान्त के विषयमें कुछ-एक बातोंका विचार करना आवश्यक है। बहुत से लोग समझते हैं कि कर्म का सिद्धान्त भाग्यवाद और पूर्वविहित आवश्यकता सर आश्रित है और इसी कारण यह व्यक्तिगत-विकास के लिए कोई अवसर नहीं रहने देता।

यह मिथ्या-धारणा कुछ अंशों में कर्मवाद से अनभिज्ञता पर आश्रित है। यह मानना ही पड़ेगा, कि यह संसार या तो नियमबद्ध सृष्टि है या उच्छृङ्खल घपला। यह नहीं हो सकता कि इसका संचालन कुछ तो नियमपूर्वक हो, और कुछ आकस्मिक और नियमरहित हो। विचारवान् लोगों की अनेक पीढ़ियों के अनुभव को ध्यान में रखते हुए एक बुद्धिमान् पुरुष को इस बात का समाधान हो जाना चाहिए कि संसार और जीवन की क्रियाएं सुविशेष नियमों के नियन्त्रण में हैं। यदि सूर्य एवं अन्य ग्रह-पिण्ड पूर्ण-अनुशासन के साथ आवृत्ति के नियमों का पालन करते हैं, उनकी गति तथा स्थिति के पूर्ण व्यवस्था एवं नियमितता है, तो जीव ग्रहों पर बसतें हैं, उनके जीवन की गतिविधियों को भी सुनिश्चित नियमों के अनुसार ही चलना चाहिए वस्तुतः इस ब्रह्माण्ड में दैवयोग या आकस्मिक घटना नाम की कोई चीज नहीं है। यह तो मात्र हमारी अज्ञानता, कमजोरी या उपेक्षावृत्ति को छुपाने का सहज-साधन है।

भारतीय ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तक महर्षियों एवं मनीषियों ने कहीं भी किसी निर्दय विधाता की सत्ता की कल्पना नहीं की, जो जैसे चाहे, जब चाहे, मनुष्य के साथ खेल करे। इसके विपरीत हमारे महर्षियों ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है, कि इस ब्रह्माण्ड में घटने वाली प्रत्येक घटना एक सुनिश्चित नियम द्वारा बँधी है। मनुष्य को उसके वर्तमान जीवन में जो कुछ भी मिल रहा है, कर्म के नियमों के द्वारा सुनिश्चित व सुनियोजित है। हमारे महर्षियों ने बतलाया है कि एक बार कर्म करके मनुष्य उसका अनिवार्य फल अवश्य पायेगा। "यद्यपि वह" कर्म करने या न करने में अपनी स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का प्रयोग कर सकता है। "किन्तु जब एक कर्म कर डाला जाता है, तो कर्मवाद के अनुसार उसका फल अवश्य प्राप्त होगा। कर्म के अनिवार्य-फल से बचने का कोई मार्ग नहीं है। हाँ, मनुष्य अपनी स्वतन्त्रबुद्धि द्वारा फल की अनुभूति में बहुत कुछ अंशों तक तारतम्य उत्पन्न कर सकता है, और सतत अभ्यास एवं प्रयास द्वारा अपना भविष्य बना सकता है। इस प्रकार वह अपने भाग्यका सृजन कर सकता है। यदि भाग्य वाद अनिवार्य होता, तो ज्योतिष शास्त्र में योगफल के अतिरिक्त दशा आदि की प्रणाली का कोई उल्लेख न होता। ज्योतिष के विद्यार्थी जानते हैं विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी आदि दशाओं में अन्तर्दशा ततः प्रत्यन्तर्दशा एवं अन्त में सूक्ष्म एवं प्राण दशा तक विचार होता है। वर्षकुण्डली, मुद्दा दशा एवं प्रश्नकुण्डली की गणित भी इसी के साक्ष्य हैं। तात्पर्य स्पष्ट है कि ज्योतिष शास्त्र प्रतिक्षण होने वाले क्रियमाण का विचार उतनी ही गम्भीरतासे करता है तथा उसे उतना ही महत्व देता है जितना कि संचित या प्रारब्धको। आपने दशा एवं अन्तर्दशा के अशुभ समय में वर्षगणित द्वारा वर्ष कुण्डली का प्रशस्त फल सुना ही होगा। ऐसा क्यों ? कारण-हम योगज स्थिति से संचित फल का विचार करते हैं, दशा एवं भुक्ति से प्रारब्ध फल का विचार करते हैं। और ताजिक, सूक्ष्मदशा एवं गोचर द्वारा क्रियमाण फल का मनन करते हैं। दशा एवं अन्तर्दशा के अशुभ समय में वर्ष कुण्डली का शुभ फल संचित एवं प्रारब्ध की अनुकूलता होने पर क्रियमाण की अनुकूलता का उदाहरण है जो इस ओर संकेत देता है कि व्यक्ति विषम स्थिति में क्रियमाण द्वारा अपने भाग्य का निर्माण कर रहा है।

जन्मकुण्डली मनुष्य के चरित्र और स्वभाव को प्रदर्शित करती है। यदि वह दिखाएँ कि मंगल और राहु के प्रभाववश, वह एक अपराधी बनेगा, तो इसका अर्थ यह नहीं कि उसके भाग्य में ही ऐसा विधान है। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि वह व्यक्ति इस भाँति का है कि जिसके अन्दर अपराध की ओर झुकाव रहेगा। परन्तु उसकी ऐसी वृत्तियाँ समुचित अवधान एवं शिक्षण द्वारा रोकी जा सकती हैं। केवल एक ही स्थिति में यह अनिवार्य हो सकता है कि उसकी आने वाली दशा एवं गोचरीय स्थिति भी उसी प्रकार की हो। तब ज्योतिष की मान्यतानुसार इसका फलित-अर्थ यह हो जायेगा, कि अपराध की ओर झुकाव वाला व्यक्ति आने वाले समय में अपराधियों का वातावरण प्राप्त कर अपराधी बनेगा। इसी प्रकार मान लीजिए किसी वर्ष विशेष में

किसी व्यक्ति विशेष के अन्दर भावोद्वेग आने के लक्षण पाये जाते हैं। यदि किसी को यह विदित हो जाय, कि यह अवस्था आने वाली है, तो वह निश्चित ही इस संकट के प्रतीकार कर सकता है। ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों का दूषित प्रभाव दूर करने के अनेक उपाय वर्णित हैं। वे सब इस बात के साक्ष्य हैं कि व्यक्ति अपने प्रयासों द्वारा अदृष्टफल की अनुभूति में तारतम्य कर सकता है। अतः ज्योतिष में या कर्मवाद में आस्था रखने से व्यक्ति भाग्यवादी बन जाता है, यह अज्ञानतामूलक परिकल्पना है।

भारतीय ज्योतिष का रहस्य यह है कि यह शास्त्र चिरन्तन और जीवन से सम्बद्ध सत्य का विश्लेषण करता है। संसार के समस्त शास्त्र जगत के एक-एक अंश का निरूपण करते हैं, परन्तु ज्योतिष शास्त्र आन्तरिक एवं बाह्य दोनों जगतों से सम्बद्ध समस्त ज्ञेयों का प्रतिपादन करता है। इसका सत्य दर्शन के समान जीव और ईश्वर से या विज्ञान के समान पदार्थ घनत्व-तापमान आदि से ही सम्बद्ध नहीं है, किन्तु यह उससे आगे का भाग है।

मानव के समक्ष जहाँ दर्शन एवं भौतिक विज्ञान नैराश्यवाद, वैराग्य अथवा भयोत्पादन की धूमिल रेखा अंकित करता है, वहाँ ज्योतिष उसे कर्तव्य क्षेत्र में ला उपस्थित करता है। साथ ही भविष्य को अवगत करा कर अपने कर्तव्यों द्वारा उसे अनुकूल बनाने के लिए ज्योतिष ही प्रेरणा देता है। यही प्रेरणा प्राणियों के लिए दुःख-विघातक और पुरुषार्थ साधक होती है।

आयुर्वेद एवं ज्योतिष :

हमारे शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार, जिनसे हमें किसी भी प्रकार का दुःख मिलता है, को रोग कहते हैं। इन रोगों की उत्पत्ति के कारण, लक्षण, भेद एवं चिकित्सा विधि में आयुर्वेद एवं ज्योतिष में कितनी समानता है ?-इसका यहाँ संक्षेप में विचार किया जा रहा है—

'आतुरोपक्रमणीय' की व्याख्या करते हुए भगवान धन्वन्तरि ने सुश्रुत से कहा है कि रोगी की चिकित्सा शुरू करने से पहिले वैद्यको उसकी आयु की परीक्षा कर लेनी चाहिए। क्योंकि आयु के शेष होने पर ही चिकित्सा द्वारा वह ठीक होता है। यदि आयु शेष हो तो रोग, ऋतु (मौसम) वय, बल एवं औषधि का विचार कर चिकित्सा करनी चाहिए।[1] फलित ज्योतिष शास्त्र में भी रोगीका फलादेश करने से पहिले उसकी आयु की भलीभाँति परीक्षा करने पर जोर दिया गया है, यथा—

आयुः पूर्वं परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमादिशेत्।
अनायुषां तु मर्त्यानां लक्षणैः किं प्रयोजनम्॥

१-(क) सुश्रुतसंहिता -सूत्रस्थानम् २५।४-१०।
(ख) तत्रैव-२५।१-३।

आयुरेव विशेषेण प्रथमं चिन्त्यतेऽधुना
स्वस्थमुद्दिश्य वा प्रश्न एव वातुरमित्ययम् ।। प्रश्नमार्ग ६।३,५

रोगोत्पत्ति के कारण :

आयुर्वेद में कर्मप्रकोप एवं दोषप्रकोप को रोगोत्पत्ति का कारण माना गया हैं।[1] आचार्य डल्हण कहते हैं कि सामान्यतया मिथ्या आहार एवं विहार से रोग उत्पन्न होते हैं। किन्तु जब मनुष्य ऋतु के अनुसार आहार विहार करता हो, सद्वृत्ति का सेवन करता हो एवं रोगोत्पत्ति का मौसम भी न हो और अचानक रोग उत्पन्न हो जाय तो उस रोग को कर्मजन्यरोग मानना चाहिए।[2] वास्तविकता यह है कि आहार-विहार भी एक प्रकार का कर्म ही है, जिसके मिथ्यायोग से रोग उत्पन्न होते हैं।

दर्शनशास्त्र में कर्म के तीन भेद माने गये हैं--१. संचित २. प्रारब्ध एवं ३. क्रियमाण। आयुर्वेद में कर्मजन्य रोगों का कारण जो कर्म माना गया है, वह संचित कर्म है जिसके एक भाग को प्रारब्ध या दैव कहा गया है। तथा मिथ्या आहार-विहार आदि क्रियमाण कर्म हैं। इस प्रकार कर्म प्रकोप एवं दोष प्रकोप दोनों के मूल में अशुभ या अनु-कर्म ही एक मात्र हेतु दिखलाई देता है। इसीलिए ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने मनुष्य के पूर्वार्जित कर्म या जन्मान्तर में विहित पाप को रोग का कारण माना है, यथा–

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते। प्रश्न मार्ग १३।२६।

शातातपीय तन्त्रमें भी कहा गया है कि पूर्वजन्म में किया गया पाप ही इस जन्म के कुष्ठ, क्षय, प्रमेह, संग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कास, अतिसार एवं भगन्दर आदि रोगों के रूप में उत्पन्न होता है, यथा--

"पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये।
बाधते व्याधिरूपेण तस्य कृच्छ्रादिभिः शमः ।।
कुष्ठञ्च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीकासा अतिसारभगन्दरौ ।।

आचार्य सुश्रुत ने कुष्ठ रोग को कर्मज व्याधि का मुख्य उदाहरण माना है। उनका कहना है कि ब्राह्मण, स्त्री एवं सज्जन पुरुषों की हत्या तथा दूसरे के धन का अपहरण करने जैसे पापकर्मों से कुष्ठ रोग होता है, यथा—

कर्मभिः पापरोगस्य प्राहुः कुष्ठस्य सम्भवम्। –सुश्रुतसंहिता–निदान— स्थान ५।२६।

१–कर्मजा व्याधयः केचिद् दोषजाः सन्ति चापरे। चरकसंहिता–उत्तरतन्त्र अध्याय ४०।

२–सुश्रुतसंहिता-उत्तरतन्त्र-विमर्श —४०।१६३।
"ब्रह्मस्त्रीसज्जनवधपरस्वहरणादिभिः।

त्रिशठाचार्य का मत है कि उदररोग, गुदारोग, उन्माद, अपस्मार, पंगुता, कर्णरोग, वाग्दोष, प्रमेह, भगन्दर, प्रदर, वायु विकार, कुष्ठ, क्षय, अन्धता, मुखरोग, नासारोग, अर्श, विपची, व्रण, वल्मीक, रक्तार्बुद, विसर्प, देहकम्प, पक्षाघात, गलगण्ड, नपुंसकता, रक्तदोष एवं दन्तरोग आदि समस्त रोग गुरुपत्नीगमन, दूसरे के धन का अपहरण एवं ब्रह्महत्या जैसे दुष्कर्मों के प्रभाववश उत्पन्न होते हैं। अतः ये रोग औषधि-चिकित्सा से नष्ट नहीं होते हैं। यथा—

"जठर गुदजोन्मादापस्मृत्यसृगुत्सृतिपंगुता—
श्रुतिविकलतावाग्वैकल्यप्रमेहभगन्दराः।
प्रदरपवनव्याधिश्वित्रक्षयक्षणदान्धता,
तिमिरवदनघ्राणार्शांसि श्वयथुविपचीव्रणाः॥
वल्मीककाकिणिकशंखकपुडरीक—
रक्तार्बुदव्रणविसर्पवपुः प्रकम्पाः।
पक्षाभिघातनलगंडगलग्रहाश्म,
दंडापतानकसमीरणशोणिताद्याः॥
दन्तामयाः स्युरपरद्रविणापहार—
गुर्वङ्गनागमनविप्रवधादिभिर्ये।
दुष्कर्मभिस्तनुभृतामिह कर्मजास्ते,
नोपक्रमेण भिषजामुपयान्ति सिद्धिम् ॥ वीरसिंहावलोक १०८ ॥

अतः यह कहा जा सकता कि मनुष्य का इस जन्म या जन्मान्तर में किया गया अशुभ कर्म ही रोगोत्पत्ति का मुख्य कारण हैं।

कर्मज व्याधियों का मुख्य उदाहरण–उन्माद :

फलितज्योतिष के ग्रन्थों में इस रोग को एक प्रमुख रोग मान कर इसके कारण भेद, लक्षण एवं चिकित्सा का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। यह विवेचन आयुर्वेद के साथ पूरा-पूरा साम्य रखता है, यथा—

(१) उन्माद के कारण—

हर्ष, इच्छा, भय एवं शोक की प्रबलता से, विरुद्ध एवं अपवित्र भोजन से तथा गुरु-देवता आदि के कोप से उन्माद होता है।[1] आचार्य चरक ने भी उन्माद रोग के ये ही कारण बतलाते हैं, यथा—

'विरुद्धदुष्टाशुचि भोजनानि प्रधर्षणं देवगुरु द्विजानाम्।
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वा मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः॥
—चरकसंहिता–चिकित्सा स्थान ९।४।

१—हर्षेच्छामयशोकादेर्विरुद्धाशुचिभोजनात्।
गुरुदेवादिकोपाच्च पंचोन्मादा भवन्त्यथ॥ प्रश्नमार्ग १२।३४।

(२) उन्माद के भेद :

प्रश्नमार्ग में उन्माद के ५ भेद बतलाये गये हैं—१. वातजन्य, २. पित्तजन्य, ३. कफजन्य, ४. सन्निपातजन्य एवं ५. आगन्तुक।[1] चरक संहिता में भी इस रोग के पूर्वोक्त पाँच भेद बतलाये गये हैं।[2]

(३) पंचविध उन्माद के लक्षण :

प्रश्नमार्गकार कहते हैं कि हँसना, चिल्लाना, रोना, विलखना, गाना, नाचना, एक जगह पर न रुकना, हाथ-पैर अदि अंगों को फेंकना-पटकना, शरीर का लाल रंग होना, कमजोरी होना, कमजोर होने पर भी वल होना तथा अधिक वड़वड़ाना-ये सब वातजन्य उन्माद के लक्षण हैं।[3] आचार्य चरक ने भी वातजन्य उन्माद के ये ही लक्षण वतलाये हैं, यथा-

अस्थानहासस्मृतिनृत्यगीतवागङ्गविक्षेपणरोदनानि।
पारुष्य कार्श्यारुणवर्णताश्च जीर्णे बलं चानिलजस्य रूपम्॥
—चरकसंहिता-चि० स्थान ९।१०।

फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में पित्तजन्य उन्माद के लक्षण इस प्रकार बतलाये गये हैं—संरम्भ (नेत्रों में लालिमा), अमर्ष (असहिष्णुता), विदग्धता, अभिद्रवण (दौड़कर चलना), तर्जन (दूसरों को डराना धमकाना), छाया, शीतल वस्तु एवं शीतल जल की इच्छा, क्रोध करना तथा शरीर का पीला पड़ना-ये पित्तजन्य उन्माद के लक्षण हैं।[4] आचार्य चरक ने भी यही कहा है—

'अमर्षसंरम्भविनग्नभावाः संतर्जनातिद्रवणोष्णरोषाः।
प्रच्छाय शीतान्नजलाभिलाषाः पीता च भाः पित्तवृतस्य लिङ्गम्।
—चर० संहि०-चि०स्था० ९। १२।

ज्योतिष के ग्रन्थों में बतलाया गया है कि कफजन्य उन्माद के रोगी को स्त्री तथा

१—त्रिदोषजाः सान्निपाताः आगन्तव इति स्मृताः। तत्रैव १२।३५।

२—चरक संहिता—चिकित्सास्थानम् अ० ९ श्लो० ८।

३—हसनास्फोटनाक्रन्द गतिनर्तनरोदनम्।
अस्थानमङ्गविक्षेपस्ताम्रा मृद्कृशा तनुः॥
जीर्णे वलं च वाग्बह्वी वातोन्मादस्य लक्षणम्॥
—प्रश्नमार्ग अ० १२ श्लो० ६५-३६।

४—संरम्भामर्षवैदग्ध्यमभिद्रवणतर्जनम्।
छायाशीतान्नतोयेच्छा रोषः पीतोष्णदेहता॥
—तत्रैव श्लो० ३७।

एकान्त स्थान प्रिय होते हैं। उसे निद्रा अधिक आती है, अरुचि रहती है, वह कम कम बोलता है, मुख से लार बहती है, वमन होता है, भोजन के बाद उन्माद का वेग बढ़ जाता है तथा उसके नाखून, नेत्र एवं जिह्वा आदि सफेद पड़ जाते हैं।[1] आचार्य चरक का भी यही मत है, यथा--

'वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च नारीविविक्तप्रियतातिनिद्रा।
छर्दिश्च लाला च बलं च भुङ्क्ते नखादिशौक्ल्यं च कफात्मकस्य॥

--चरकसंहिता-चि० स्थान ९। १४।

वात, पित्त एवं कफजन्य उन्मादके जो पूर्वोक्त लक्षण बतलाये गये हैं, वे सब सन्निपातजन्य उन्माद में भी दिखलाई देते हैं। यह चिकित्सा की दृष्टि से वर्ज्य होता है। क्योंकि इसमें एक दोष की चिकित्सा करने से दूसरा दोष कुपित हो जाता है। अतः यह उन्माद असाध्य होने के कारण वर्ज्य कहलाता है।[2] आचार्य चरक का भी यही मत है, यथा--

'यः सन्निपातप्रभवोऽतिघोरः सर्वैः समस्तैःस च हेतुभिः स्यात्।
सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति तादृग्विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः॥

--चरकसंहिता चिकि० स्थान ९।१५।

देवता, राक्षस आदि(ऋषि, गन्धर्व, पिशाच एवं पितरों)के कोप से उत्पन्न उन्माद को आगन्तुक उन्माद कहते हैं।[3] आचार्य चरक का कहना है कि देवता आदि के कोप के अलावा जन्मान्तर में किए गए अनुचित कर्मों के प्रभाववश यह उन्माद होता है यथा—

'देवर्षिगन्धर्वपिशाचयक्षरक्षःपितॄणामभिघर्षणानि।
आगन्तुके तु नियमव्रतादि मिथ्याकृतं कर्म च पूर्वदेहे॥

—चरकसंहिता-चि० स्थान ९।१६।

(४) उन्माद की चिकित्सा :

उन्माद की चिकित्सा के बारे में भी ज्योतिष एवं आयुर्वेद के दृष्टिकोण में पूरी तरह समानता है। फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में बतलाया गया है-'कि वातजन्य उन्माद में स्नेहपान, पित्तजन्य उन्माद में विरेचन, कफजन्य उन्माद में नस्य एवं वमन तथा आगन्तुक उन्माद में पूर्वोक्त समस्त क्रियाएं करनी चाहिए।[4] आचार्य चरक ने उन्माद की यही चिकित्सा बतलायी है, यथा-

---

१--नारीविविक्तप्रियता निद्रारोचौ मनाग्वचः।
लाला छर्दिर्बले भुक्तो नखादिषु च शुक्लता च॥
--प्रश्नमार्ग अ० १२ श्लो० ३८।

२--संमिश्रलक्षणो वर्ज्य उन्मादः सान्निपातिकः--प्रश्नमार्ग १२।३९।

३--प्रश्नमार्ग १२।४०।

४--वातोन्मादे स्नेहपानं पित्तोन्मादे विरेचनम्।
श्लेष्मके नस्यवमनमागन्तुष्वखिलाः क्रियाः॥
--प्रश्नमार्ग अ० १२ श्लो० ४१।

'उन्मादे वातजे पूर्वं स्नेहपानं विशेषवित् ।
कफपित्तोद्भवे त्वादौ वमनं सविरेचनम् ।।

—चरकसंहिता-चि०स्थान ९ ।२५-२६।

उक्त स्नेहपान आदि क्रियाओं के अलावा जातकग्रन्थों में सभी प्रकार के उन्माद की एक रामवाण औषधि बतलायी गयी है, वह है कल्याणघृत । यद्यपि उन्माद को ठीक करने के लिए किस औषधि का किस मात्रा में किस प्रकार प्रयोग करना चाहिए-यह आयुर्वेद शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय है । इसलिए ज्योतिष के ग्रन्थों में रोगों की औषधियों की विस्तारपूर्वक चर्चा नहीं की गयी तथापि जातक ग्रन्थों में विविध प्रसंगों में कुछ रोगों की रामवाण औषधियां बतलायी गयी हैं । आचार्य कल्याणवर्मा कहते हैं कि जैसे कल्याण घृत का सेवन उन्माद को नष्ट कर देता है, वैसे ही चन्द्रमा से ६,७ एवं ८वें स्थान में स्थित शुभ ग्रह समस्त अरिष्टों के प्रभाव को नष्ट कर देते हैं । यथा—

'सप्ताष्टमषष्ठस्थाः शशिनः सौम्या हरन्त्यरिष्टफलम् ।
पापैरमिश्रचाराः कल्याणघृतं यथोन्मादम् ।। सारावली ११ ।७'

आचार्य चरक एवं सुश्रुत ने पंचविध उन्मादों के लिए कल्याणघृत एवं महाकल्याणघृत के सेवन को अत्यन्त लाभदायक माना है ।[1]

इस प्रकार फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में रोगविचार की इति कर्तव्यता, रोगों के कारण, लक्षण, भेद एवं चिकित्सा विधि मे पर्याप्त समानता पाई जाती है ।

ज्योतिष शास्त्र की आयुर्वेद को देन

आयुर्वेद ने जिन रोगों को कर्मजन्य मान कर असाध्य कह दिया तथा ऐसे रोगों के निदान एवं चिकित्सा विधि पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला, उन कर्मजन्य रोगों के होने की सम्भावना, उनके प्रारम्भ एवं समाप्ति के काल तथा उनकी चिकित्सा विधि का ज्योतिष शास्त्र में विस्तार से विचार किया गया है । ज्योतिष शास्त्र यह बतलाने में समर्थ है कि किस व्यक्ति को पूर्वार्जित अशुभ कर्मों के प्रभाववश किस समय में कौन सा रोग होगा तथा उसका क्या परिणाम निकलेगा । जिस प्रकार दोषजन्य व्याधियों का आयुर्वेद शास्त्र में विस्तारपूर्वक विचार किया गया है, उसी प्रकार कर्मजन्य व्याधियों का ज्योतिष शास्त्र में साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया गया है ।

आयुर्वेद शास्त्र में स्वास्थ्यरक्षण, औषधि संचय, औषधि निर्माण एवं शल्यक्रिया में कालकृत विशेषताओं को अतीव उपयोगी माना गया है ।[2] काल के अतियोग, अयोग या मिथ्यायोग से रोग उत्पन्न होते हैं । अविकृत ऋतु में औषधि का सञ्चय एवं निर्माण करने से ही वह गुणकारी होती है तथा वह ऋतु विकृति से उत्पन्न रोगों को नष्ट कर

१—देखिए—(क) चरकसंहिता-चिकित्सास्थानम् अ० ९ श्लो० ३६–४१ ।
(ख) सुश्रुतसंहिता—उत्तरतन्त्रम् अ० ६२ श्लो० २३–२५ ।

२—सुश्रुत संहिता-सूत्र स्थानम् १।४२।

देती है।[1] दिन, रात, सर्दी, गर्मी एवं बरसात के प्रभाव को ध्यान में रखकर शल्य क्रिया की जाती है। आयुर्वेद शास्त्र तो यहाँ तक कहता है कि काल की विशेषताएं अपने स्वभाव से ही दोषों का संचय, प्रकोप, प्रशमन एवं प्रतीकार कर देती हैं।[2] अतः योग्य चिकित्सक को कालकृत विशेषताओं का ध्यान रख कर ही चिकित्सा करनी चाहिए। किन्तु काल का ज्ञान ज्योतिष शास्त्र द्वारा ही होता है चिकित्सा के लिए परमोपयोगी दिन, रात, पक्ष, मास एवं ऋतु आदि की जानकारी ज्योतिष शास्त्र द्वारा ही सम्भव है। अतः ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान के बिना न तो यथा समय औषधि-संचय या औषधि निर्माण ही सम्भव है और न ही शल्यक्रिया या चिकित्सा ही की जा सकती है। अतः जो चिकित्सक आवश्यक ज्योतिष-नियमों को जान- कर औषधिनिर्माण या चिकित्सा करते हैं, वे ही अधिक सफलता प्राप्त करते हैं।

वस्तुतः आयुर्वेद ज्योतिष का चचेरा भाई है। ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान के द्वारा रोगी की चर्या, चेष्टा, आकृति, सर्वाङ्ग लक्षण एवं उसकी कुण्डली में रोगों के विविध योगों का अध्ययन कर यह जाना जा सकता हैं, कि इस रोग की मर्यादा क्या होगी? यह रोग तब तक ठीक होगा? चिकित्सा करने वाले चिकित्सक के परामर्श एवं प्रचलित औषधि के द्वारा लाभ होगा या नहीं? इत्यादि। ये कुछ ऐसे अहं प्रश्न हैं जिनका समाधान आयुर्वेद शास्त्र में नहीं किया गया, किन्तु ज्योतिषशास्त्र में इनका विस्तार पूर्वक शास्त्रीय रीति से विवेचन किया गया है। इसीलिए प्राचीन काल में ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान की चिकित्सा में परम उपयोगिता को ध्यान रखकर 'ज्योतिर्वैद्यो निरन्तरी' की कहावत प्रचलित हुई होगी।

एक अन्य बात यह है कि साधारण व्यक्ति भी इस शास्त्र के सम्यक् ज्ञान से अनेक रोगों से बच सकता है। क्योंकि अधिकांश रोग सूर्य एवं चन्द्रमा के विशेष प्रभाव से उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी गति, स्थिति एवं कलाओं की ह्रास-वृद्धि द्वारा समुद्र के जल में उथल-पुथल मचा डालता है, उसी प्रकार यह शरीर के रुधिर प्रवाह में, स्नायुमण्डल में तथा मन में अपना प्रभाव डालकर निर्बल मनुष्यों को रोगी बना देता है। अतएव ज्योतिष द्वारा चन्द्रमा के तत्वों को जानकर अष्टमी, अमावस्या एवं पूर्णिमा को वैसे तत्ववाले पदार्थों के सेवन पर आत्मनियन्त्रण रखकर मनुष्य स्वयं को रोगों के आक्रमण से बचा सकता है।

कालविज्ञान, कर्मफलज्ञान, उत्पातज्ञान, शकुनज्ञान, सर्वाङ्गशरीर लक्षण, आयुर्ज्ञान एवं प्रत्येक कार्य को करने का उचित समय (मुहूर्त)-ये सब ज्योतिष शास्त्र की आयुर्वेद को ऐसी देन हैं, जिनका भारतीय चिकित्सा पद्धति में पग-पग पर उपयोग किया जाता है।

---

१ —तत्रैव अ० ६।
२ —तत्रैव ६।४३।

ज्योतिष शास्त्र में रोगविचार की ऐतिहासिक परम्परा

प्राचीन भारत में ज्योतिष शास्त्र के मनीषी आचार्यों ने ज्योतिषशास्त्र के सुमान्य नियमों द्वारा मनुष्य के स्वास्थ्य तथा उसमें उत्पन्न होने वाले विकारों का विचार काफी गम्भीरता पूर्वक किया है। आचार्य वराहमिहिर ने अपने वृहज्जातक में अपने से पूर्ववर्ती मय, यवन, मणित्थ, शक्ति, जीवशर्मा एवं सत्याचार्य प्रभृति मनीषी विद्वानों का नाम लेकर बतलाया है कि इन विद्वानों ने मनुष्य की आयु का यथार्थरूप से ज्ञान करने के लिए अनेक उपयोगी नियमोंका प्रतिपादन किया है।[1] यद्यपि आजकल इन विद्वानों के द्वारा विरचित कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता। किन्तु प्राचीन काल में इनके द्वारा प्रणीत फलित ज्योतिष के मानक ग्रन्थ अवश्य रहे होंगे, जिनका सम्यक् परिशीलन कर वराहमिहिरने मनुष्यकी आयु तथा जीवन में उत्पन्न होने वाले विविध रोगों के योगों का प्रतिपादन किया है।

वराहमिहिर के काल (ई० सन् ५०५) से जातक ग्रन्थों में जन्मजात एवं आगन्तुक रोगों के योगों का विचार होने लगा था। यद्यपि उस समय यह विचार अन्धत्व, काणत्व, मूकत्व, बधिरत्व, पङ्गुत्व एवं नपुंसकत्व जैसे जन्मजात रोगों, तथा ज्वर, अतिसार, क्षय, पाण्डु, उदर विकार, कास, कुष्ठ, जलोदर, उन्माद एवं अपस्मार जैसे आगन्तुक रोगों तक सीमित था। किन्तु इतने प्राचीन काल में इन रोगों को कर्मप्रभावजन्य मान कर, जिनके कि कार्य-कारण का आयुर्वेद में स्पष्टतया प्रतिपादन नहीं हुआ था, विवेचन करने का प्रयास अपने आप में एक महत्व की बात है।

कुछ लोगों का विचार है कि वराहमिहिर से पूर्व महर्षि पाराशर ने अपने वृहत्पाराशर होराशास्त्र में उक्त जन्मजात एवं आगन्तुक रोगों के योगों तथा उनकी उत्पत्ति के सम्भावित समय का निरूपण किया था। महर्षि पराशर का समय कौन सा है तथा इन्होंने अपने जन्म से किस स्थान को पवित्र-किया था—यह अभी तक अज्ञात है। इनकी रचना 'वृहत्पाराशर होरा' के अध्ययन से इतना स्पष्ट है कि वह भाषाशैली तथा विषय निरूपण की दृष्टि से वराहमिहिर से पूर्ववर्ती प्रतीत होती है। किन्तु ९७ अध्यायों में विरचित 'वृहत्पाराशर होरा' का आज जो मुद्रित संस्करण उपलब्ध है, उसमें प्रतिपादित समस्त विषयों को उतना प्राचीन नहीं कहा जा सकता। अतः आज के इतिहासकार इसकी रचना ५ वीं या ६ठीं शताब्दी में मानते हैं।

पराशर का समय वराहमिहिर से पूर्ववर्ती हो या परवर्ती—इस विवाद में न पड़कर भी यह कहा जा सकता है कि ईसवी सन् की ६ठी शताब्दी के प्रारम्भ से ही फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में रोगविचार की परम्परा शुरू हो गयी थी, जिसका निर्वाह करते हुए आचार्य पृथुयशस, कल्याण वर्मा, भट्टोत्पल, पद्मप्रभ, सूरि, दुण्ढिराज, गणेश एवं नीलकण्ठ प्रभृति प्राचीन काल के सभी आचार्यों ने अपने जातक एवं प्रश्न ग्रन्थों में रोग विचार को समुचित स्थान दिया।

ईसवी सन् ११४८ (शक १०७०) में कबीरके समकालीन राजा वीरसिंह तोमर ने फलित ग्रन्थो में प्रतिपादित विविध रोगों के योग, कर्मविपाक संहिता में प्रतिपादित उन

१. वृहज्जातक आयुदायाध्याय श्लो० 1

रोगों के उत्पादक अशुभ कर्मों का प्रायश्चित्त तथा आयुर्वेद में निर्दिष्ट उन रोगों की चिकित्सा का संकलन कर वीरसिंहावलोक की रचना कर इस परम्परा को कुछ आगे बढ़ाया। किन्तु इस परम्परा में आगे किसी अन्य ग्रन्थ की रचना क्यों नहीं हुई, इसका कारण भी इतिहासज्ञों के सामने प्रश्नसूचक चिह्न लगाये खड़ा है।

आधुनिक काल में प्रश्नमार्ग, सर्वार्थचिन्तामणि, कृष्णीयम्, जातकपारिजात, दैवज्ञाभरण प्रभृति जातक एवं प्रश्न ग्रन्थों में भी प्राचीनकाल की परम्परा का निर्वाह करते हुए रोग विषयक योगों की अधिक युक्तिसंगत व्याख्या की गई। अभी हाल में सन् १६५८ में देवप्रयाग निवासी आचार्य पं० श्री चक्रधर जोशी ने जातक ग्रहों में प्रतिपादित विविध रोगों के ग्रहयोगों का संकलन कर गदावली की रचना की है। किन्तु फलित ज्योतिष के किसी भी एक ग्रन्थ में विविध रोगों के ग्रह योग के अलावा, उनके साध्यासाध्यत्व, प्रारम्भ एवं समाप्तिकाल, रोग परिज्ञान के सिद्धान्त एवं रोग निवृत्ति के उपाय जैसे सहजात पूरक प्रश्नों पर विचार नहीं किया गया। इसी कमीको देखकर मैं इन सब प्रश्नों का विचार करने के लिए ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन एवं अनुसन्धान में प्रवृत्त हुआ। तथा प्रस्तुत ग्रन्थ इसी दृष्टि से इस दिशा में किये गये शोध का एक लघु प्रयास है।

ज्योतिष शास्त्र, इसका क्षेत्र विस्तार एवं हमारा लक्ष्य

ज्योतिषशास्त्र की एक व्युत्पत्ति 'ज्योतिषां ग्रहनक्षत्राणां गतिमधिकृत्य कृतं शास्त्रम्' की गई है, ग्रह तथा विविध नक्षत्रों की गति-स्थिति आदि का प्रतिपादन करने के लिए विरचित शास्त्र ज्योतिष शास्त्र कहलाता है। इसमें प्रधानतया ग्रह, नक्षत्र ज्योति: पदार्थों का स्वरूप, संचार, परिभ्रमण, काल मार्गत्व-वक्रत्व, उदयास्त एवं ग्रहण प्रभृति समस्त घटनाओं का साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया जाता है। ज्योतिष शास्त्र की एक अन्य व्युत्पत्ति है—'ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्'। इस व्युत्पत्ति के अनुसार-सूर्य आदि समस्त ज्योतिर्मय पिण्डों के बारे में पूरी जानकारी देने वाले शास्त्र को ज्योतिषशास्त्र कहते हैं। यहाँ 'बोधक' शब्द में-ज्योति:पिण्डों की गति, स्थिति, संचार उदयास्त एवं ग्रहण आदि घटनाओं का शास्त्रीय रीति से प्रतिपादन तथा उनकी गति-स्थिति आदि के द्वारा मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का विवेचन- यह समस्त अर्थ निहित है। इन दोनों व्युत्पत्त्यर्थों में केवल इतना अन्तर है कि पहिले में केवल गणित तथा खगोल विद्या पर ही ध्यान दिया गया है, जब कि दूसरे में फलित विद्या का भी समावेश किया गया है।

उक्त दोनों व्युत्पत्तियों के अलावा इस शास्त्र का एक अन्य प्राचीन नाम 'ज्योतिर्विद्या' भी है। जिसका अर्थ होता है प्रकाश देने वाली, प्रकाशित करने वाली या प्रकाश के सम्बन्ध में बतलाने वाली विद्या। अर्थात् जिस विद्या से संसार का मर्म, जीवन-मरण का रहस्य तथा जीवन के सुख-दु:खों के सम्बन्ध में पूर्ण प्रकाश मिले, वह ज्योतिष शास्त्र है। वस्तुत: मानव जीवन अनेक समस्याओं का सन्दोह तथा उन्नति-अवनति, सुख-दु:ख' आत्मिक विकास एवं ह्रास आदि के विभिन्न रहस्यों का एक पिटारा है। यह शास्त्र

जीवन के रहस्यों को व्यक्त करने के साथ-साथ उपर्युक्त सन्दोह या पिटारे का उसी प्रकार प्रत्यक्षीकरण कर देता है, जैसे अन्धकार में रखे पदार्थों को दीपक का प्रकाश। इस शास्त्र की इसी विशेषता को ध्यान में रखते हुए आचार्य वराहमिहिर ने कहा है—

'यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः प्राप्तिम्।
व्यंजयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव॥' (लघुजातक १।२)

ज्योतिष शास्त्र का क्षेत्र, विस्तार

मानव जीवनके रहस्यों का विवेचन करने वाले इस शास्त्र के सैद्धान्तिक दृष्टि से तीन स्कन्ध माने गये हैं–१-होरा, २–सिद्धान्त एवं ३–संहिता।

होरा

'अहोरात्र' शब्द के आदि वर्ण 'अ' और अन्तिम वर्ण 'त्र' का लोप कर देने से 'होरा' शब्द बनता है।[1] इसका दूसरा नाम जातक शास्त्र है।[2] इस शास्त्र में जन्मकुण्डली के द्वादश भाव एवं राशियों में स्थित ग्रहों, विविध ग्रह योगों, दशा, गोचरीय ग्रह-स्थिति एवं ग्रहों के बलाबल के अनुसार मानव जीवन में आने वाले सुख-दुःख, उन्नति-अवनति, एवं भाग्योदय आदि जीवन के समस्त घटनाचक्र को जानने और बतलाने के लिए अनेक नियमों का निरूपण किया है। यह अंग फलित ज्योतिष का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। आचार्य कल्याणवर्मा कहते हैं—कि होराशास्त्र दैवज्ञ की वह दिव्य दृष्टि है, जिससे वह विधाता के द्वारा मनुष्य के ललाट पर लिखी भाग्य पंक्ति को आसानी से पढ़ लेता है या हृदयंगम कर लेता है।[3]

सिद्धान्त

इस स्कन्ध में त्रुटि से लेकर कल्पान्त काल की गणना; सौर, चान्द्र, सावन, नाक्षत्र, पितृ, जैव, दिव्यादिव्य, मन्वन्तर एवं बाह्य मानों का प्रतिपादन, ग्रहगतियों तथा उनके मार्गत्व-वक्रत्व आदि भेदों का निरूपण, व्यक्त एवं अव्यक्त गणित के नियमों का विवेचन, दिक् देश एवं काल आदि के विषयों विविध प्रश्नों का समाधान, भूगोल एवं खगोल का परिचय और वेधोपयोगी अनेक यन्त्रों के बनाने तथा प्रयोग की रीतियों का बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से निरूपण किया गया है।[4] सिद्धान्त स्कन्ध में न केवल ग्रहगणित का ही अपितु अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, अनुपातीय रेखागणित गोलीयरेखा-गणित, त्रिकोणमिति, चापीयत्रिकोणमिति, चलन-कलन, दीर्घ वृत्तीय गणित एवं प्रतिभा

१—आद्यन्तवर्णलोपाद्धोरा सिद्ध्यत्यहोरात्रात्। सारावली २।२।

२—जातकमिति प्रसिद्धं यल्लोके तदिह कीर्त्यते होरा। तत्रैव २।४।

३—विधात्रा लिखिता याऽसौ ललाटेक्षरमालिका।
दैवज्ञस्तां पठेद्व्यक्तं होरानिर्मलचक्षुषा॥ सारावली २।६।

४—त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा—
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते,
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः॥
—सिद्धांत शिरोणि गणिताध्याय १।६

विज्ञान आदि गणित की समस्त शाखा-प्रशाखाओं का सोदाहरण एवं सोपपत्तिक विवेचन किया गया है। अतः इस स्कन्ध को गणित स्कन्ध भी कहते हैं।

संहिता

फलादेश करने के लिए ज्योतिष शास्त्र की अनेक शाखा-प्रशाखाएँ हैं। उन सबके एकत्रित रूप को संहिता कहते हैं।[१] अतः ज्योतिषशास्त्र के इस स्कन्ध में-ग्रहचार का फल, ग्रहों के उदयास्त का फल, धूमकेतु एवं उल्कापात का फल, भूमि शोधन, दिक्शोधन शल्योद्धार, वायु एवं वृष्टि-विद्या, अंग विद्या, सामुद्रिक, प्रश्नविद्या, वास्तुविद्या, शकुन विद्या, मांगलिक कार्यों के मुहूर्त, रत्नपरीक्षा एवं विविध जीवों तथा पदार्थों के लक्षण तथा गुणदोषों का शास्त्रीय रीति से विवेचन किया गया है। फलित ज्योतिष की कुछ शाखाएँ-जैसे प्रश्नशास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, शकुन शास्त्र, मुहूर्तशास्त्र एवं वास्तुशास्त्र आदि जो आज स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में दिखलायी देती है, प्राचीनकाल में उनका समावेश इसी स्कन्ध में किया जाता था। संहिता स्कन्ध का विषय क्षेत्र इतना विस्तृत है कि जीवन से सम्बन्ध सभी उपयोगी लौकिक विषय इसके अन्तर्गत आ जाते हैं।

यदि व्यावहारिक दृष्टि से भारतीय ज्योतिष के वाङ्मय का परिशीलन किया जाय, तो इसमें दो ही धाराएँ दिखलाई देती हैं—१—गणित और २—फलित। गणित ज्योतिष में शुद्ध गणित के अतिरिक्त ग्रहगणित समाविष्ट है, जिसके ३ भेद होते हैं—सिद्धान्त, तन्त्र एवं करण। ग्रहगणित के जिन ग्रन्थों में सृष्ट्यादि से इष्ट दिन पर्यन्त का अहर्गण बनाकर ग्रहों का साधन किया जाता है, उन्हें सिद्धान्त, जिन ग्रन्थों में युगादि से इष्ट दिन पर्यन्त का अहर्गण बनाकर ग्रहों का साधन किया जाता है, उन्हें तन्त्र तथा जिन ग्रन्थों में मात्र कल्पित अभीष्ट वर्ष से इष्ट दिन तक का अहर्गण बना कर ग्रहों का साधन किया जाता है, उन्हें करण कहते हैं। इस प्रकार गणित ज्योतिष में मुख्यतया शुद्ध गणित एवं ग्रहगणित का समावेश है।

फलित ज्योतिष का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इसमें होरा एवं संहिता स्कन्धों के सभी विषय अन्तर्निहित हैं। ग्रहों के प्रभाव का प्रतिपादन करने की जितनी भी पद्धतियाँ आज तक विकसित एवं प्रचलित हुई हैं, वे सब फलित ज्योतिष की ही शाखाएँ मानी जाती हैं। इनमें प्रमुख हैं—१—जातक, २—ताजिक, ३—प्रश्न, ४—सामुद्रिक, ५—शकुन एवं ६—मुहूर्त। जातक शास्त्र में जन्मकुण्डली के आधार पर जीवन में घटित होने वाली समस्त घटनाओं की जानकारी के नियमों का विवेचन किया गया है। ताजिक शास्त्र में वर्ष कुण्डली के आधार पर एक वर्ष के भीतर घटित होने वाली घटनाओं का निरूपण किया जाता है। प्रश्नशास्त्र तात्कालिक फल बतलाने वाला शास्त्र है। इस शास्त्र में

१—ज्योतिःशास्त्रमनन्तभेदविततं स्कन्धत्रयाधिष्टितं,
तत्कार्त्स्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः संकीर्त्यते संहिता।

—वृहत्संहिता २।२

प्रश्न लग्न द्वारा, प्रश्नकर्ता के उच्चारित अक्षर द्वारा, प्रचलित स्वर द्वारा, या किसी अंक द्वारा प्रश्नकर्त्ता के तात्कालिक प्रश्नों का फल बतलाया जाता है। सामुद्रिक शास्त्र में सर्वाङ्गशरीरलक्षण एवं हस्तरेखा द्वारा जीवन के घटनाचक्र को ज्ञात करने के नियमों का प्रतिपादन किया गया है। शकुनशास्त्र में दिव्य, आंतरिक एवं भौम-इन तीन प्रकार के शकुनों द्वारा मानव जीवन एवं मानव समाज पर पड़ने वाले फल का निरूपण किया जाता है। तथा मुहूर्त शास्त्र में प्रत्येक कार्य को करने के लिए उपयुक्त समय का निर्णय किया जाता है। इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र का फलित अंग अपनी शाखाओं के साथ मानव-जीवन के समस्त पहलुओं को उजागर करता है। अन्य शास्त्र जहाँ जीवन या जगत् के एक-एक अंश का निरूपण करते हैं, वहाँ यह शास्त्र जीवन एवं जगत् के समस्त ज्ञेयों का प्रतिपादन करता है।

हमारा लक्ष्य

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में हम व्यक्ति की जन्मकुण्डली के द्वारा ग्रहयोग, दशा, गोचर एवं प्रश्नकालीन ग्रहस्थिति का विचार कर उसके जीवन में उत्पन्न होने वाले रोगों, उनके साध्यत्व-असाध्यत्व, प्रारम्भ एवं समाप्ति के समय तथा रोगों से मुक्ति के उपचार का विचार करेंगे।

यह विचार मुख्यतया जातकशास्त्र पर आधारित है। कारण यह है, कि फलित ज्योतिष में जातकशास्त्र ही एक ऐसा शास्त्र है जो मनुष्य के जीवन में घटित होने वाली समस्त शुभ एवं अशुभ घटनाओंका विचार करता है। यद्यपि सामुद्रिकशास्त्र भी जीवन के समस्त घटनाचक्र पर प्रकाश डालता है किन्तु इसके द्वारा जीवन में घटित होने वाला घटना के काल का उतना सूक्ष्मता से विचार नहीं किया जा सकता, जितना जातकशास्त्र से सम्भव है। साथ ही यह शास्त्र रोग विषयक प्रश्न के कुछ प्रमुख विचारणीय पहलुओं, जैसे रोगारम्भ एवं समाप्ति का काल, रोगों का साध्यत्व एवं असाध्यत्व आदि पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डालता। ताजिक शास्त्र द्वारा मात्र एक वर्ष में घटित होने वाली घटनाओं का विचार होता है तथा प्रश्न एवं शकुन शास्त्र द्वारा केवल तात्कालिक प्रश्नों का विचार होता है। इसलिए इस शोध प्रबन्ध में हमने मुख्यरूप से जातकशास्त्र तथा तत्तत् प्रसंगों में प्रश्नशास्त्र एवं शकुनशास्त्र आदि का अध्ययन कर विविध रोगों का विचार किया है। हमारा प्रमुख लक्ष्य यह है कि जैसे ज्योतिषशास्त्र द्वारा व्यक्ति की जन्मकुण्डली के आधार पर वर्षों पहिले यह जाना जा सकता है कि उसके जीवन में अमुक समय पर अमुक घटना घटेगी तथा उसका अमुक परिणाम निकलेगा। ठीक उसी प्रकार यह मनुष्य की जन्मकुण्डली के आधार पर यह जानने का प्रयास किया जायेगा कि उसको किस समय में कौन-कौन से रोग से पीड़ा होगी ? वह रोग ठीक होगा या नहीं ? ठीक होगा तो कब तक ? तथा उसका क्या परिणाम निकलेगा ? इत्यादि।

■

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

अध्याय–१

विषय-प्रवेश

ज्योतिष एवं आयुर्वेद दोनों इस बात पर सहमत हैं कि मनुष्य अपने पूर्वाजित अशुभ कर्मों के प्रभाव वश रोगी बनता है।[1] तथा अन्य विषयों की भाँति मनुष्य को होने वाले रोगों के सम्बन्ध में भी जन्मकुण्डली के आधार पर पूर्व जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

रोगों के सम्बन्ध में कुछ लोगों की यह धारणा है, कि वे आहार-विहार आदि की अनियमिता के कारण उत्पन्न होते हैं। और यदि मनुष्य इन पर समुचित नियन्त्रण रखे, तो वह स्वस्थ एवं दीर्घजीवी बना रह सकता है। किन्तु ज्योतिष शास्त्र की मान्यता इससे भिन्न है। वह मात्र अनियमित आहार-विहार को ही रोगोत्पत्ति का कारण नहीं मानता। क्योंकि यह बात अनेक बार प्रत्यक्ष रूप से देखने में आती है, कि कुछ लोग नितान्त अनियमित जीवन बिताते हुए भी स्वस्थ रहते हैं। और कुछ अन्य नियमित जीवन के अभ्यासी लोग भी रोगों के शिकार बन जाते हैं। इस विषय में एक और ध्यान देने योग्य बात यह है कि यदि मात्र आहार-विहार की अनिमियता को ही रोगोत्पत्ति का कारण मान लिया जाय, तो आनुवंशिक रोग, महामारी जन्य रोग एवं दुर्घटना जन्य रोगों की उत्पत्ति के कारण की भली-भाँति व्याख्या नहीं की जा सकती। यही कारण है कि आयुर्वेद शास्त्र ने भी रोगोत्पत्ति के कारणों का विचार करते हुए अन्तमें यह बतलाया कि कभी पूर्वाजित कर्मों के प्रभाव से, कभी-कभी दोषों के प्रकोप से और कभी-कभी इन दोनों के प्रभाव से शारीरिक (वात, पित्त एवं कफ) एवं मानसिक रोग होते हैं।[2]

ज्योतिष शास्त्र की मान्यता है कि प्रत्येक छोटा-बड़ा रोग पूर्वाजित कर्म-फल के रूप में उत्पन्न होता है। तथा जन्मकाल, प्रश्नकाल एवं गोचर में प्रतिकूल ग्रहों के द्वारा उसकी जानकारी की जा सकती है। अपनी इसी मान्यता के अनुसार वह किसी भी व्यक्ति की जन्मकुण्डली के आधार पर वर्षों पूर्व ही यह घोषित कर देने में समर्थ है, कि उस व्यक्ति को अमुक समय में अमुक रोग होगा और उसका परिणाम अमुक निकलेगा।

---

१. 'जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते'।
—प्रश्नमार्ग : सम्पादक—शुकदेव चतुर्वेदी, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९७८, अध्याय १३ श्लोक २९।

२. कर्मप्रकोपेण कदाचिदेके दोषप्रकोपेण भवन्ति चान्ये।
तथापरे प्राणिषु कर्मदोषप्रकोपजाः कायमनोविकाराः ।। त्रिशठाचार्य।
—वीरसिंहावलोकः वीरसिंहकृत, गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, बम्बई, सम्वत् १९८१। पृ० ८।

रोगों के विचार का प्रमुख उपकरण—ग्रहयोग

पूर्वार्जित कर्मों के प्रभाववश उत्पन्न होने वाले रोगों का विचार होराग्रन्थों में प्रतिपादित ग्रहयोगों के आधार पर किया जाता है।[१] सूर्य आदि ग्रह मनुष्य के शरीर के अंग, धातु एवं दोषों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब ग्रह अनिष्ट स्थान आदि में स्थित होने के कारण अनिष्ट प्रभाव कारी हो जाता है, तब वह शरीर के अंग, धातु एवं दोष आदि में विकार या रोग की सूचना देता है। किन्तु जब वही ग्रह इष्ट स्थान आदि में स्थित होने के कारण इष्ट प्रभावयुक्त होता है, तब वह शरीर के अंग, धातु एवं दोष आदि में आरोग्यता की सूचना देता है। इसलिए ज्योतिष शास्त्र में रोगों का विचार ग्रह योगों के आधार पर किया जाता है।

योग एवं उनके भेद

ग्रहयोग को ज्योतिष शास्त्र की भाषा में योग कहा जाता है। ग्रहों की राशि या भाव में स्थिति को योग कहते हैं। यह मनुष्यों को पूर्वार्जित कर्मों के परिणाम से मिलाता है, इसलिए योग कहलाता है।[२]

ग्रह, स्थान (राशि) एवं भाव के आधार पर बनने वाले योग स्थान आदि के भेद से सात प्रकार के माने गये हैं,[३] यथा—१—स्थान से, २—भाव से, ३—ग्रहों से, ४—स्थान, भाव एवं ग्रहों से, ५—स्थान एवं भाव से, ६—भाव एवं ग्रहों से तथा, ७—स्थान एवं ग्रहों से—सात प्रकार के योग बनते हैं।

१. स्थान से बनने वाले योग—

मेष आदि द्वादश राशियों, उनके भेद, (चर, स्थिर, द्विस्वभाव, उच्च, नीच, मूल त्रिकोण, स्वराशि एवं शत्रु राशि आदि) तथा राशियों के वर्ग (लग्न, होरा, द्रेष्काण, सप्तमांश, नवमांश, दशमांश, द्वादशांश, षोडशांश, त्रिंशांश, षष्ठ्यंश, पारिजात आदि) को ग्रहों का स्थान कहते हैं। अतः इनके द्वारा बनने वाले योगों को स्थान से बनने वाला योग कहा जाता है। इन योगों के उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(क) मिथुन लग्न में उत्पन्न व्यक्ति भोगी, बन्धुओं में रत, अधिक दयालु, धनवान्, गुणी, तत्ववेत्ता, योगात्मा, सुजनप्रिय, सुन्दर एवं रोगी होता है।[४]

---

१. प्रश्नमार्गः पूर्वोद्धृत, अध्याय १२ श्लोक ३०।

२. ग्रहाणां स्थितिभेदेन पुरुषान् योजयन्ति हि।
फलैः कर्मसमुद्भूतैरिति योगाः प्रकीर्तिताः॥
—प्रश्नमार्गः पूर्वोद्धृत, अ० ६ श्लो० ४८।

३. तत्रैव अ० ६ श्लो० ४६-५०।

४. 'भोगी बन्धुरतो दयालुरधिकः श्रीमान् गुणी तत्वविद्।
योगात्मा सुजनप्रियोऽतिसुभगो रोगी च युग्मोदये॥"
—जातकपारिजातः वैद्यनाथ विरचित, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १६४२, अ० ६ श्लो० १०६।

(ख) वृश्चिक के नवांश में उत्पन्न मनुष्य दुःखी, दरिद्री, दुर्बल, नौकरी के लिए घूमने वाला तथा रोगी होता है।[1]

२. भाव से बनने वाले योग—

कुण्डली में लग्न से प्रारम्भ कर १२ भाव होते हैं, जिनके नाम हैं— १–तनु, २–धन, ३–सहज, ४–सुख, ५–पुत्र, ६–रोग, ७–जाया, ८–मृत्यु, ९–धर्म, १०–कर्म, ११–आय, एवं १२–व्यय। इन भावों में से कुछ को केन्द्र, त्रिकोण, पणफर, आपोक्लिम, त्रिक, त्रिषडाय, द्विद्वादिश, मारक, उपचय एवं अनुपचय भी कहते हैं। अतः इनके द्वारा बनने वाले योगों को भाव से बनने वाला योग कहते हैं। इन योगों के उदाहरण हैं :—

(क) चन्द्रमा से द्वितीय एवं द्वादश भाव में कोई भी ग्रह न हो तो केमद्रुम योग है।[2] इस योग में उत्पन्न व्यक्ति मलिन, दुःखी, नीच, निर्धन, दास एवं विकलेन्द्रिय होता है।

(ख) लग्न (प्रथम भाव) पर चन्द्रमा की दृष्टि न हो तो पिता के परोक्ष में जन्म होता है।[3]

३. ग्रहों से बनने वाले योग—

ज्योतिष शास्त्र में शुभ अशुभ फल के सूचक कुल नौ ग्रह माने गये हैं— १–सूर्य, २–चन्द्र, ३–मंगल, ५–बुध, ५–गुरु, ६–शुक्र, ७–शनि, ८–राहु, ९–केतु। इन ग्रहों की परस्पर युति से बनने वाले योगों के ग्रहों से बनने वाला योग कहा जाता है। इन योगों के उदाहरण हैं :—

(क) जिसके जन्म के समय चन्द्रमा पूर्णबली तथा पूर्णकलावाला हो वह व्यक्ति राजा बनता है।[4]

(ख) केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश ये दोनों दोषयुक्त होने पर भी आपसी सम्बन्ध से बलवान् होकर राजयोग बनाते हैं।[5]

(ख) कुण्डली में तृतीय भाव में मीन राशि में सूर्य एवं चन्द्रमा हों, तो व्यक्ति जन्म से ही रोग ग्रस्त होता है तथा वह तीन दिन तक जीवित रहता है।[6]

---

१. 'कीटांशे विकलो गनः कृशतनुः सेवाटनो रोगवान्।' -तत्रैव श्लो० ९७।

२. वृहज्जातक : वाराहमिहिर, ठाकुर प्रसाद एण्ड संस, वाराणसी, सम्बत् २०३१, अ० १३ श्लो० ६।

३. वृहज्जातक : पूर्वोद्धृत, अ० ५ श्लो० १।

४. जातक पारिजात : पूर्वोद्धृत, अ० ७ श्लो० ३८।

५. लघुपाराशरी : गंगा पुस्तकालय, वाराणसी, अ० २ श्लो० २।

६. वृहज्जातक : पूर्वोद्धृत, अ० ७ श्लो० १४।

४. स्थान, भाव एवं ग्रहों से बनने वाले योग—

जातक ग्रन्थों में कुछ योग इस प्रकार के मिलते हैं, जो स्थान, भाव एवं ग्रह—इन तीनों के आधार पर बनते हैं। इन योगों में स्थान, भाव एवं ग्रह इन तीनों का समान रूप से महत्व होता है। तथा वे तीनों मिलकर एक विशेष प्रकार के फल (परिणाम) के सूचक बन जाते हैं। इन योगों के उदाहरण हैं :—

(क) कर्क लग्न में चन्द्रमा एवं गुरु हों, केन्द्र में बुध एवं शुक्र हों तथा शेष ग्रह (रवि, मंगल एवं शनि) तृतीय, षष्ठ एवं एकादश में हों, तो व्यक्ति अमित-आयु होता है।[१]

५. स्थान एवं भाव से बनने वाले योग—

फलित के ग्रन्थों में कुछ योग इस प्रकार के मिलते हैं, जो स्थान एवं भाव के प्रभाववश बनते हैं। ऐसे योगों में स्थान एवं भाव इन दोनों का समान रूप से महत्त्व होता है। तथा वे दोनों मिलकर एक विशेष प्रकार के योगज फल की सूचना देते हैं। इन योगों के उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(क) यदि सप्तम भाव में द्विस्वभाव राशि हो तो शत्रुओं के द्वारा किये गये अभिचार (प्रयोग) से रोग होता है।[२]

(ख) मेष लग्न में उत्पन्न व्यक्ति बन्धुओं का द्वेषी, दुर्बल शरीर, क्रोधी, विवादप्रिय, मानी, पराक्रमी एवं दुर्बलजानु होता है।[३]

६. भाव एवं ग्रहों से बनने वाले योग—

भावों में ग्रहों की स्थिति या भावों पर ग्रहों की दृष्टि के कारण बनने वाले इन योगों में भाव एवं ग्रहों का समान रूप से महत्त्व होता है। फलित ग्रन्थों में अधिकांश योग इसी प्रकार के होते हैं। इन योगों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(क) पाप ग्रह एवं राहु के साथ चन्द्रमा ५, ८ या १२ वें भाव में हो, तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति पागल, क्रोधी तथा कलहप्रिय होता है।[४]

(ख) लग्न में मंगल तथा षष्ठेश निर्बल हो तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति को अजीर्ण, गुल्म एवं शूल रोग होता है।[५]

---

१. सारावली : कल्याण वर्मा, मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स, वाराणसी, सम्बत् २००३, अ० १० श्लो० ७४।

२. जातक परिजात : पूर्वोद्धृत, अ० ६ श्लो० ७७।

३. तत्रैव. अ० ६ श्लो० १०५

४. जातक पारिजात : पूर्वोद्धृत, अ० ६ श्लो० ८३।

५. तत्रैव, श्लो० ६०।

७. स्थान एवं ग्रहों से बनने वाले योग—

राशियों एवं उनके वर्गों में ग्रहों की स्थिति द्वारा या उन पर ग्रहों की दृष्टि द्वारा बनने वाले इन योगों में स्थान एवं ग्रहों का समान रूप से महत्त्व होता है। फलित ग्रन्थों में इस प्रकार के योगों की भी पर्याप्त संख्या है। इन योगों के उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(क) यदि चन्द्रमा एवं शनि कर्क, वृश्चिक या कुम्भ के नवांश में हों, तो जातक को गुप्त रोग होता है।[1]

(ख) यदि शनि कर्क में तथा चन्द्रमा मकर में हो तो जातक को जलोदर रोग होता है।[2]

योगों के प्रमुख तीन तत्व

ज्योतिषशास्त्र में रोग का विचार करने के लिए जितने योग बतलाये गये हैं, उनमें ३ तत्त्व प्रधान हैं—१—ग्रह, २—राशि एवं ३—भाव। अतः ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से रोगों का विस्तार से विवेचन करने के पूर्व उक्त ग्रह, राशि एवं भाव का विचार कर लेना आवश्यक है।

ग्रह

ज्योतिष शास्त्र में शुभ एवं अशुभ फल के सूचक कुल ९ ग्रह माने गये हैं, यथा—१–सूर्य, २–चन्द्र, ३–मंगल, ४–बुध, ५–गुरु, ६–शुक्र, ७–शनि, ८–राहु, एवं ९–केतु। उक्त ग्रहों में राहु तथा केतु—ये दोनों छायाग्रह हैं। अन्य ग्रहों की भांति सौरमण्डल में इनका ज्योतिष्पिण्ड (चमकीला बिम्ब) दिखलाई नहीं देता। शेष सात ग्रहों के ज्योतिष्पिण्ड सौरमण्डल में अपनी अपनी कक्षाओं में घूमते हुए दिखलाई देते हैं। यद्यपि ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में राहु केतु को ग्रह नहीं माना गया तथापि फलित शास्त्र में इनके महत्त्व को स्वीकार कर इन्हें इन ग्रहों के साथ सम्मिलित किया गया है।

आधुनिक काल में पाश्चात्य ज्योतिर्विदों ने सौरमण्डल में हर्शल, नेपच्यून एवं प्लेटो नामक तीन अन्य ग्रहों की खोज की है। पाश्चात्य ज्योतिष ग्रन्थों में इन ग्रहों के प्रभाव का उल्लेख भी किया जाने लगा है। परन्तु अभी इनके प्रभाव का सम्यक् विश्लेषण नहीं हो पाया। तथा भारतीय ज्योतिष ग्रन्थों में उक्त नवीन आविष्कृत ग्रहों के प्रभाव का भी उल्लेख नहीं है। अतः इस शोध प्रवन्ध में हम पूर्वोक्त ९ ग्रहों के आधार पर ही रोग का विचार करेंगे।

रोग विचार के प्रसंग में ग्रहों का परिचय

कौन सा ग्रह किस तत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है? उसका कद एवं रंग कैसा है? वह शरीर के किन-किन अंगों को प्रभावित करता है? और वह किन-किन रोगों को

---

१. तत्रैव, श्लो० ८२।
२. तत्रैव, श्लो० ९७।

उत्पन्न कर सकता है ? इन बातों का विचार ज्योतिष ग्रन्थों[1] में विस्तार पूर्वक किया गया है, जो इस प्रकार है—

सूर्य —

यह अग्नितत्त्व तथा मध्यम कद वाला शुष्क ग्रह है । यह मनुष्यों के (पुरुषों के दायें तथा स्त्रियों के बायें) नेत्र, आयु, अस्थि, सिर, हृदय, प्राण शक्ति, मेदा; रक्त तथा पित्त को प्रभावित करता है । इसके बली होने पर हड्डियाँ मजबूत होती हैं तथा शरीर स्वस्थ बना रहता है । और इसके निर्बल, अशुभ या रोग कारक होने पर क्षय, पित्त प्रकोप, नेत्र रोग, अस्थि रोग, शिरोरोग, हृदय रोग, उष्णवात, ज्वर, मूर्च्छा, रक्तस्राव, चर्मरोग, मृगी एवं शूल होता है ।

चन्द्रमा—

यह जलतत्त्व तथा दीर्घकद वाला जलीय ग्रह है । यह व्यक्ति के (पुरुष के वाम तथा स्त्री के दक्षिण) नेत्र, स्तन, वक्ष, फेफड़ा, मन, मस्तिष्क, उदर, मूत्राशय, रक्त, रस-धातु; शारीरिक पुष्टि एवं कफ को प्रभावित करता है । इसके बली होने पर शरीर में रक्तसंचार ठीक बना रहता है, आरोग्य वृद्धि होती है तथा मनोबल उन्नत रहता है । इसके निर्बल अशुभ या रोग कारक होने पर कफ रोग, मूत्र विकार, जलोदर, मुख रोग, नासिका रोग, पाण्डु, क्षय, मन्दाग्नि, अतिसार, स्त्रीसंसर्ग जन्य रोग, प्रदर, अपस्मार, वात श्लेष्मा एवं मानसिक रोग होते हैं ।

मंगल—

यह अग्नि तत्त्व तथा छोटे कद वाला शुष्क ग्रह है । यह शरीर में कपाल, कान, स्नायु; जननेन्द्रिय, मज्जा, पुट्ठों की पुष्टता, शारीरिक शक्ति, दाह, शोथ, धैर्य एवं पित्त को प्रभावित करवा है । इसके बली होने पर व्यक्ति के शरीर में हड्डियाँ मजबूत होती हैं, प्रतिरोध शक्ति बढ़ती है तथा साहस एवं धैर्य की वृद्धि होती है । यह निर्बल, अशुभ या रोग कारक हो तो रक्त विकार, रक्तचाप, फोड़ा-फुंसी, खाज, सूजन, चोट, रक्तस्राव कुष्ठ, ज्वर, वात पित्त विकार, महामारीजन्य रोग, दुर्घटनाजन्य रोग, गुप्तरोग, अग्निदाह, मुष्कवृद्धि तथा वे रोग जिनमें शल्य क्रिया आवश्यक हो, होते हैं ।

बुध—

यह पृथ्वी तत्त्व तथा सामान्य कद वाला जलीयग्रह है । शरीर में यह जिह्वा, वाणी, स्वरचक्र, श्वासनली, अगला मस्तिष्क, फुफ्फुस, मज्जातन्तु, केश, मुख, हाथ एवं त्रिधातु

१. देखिए—(क) फलदीपिका: मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सन् १९७५, अ० १४ श्लो० २-९ ।
(ख) जातक पारिजात: पूर्वोद्धृत, अ० २ श्लो० ७५-८१ ।
(ग) गदावली: आचार्य चक्रधर जोशी, श्रीलक्ष्मीधर विद्यामन्दिर, देवप्रयाग, सन् १९५८, अ० १ श्लो० ६–१४ ।

को प्रभावित करता है। इसके बलवान् होने पर बालक का मस्तिष्क पूर्ण विकसित होता है, उसका व्यक्तित्व आकर्षक, तथा प्रतिपादन शैली मोहक होती है। इसके निर्बल या रोगकारक होने पर मूर्च्छा, हिस्टीरिया, मानसिक रोग, चक्कर आना, न्यूमोनिया, विषमज्वर, त्रिदोषज्वर, टाइफाइड, पाण्डु, संग्रहणी, शूल, मन्दाग्नि, गण्ड विकार, वाणी विकार, उदर विकार, कण्ठरोग, नासिकारोग एवं स्नायु रोग होते हैं।

गुरु—

यह आकाश तत्त्व (मतान्तर से वायु तत्त्व) तथा मध्यम कद (मतान्तर से ह्रस्व कद) वाला जलीय ग्रह है। शरीर में यह चर्बी, वीर्य, उदर, यकृत, रक्त-धमनी, त्रिदोष तथा कफ़ को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर शरीर पुष्ट होता है, विचार शक्ति अच्छी होती है तथा मन में शान्ति एवं मनोयोग बना रहता है। इसके निर्बल, अशुभ या रोगकारक होने पर उदर विकार, मज्जादोष, यकृतरोग, प्लीहा, स्थूलता, दन्तरोग, वायु विकार, मूर्च्छा, मस्तिष्क विकार, ज्वर, कर्ण रोग, ऊंचाई से गिरना एवं मानसिक तनाव उत्पन्न होता है।

शुक्र—

यह जलतत्व तथा मध्यम कद (मतान्तर से ह्रस्व कद) वाला जलीयग्रह है। शरीर में यह जननेंद्रिय, शुक्राणु, नेत्र, कपोल, चिबुक, स्वर, रस, गर्भाशय एवं संवेग शक्ति को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर शरीर सुडौल होता है, मनुष्य की काम शक्ति बलवान् होती है तथा वीर्य पुष्ट होता है। इसके निर्बल, अशुभ या रोग कारक होने पर मूत्र विकार, वीर्य विकार, गुप्त रोग, स्त्रीसंसर्गजन्य रोग, मादक द्रव्यों के सेवन से उत्पन्न होने वाले विकार, विषजन्य रोग, उपदंश, प्रमेह, मधुमेह, प्रदर, कफवायु विकार एवं पाण्डु रोग होता है।

शनि—

यह वायु तत्त्व तथा लम्बे कद वाला शुष्क ग्रह है। यह शरीर में हड्डियों की जोड़, पैर, घुटने, वात संस्थान, स्नायु संस्थान, मज्जा तथा वात को प्रभावित करता है। इसके बलवान् होने पर स्नायुमण्डल पुष्ट तथा शरीर सुदृढ़ होता है। इसके निर्बल, अशुभ या रोगकारक होने पर वायु विकार, स्नायु विकार, जोड़ों में दर्द, गठिया, सन्धिवात, पक्षाघात, पागलपन, दाढ़ में दर्द, अपचन, खांसी, दमा, अंग-भंग तथा असन्तोष या निराशाजन्य मानसिक रोग होते हैं। यह अपराध वृत्ति से लेकर आत्महत्या तक करवाने में समर्थ माना गया है।

राहु—

यह वायु तत्त्व तथा मध्यम कद वाला ग्रह है। यह शरीर में मस्तिष्क, रक्त, त्वचा एवं वात को प्रभावित करता है। इसके बलवान् होने पर शरीर में फुर्ती, ताजगी एवं चैतन्यता बनी रहती है। तथा इसके निर्बल, अशुभ या रोग कारक होने पर चेचक, कृमि, मृगी, सर्पदंश, पशुओं से चोट, कुष्ठ एवं कैंसर जैसे असाध्य रोग हो जाते हैं।

केतु—

यह वायु तत्व तथा छोटे कद वाला ग्रह है। यह शरीर में वात रक्त तथा चर्म को विशेष रूप से प्रभावित करता है। इसके बलवान् होने पर शरीर में श्रम शक्ति, संघर्ष शक्ति, प्रतिरोध शक्ति एवं सक्रियता बनी रहती है। तथा इसके निर्बल होने पर शरीर में सुस्ती, अकर्मण्यता, शरीर में चोट, घाव, चर्म रोग, जटिल रोग एवं अलर्जी हो जाती है।

ग्रहों की राशियाँ

ज्योतिष शास्त्र में सूर्य आदि सात ग्रहों को मेष आदि द्वादश राशियों का स्वामी माना गया है। यथा—सिंह राशि का स्वामी सूर्य, कर्क का चन्द्रमा, मेष तथा वृश्चिक का मंगल, मिथुन एवं कन्या का बुध, धनु तथा मीन का गुरु, वृष तथा तुला का शुक्र और मकर तथा कुम्भ राशि का स्वामी शनि होता है। राहु एवं केतु छाया ग्रह हैं। अतः ये दोनों किसी राशि के स्वामी नहीं होते। परन्तु परवर्ती कुछ आचार्यों ने राहु को कन्या राशि का तथा केतु को मीन राशि का स्वामी माना है।[१]

ग्रहों की उच्च, नीच एवं मूल त्रिकोण राशि

सूर्य आदि ग्रहों की उच्च राशियाँ मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन, तुला, मिथुन एवं धनु मानी गयी हैं। इन ग्रहों की नीच राशियाँ यथा क्रमेण तुला, वृश्चिक, कर्क, मीन, मकर, कन्या, मेष, धनु एवं मिथुन होती हैं। इन राशियों में भी परमोच्च तथा परमनीच के अंश इस प्रकार हैं—सूर्य का परमोच्च मेष के १० अंश पर, चन्द्रमा का वृष के ३ अंश पर मंगल का मकर के २८ अंश पर, बुध का कन्या के १५ अंश पर, गुरु का कर्क के ५ अंश पर, शुक्र का मीन के २७ अंश पर, शनि का तुला के २० अंश पर, राहु का मिथुन के १५ अंश पर, तथा केतु का धनु के १५ अंश पर परमोच्च होता है। इसी प्रकार सूर्य का परमनीच तुला के १० अंश पर, चन्द्रमा का वृश्चिक के ३ अंश पर, मंगल का कर्क के २८ अंश पर, बुध का मीन के १५ अंश पर, गुरु का मकर के ५ अंश पर, शुक्र का कन्या के २७ अंश पर, शनि का मेष के २० अंश पर, राहु का धनु के १५ अंश पर तथा केतु मिथुन के १५ अंश पर परमनीच होता है।

किन ग्रहों को, किन राशियों के, कितने अंश पर मूलत्रिकोण माना गया है?—यह इस प्रकार समझना चाहिए—

ग्रह	मूलत्रिकोण राशि एवं अंश
सूर्य	—सिंह राशि में १ से २० अंश तक।
चन्द्र	—वृष राशि में ४ से ३० अंश तक।
मंगल	—मेष राशि में १ से १२ अंश तक।

१—(क) 'फणिनायकस्य तुङ्गं नृयुग्मं रमणी गृहं स्यात्'।
—जातक परिजातः पूर्वोद्धृत, अ० श्लो २८।

(ख) अङ्गीकृतं सोम्यगृहं सुहृत्त्वात्कन्याह्वयं तच्च विधुन्तुदेन।
तत्सप्तमं यत् शिखिना गृहीतं मीनाह्वयं चेति बुधा वदन्ति।
—प्रश्नभैरवः भूषण प्रेस, मथुरा

वुध —कन्या राशि में १६ से २५ अंश तक।

गुरु —धनु राशि में १ से २० अंश तक।

शुक्र —तुला राशि में १ से २० अंश तक।

शनि —कुम्भ राशि में १ से २० अंश तक।

प्राचीन आचार्यों ने राहु एवं केतु को छायाग्रह मानकर उनकी मूल त्रिकोण राशि या स्वराशि नहीं मानी है। किन्तु परवर्ती आचार्यों ने कुम्भ राशि में राहु का मूल त्रिकोण माना है।[1]

ग्रहों की स्वराशि, उच्च, नीच एवं मूलत्रिकोण राशियाँ

ग्रह	स्वराशि	उच्चराशि अंश	नीचराशि अंश	मूलत्रिकोण राशि
सूर्य	सिंह में २१ से ३० अंश	मेष में १० अंश तक	तुला में १० अंश तक	सिंह में १ से २० अंश तक
चन्द्रमा	पूरी कर्क राशि	वृष में ३ अंश तक	वृश्चिक में ३ अंश तक	वृष में ४ से ३० अंश तक
मंगल	मेष में १३ से ३० अंश पूरी वृश्चिक	मकर में २८ अंश तक	कर्क में २८ अंश तक	मेष में १२ अंश तक
बुध	कन्या में २६ से ३० अंश पूरी मिथुन	कन्या में १८ अंश तक	मीन में १३ अंश तक	कन्या में १६ से २५ अंश
गुरु	पूरी मीन राशि धनु के २१ से ३० अंश	कर्क में ५ अंश तक	मकर में ५ अंश तक	धनु में १ से २० अंश
शुक्र	पूरी वृष राशि तुला में २१ से ३० अंश	मीन में २७ अंश तक	कन्या में २७ अंश तक	तुला में १ से २० अंश
शनि	पूरी मकर राशि कुंभ में २१ से ३० अंश	तुला में २० अंश तक	मेष में २० अंश तक	कुंभ में १ से २० अंश
राहु	पूरी कन्या राशि	मिथुन के २५ अंश तक	धनु के १५ अंश तक	पूरी कुम्भ राशि
केतु	पूरी मिथुन राशि	धनु के १५ अंश तक	मिथुन के १५ अंश तक	पूरी वृष राशि

१. देखिये—जातक पारिजातः पूर्वोद्धृत, अ० १ श्लो० २८।

ग्रहों का पारस्परिक सम्बन्ध—

ग्रहों का पारस्परिक सम्बन्ध दो प्रकार का माना गया है—(१) नैसर्गिक (२) तात्कालिक ।[1] नैसर्गिक दृष्टि से ये निकटता एवं दूसरी के आधार पर मित्र एवं शत्रु माने जाते हैं । नैसर्गिक दृष्टि से ग्रहों की मित्रता, शत्रुता एवं उदासीनता इस प्रकार मानी गयी है—

सूर्य— इसके चन्द्रमा, मंगल एवं गुरु मित्र हैं । शुक्र एवं शनि शत्रु हैं । तथा बुध सम है ।

चन्द्रमा—इसके सूर्य तथा बुध मित्र हैं । राहु शत्रु है और मंगल, गुरु, शुक्र एवं शनि सम हैं ।

मंगल— इसके सूर्य, चन्द्र एवं गुरु मित्र हैं, बुध एवं राहु शत्रु हैं । तथा शुक्र एवं शनि सम हैं ।

बुध— इसके सूर्य, शुक्र मित्र हैं । चन्द्रमा शत्रु है । तथा मंगल, गुरु एवं शनि सम हैं ।

गुरु— इसके सूर्य, चन्द्र एवं मंगल मित्र हैं । बुध एवं शुक्र शत्रु हैं । तथा शनि एवं राहु सम हैं ।

शुक्र— इसके बुध, शनि मित्र हैं । सूर्य एवं चन्द्र शत्रु हैं । मंगल एवं गुरु सम हैं ।

शनि— इसके बुध एवं शुक्र मित्र हैं । सूर्य, चन्द्र एवं मंगल शत्रु हैं । तथा गुरु सम है ।

राहु— इसके बुध, शुक्र एवं शनि मित्र हैं । सूर्य, चन्द्र एवं मंगल शत्रु हैं तथा गुरु सम है ।

केतु— इसके बुध, शुक्र एवं शनि मित्र हैं । सूर्य, चन्द्र एवं मंगल शत्रु हैं ।

तात्कालिक दृष्टि से ग्रहों की मित्रता एवं शत्रुता का ज्ञान, उनकी निकटता एवं दूरी के आधार पर मानी जाती है। किसी भी ग्रह से २।३।४।१०।११ एवं १२ वें स्थान में रहने वाले ग्रह परस्पर मित्र होते हैं तथा । १।५।६।७।८ एवं ९ वें स्थान में रहने वाले-ग्रह परस्पर शत्रु होते हैं क्योंकि एक राशि में साथ-साथ रहने पर ग्रहों में युद्ध भी होता है ।[2] अतः एक राशि में रहने वाले ग्रह, अत्यन्त निकट होने पर भी परस्पर शत्रु होते हैं ।

नैसर्गिक एवं तात्कालिक सम्बन्धों के आधार पर ग्रहों का आपसी सम्बन्ध ५ प्रकार का हो जाता है—(१) अति मित्र, (२) मित्र, (३) सम, (४ शत्रु एवं (५) अतिशत्रु जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दोनों दृष्टियों से मित्र होते हैं, वे परस्पर अति-मित्र कहलाते हैं । जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों में से एक में मित्र तथा अन्य में सम होते हैं, आपस में मित्र कहे जाते हैं । जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों में से एक दृष्टि से मित्र तथा दूसरी दृष्टि से शत्रु होते हैं, आपस में सम कहलाते हैं । जो ग्रह

---

१. बृहज्जातक पूर्वोद्धृत, अ० २ श्लो० १७-१८ ।

२. देखिए—सूर्य सिद्धान्तः सं० कपिलेश्वर शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, सन् १९४६—ग्रहयुत्यधिकार श्लो० १, २०-२३ ।

नैसर्गिक तथा तात्कालिक दृष्टियों में से एक दृष्टि से शत्रु तथा दूसरी दृष्टि से सम होते हैं, परस्पर शत्रु माने जाते हैं। और जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों से आपस में शत्रु होते हैं, वे परस्पर अतिशत्रु कहलाते हैं।

पाराशरीय सम्बन्ध-चतुष्टय

महर्षि पाराशर ने ग्रहों की नैसर्गिक एवं तात्कालिक मित्रता-शत्रुता के अलावा उनकी युति-दृष्टि आदि के आधार पर अन्य चार प्रकार के सम्बन्ध माने हैं[1], जो इस प्रकार हैं— (१) युति सम्बन्ध, (२) दृष्टि सम्बन्ध, (३) स्थान सम्बन्ध एवं (४) एकान्तर सम्बन्ध। एक राशि एवं एकही भाव में साथ-साथ बैठने वाले ग्रहों में युति सम्बन्ध होता है। आपस में एक-दूसरे को देखने वाले ग्रहों में दृष्टि सम्बन्ध होता है। एक-दूसरे की राशि में बैठने वाले ग्रहों में स्थान सम्बन्ध होता है। तथा जब एक ग्रह दूसरे की राशि में बैठा हो और दूसरा उसे देखता हो, तो उनमें एकान्तर सम्बन्ध होता है। इन चार प्रकार के सम्बन्धों को सम्बन्ध-चतुष्टय कहते हैं।

ये चार प्रकार के सम्बन्ध ग्रहों में सहयोग या पूरक भाव के सूचक होते हैं। तथा इन सम्बन्धों के प्रभाववश दोषयुक्त या निर्बल ग्रह भी बलवान् होकर कारक या मारक बन जाते हैं।[2]

ग्रहों की दृष्टि

ग्रहों की दृष्टि दो प्रकार की होती है १. साधारण दृष्टि या पाददृष्टि तथा २. विशेष दृष्टि। प्रत्येक ग्रह जिस स्थान पर बैठा हो, उससे तीसरे तथा १० वें स्थान को एकपाद-दृष्टि से; ५ वें तथा ९ वें स्थान को द्विपाद दृष्टि से; चौथे तथा ८ वें स्थान को त्रिपाद दृष्टि से और ७ वें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है।[3] इस प्रकार ग्रह जिस स्थान में बैठा हो, उससे १।२।६।११ एवं १२ वें स्थानों को छोड़कर शेष स्थानों पर उसकी साधारणतया दृष्टि रहती है। किन्तु सप्तम स्थान पर प्रत्येक ग्रह की पूर्ण दृष्टि होती है। सूर्य आदि ग्रहों में से मंगल, गुरु एवं शनि—ये तीन इस प्रकार के हैं, जो सप्तम स्थान के अलावा कुछ अन्य स्थानों को भी पूर्ण दृष्टि से देखते हैं, यथा—मंगल ७वें स्थान के साथ-साथ चौथे एवं ८ वें स्थान को, गुरु ७ वें स्थान के अलावा ५ वें एवं ९ वें स्थान को तथा शनि ७ वें स्थान के अलावा ३ सरे एवं १० वें स्थान को भी पूर्ण दृष्टि से देखता है। ग्रहों की साधारण दृष्टि का साधारण प्रभाव तथा पूर्ण दृष्टि का पूर्ण प्रभाव होता है।

---

१. देखिए—लघुपाराशरी: पूर्वोद्धृत, अ० २ श्लो० १।
२. तत्रैव अ० २ श्लो० २ एवं अ० ३ श्लो० ६।
३. (क) वृहज्जातक अ० २ श्लो १३।
(ख) सारावली अ० ४ श्लो० ३२।

ग्रहों के बल

ग्रहों के बल छः प्रकार के माने गये हैं[1]—१. स्थान बल, २. दिग् बल, ३. कालबल ४. चेष्टाबल, ५. दृग्बल एवं ३. नैसर्गिक बल।

(१) स्थान बल—

जो ग्रह अपनी राशि, मित्रग्रह की राशि, उच्च राशि या मूलत्रिकोण राशि में हो वह स्थानबली कहलाता है। अपने नवांश, द्रेष्काण या पारिजातादि वैशेषिकवर्ग में स्थित ग्रह स्थानबली कहा जाता है। अष्टक वर्ग में जिस राशि पर ४ से अधिक रेखाएं हों, वहाँ स्थित ग्रह भी स्थानबली माना जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कतिपय राशि या स्थानों पर ग्रह के स्थित हो जाने पर उसे बल मिलता है। इस प्रकार के बल को स्थान-बल कहते हैं।

(२) दिग्बल—

दिशा में स्थितिवश प्राप्त होनेवाले बल को दिग्बल कहते हैं। कुण्डली में लग्न पूर्व को, दशम दक्षिण को, सप्तम पश्चिम को तथा चतुर्थ भाव उत्तर को सूचित करता है। तथा बुध, गुरु पूर्व में, सूर्य मंगल दक्षिण में, शनि पश्चिम में और चन्द्रमा एवं शुक्र उत्तर में बली होते हैं। इस प्रकार लग्न में बुध एवं गुरु दशम में सूर्य एवं मंगल, सप्तम में शनि, तथा चतुर्थ में चन्द्रमा एवं शुक्र दिग्बल के कारण बलवान् हो जाते हैं।

(३) कालबल—

समयानुसार प्राप्त होने वाला बल कालबल कहलाता है। यथा—चन्द्रमा, मंगल एवं शनि रात्रि में, सूर्य, गुरु एवं शुक्र दिन में तथा बधु दिन रात दोनों में बली होता है। सभी ग्रह अपनी-अपनी काल होरा में, अपने वर्ष में (जिसमें वे वर्षेश हों), अपने मास में तथा अपने दिन में बली होते हैं। तथा शुभ ग्रह शुक्ल पक्ष एवं पाप ग्रह कृष्ण पक्ष में बली होतेहैं।

(४) चेष्टाबल—

सूर्य एवं चन्द्रमा उत्तरायण (मकर से मिथुन तक ६ राशियों) में बलवान् होते हैं। मंगल, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि—ये यदि ग्रह युद्ध में विजयी हों, वक्रगति हों या चन्द्रमा के साथ हों तो चेष्टाबली कहलाते हैं।

(५) दृग्बल—

दृष्टि के प्रभाववश प्राप्त होने वाले बल को दृग्बल कहते हैं। जिन ग्रहों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो वे दृग्बली होते हैं। और जिन पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो वे निर्बल कहलाते हैं।

---

१. देखिए—जातक पारिजातः पूर्वोद्धृत, अ० २ श्लो० ३८।

(६) नैसर्गिक—

ग्रहों के स्वाभाविक बल को नैसर्गिक बल कहते हैं। इस दृष्टि से सूर्य सर्वाधिक बली तथा शनि सबसे निर्बल होता है। शनि से मंगल, मंगल से बुध, बुध से गुरु, गुरु से शुक्र, शुक्र, से चन्द्रमा एवं चन्द्रमा से सूर्य निसर्गतः बलवान् होता है।

ग्रहों का शुभाशुभत्व

सामान्यतया ग्रह दो प्रकार के होते हैं—१—शुभ तथा २—पाप। जो ग्रह मनोनुकूल फल देते हैं, वे शुभ तथा जो मन के प्रतिकूल फल देते हैं, वे पाप ग्रह कहलाते हैं।

शुभ ग्रह—

गुरु एवं शुक्र—ये दोनों पूर्ण शुभ ग्रह हैं। पूर्ण चन्द्रमा तथा शुभ ग्रह से युक्त बुध भी शुभ माना जाता है। इस प्रकार अधिकतम ४ ग्रह शुभ माने गये हैं—१—गुरु, २—शुक्र, ३—पूर्ण चन्द्रमा एवं ४—शुभ ग्रह से युक्त बुध।

चन्द्रमा का शुभाशुभत्व—शुक्ल पक्ष की एकादशी से कृष्ण पक्ष की पंचमी तक चन्द्रमा पूर्ण रहता है। इस पूर्ण चन्द्रमा को शुभ ग्रह माना जाता है। कृष्ण पक्ष की एकादशी से शुक्ल पक्ष की पंचमी तक चन्द्रमा क्षीण होता है। क्षीण चन्द्रमा को पाप ग्रह माना गया है। शेष दिनों में चन्द्रमा मध्यम होता है। यह मध्यम चन्द्रमा शुभ एवं अशुभ दोनों प्रकार का फल देता है।

पाप ग्रह—सूर्य, मंगल, शनि, राहु एवं केतु—ये पाँचों ग्रह पाप ग्रह कहलाते हैं। इनके अलावा क्षीण चन्द्रमा तथा पाप ग्रह से युक्त बुध भी पाप ग्रह कहा जाता है। इस प्रकार पाप ग्रहों की संख्या सात हो जाती है—सूर्य, २—मंगल, ३—शनि, ४—राहु, ५—केतु, ६—क्षीण चन्द्रमा एवं ७—पाप युक्त बुध। इन पाप ग्रहों में से सूर्य, मंगल एवं राहु को क्रूर ग्रह भी कहते हैं।

ग्रहों की अवस्था

महर्षि पाराशर ने ग्रहों की फल देने की क्षमता का मूल्यांकन करने के लिए उनकी ५ अवस्थायें मानी हैं—१—बाल्यावस्था, २—कुमारावस्था, ३—युवावस्था, ४—वृद्धावस्था, ५—मृतावस्था। विषम राशियों में १ से ६ अंश तक स्थित ग्रह की बाल्यावस्था, ७ से १२ अंश तक स्थित ग्रह की कुमारावस्था, १३ से १८ अंश तक स्थित ग्रह की युवावस्था, १९ से २४ अंश तक स्थित ग्रह की वृद्धावस्था तथा २५ से ३० अंश तक स्थित ग्रह की मृतावस्था होती है। समराशियों में इसके विपरीत १ से ६ तक स्थित ग्रह की मृतावस्था, ७ से १२ अंश तक स्थित ग्रह की वृद्धावस्था, १३ से १८ अंश तक स्थित ग्रह की युवावस्था, १९ से २४ अंश तक स्थिति ग्रह की कुमारावस्था तथा २५ से ३० अंश तक स्थित ग्रह की बाल्यावस्था होती है।[1]

१. बालो रसांशेरसभे प्रदिष्टस्ततः कुमारो हि युवाऽथ वृद्धः।
मृतः क्रमादुत्क्रमतः समर्क्षे बालाद्यवस्थाः कथिता ग्रहाणाम्॥
— बृहत्पाराशर होराशास्त्रम्: मे० खेलाड़ी लाल संकटा प्रसाद वाराणसी, सन् १९६८ ग्रहावस्थाध्याय श्लो० १८

बाल्यावस्था का ग्रह कुछ फल देता है। कुमारा अवस्था का ग्रह आधा फल तथा युवावस्था का ग्रह पूर्ण फल देता है। वृद्धावस्था का ग्रह दुष्ट फलदायक एवं मृतावस्था का अनिष्टदायक माना गया है[१]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बाल, कुमार एवं युवा अवस्थाओं में ग्रह के मौलिक प्रभाव (फल) में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। वृद्धावस्था में उसका प्रभाव घटता है और मृतावस्था में वह प्रभावहीन हो जाता है।

रोग विचार के प्रसंग में नक्षत्रों का परिचय

नक्षत्रों की कुल संख्या २७ है, यथा—१–अश्विनी, २–भरणी, ३–कृत्तिका, ४–रोहिणी, ५–मृगशीर्ष, ६–आर्द्रा, ७–पुनर्वसु, ८–पुष्य, ९–आश्लेषा, १० मघा, ११–पूर्वा फाल्गुनी, १२–उत्तराफाल्गुनी, १३–हस्त, १४–चित्रा, १५–स्वाति, १६–विशाखा, १७–अनुराधा, १८–ज्येष्ठा, १९–मूल, २०–पूर्वाषाढ़, २१–उत्तराषाढ़, २२–श्रवण, २३–धनिष्ठा, २४–शतभिषा, २५–पूर्वाभाद्रपद, २६–उत्तराभाद्रपद एवं रेवती।

फलित शास्त्र में अभिजित् नामक एक अठ्ठाईसवां नक्षत्र भी माना गया है। यह उत्तराषाढ़ के बाद तथा श्रवण से पहिले आता है। यह नक्षत्र कुल १९ घटी का होता है। जब कि अन्य नक्षत्र सामान्यतया ६० घटी के होते हैं। उत्ताराषाढ़ की अन्तिम १५ घटी तथा श्रवण की प्रारम्भिक ४ घटी को मिलाकर कुल १९ घटी के अभिजित् की कल्पना की गयी है। इस नक्षत्र का मुहूर्त आदि में विशेष उपयोग होता है। ज्योतिष शास्त्र के सामान्य व्यवहार में अभिजित् नक्षत्र का स्थान नहीं है। तथा रोग विचार में भी यह कोई अहं भूमिका नहीं निभाता अतः हम यहाँ २७ नक्षत्रों के अधार पर ही रोगों का विचार करेंगे।

नक्षत्रों का सामान्य परिचय ज्योतिष शास्त्र के सामान्य ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक किया गया है। यहाँ हम नक्षत्रों का रोगों से क्या सम्बन्ध रहता है, इसी तक सीमित रहना चाहेंगे। किन-किन नक्षत्रों का किन-किन रोगों से सम्बन्ध रहता है तथा किस नक्षत्र में रोग आरम्भ होने पर वह कितने समय तक रहता है? इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

अश्विनी—यह नक्षत्र अर्द्धाङ्गवात, अनिद्रा एवं मतिभ्रम आदि रोगों से सम्बन्धित है। इस नक्षत्र में रोग प्रारम्भ होने पर वह १,९ या २५ दिन तक रहता है।

भरणी—यह नक्षत्र तीव्र ज्वर, वेदना (दर्द) एवं शिथिलता या मूर्च्छा से सम्बन्धित है। इस नक्षत्र में रोग का प्रारम्भ होने पर वह ११, २१ या ३० दिन तक चलता है। कभी-कभी इस नक्षत्र में प्रारम्भ हुआ रोग मृत्युदायक भी हो जाता है।

---

१. फलं तु किञ्चिद्वितनोति बालश्चार्द्धं कुमारो यतते च पुंसाम्।
युवा समग्रं खचरोऽथ वृद्धः फलं च दुष्टम् मरणं मृताख्यः ।। तत्रैव। श्लो० १९

कृत्तिका—यह नक्षत्र दाह, उदरशूल, तीव्र वेदना, अनिद्रा एवं नेत्र रोग से सम्बन्धित है। इस नक्षत्र में रोग का प्रारम्भ होने पर वह ९/१० या २१ दिन तक रहता है।

रोहिणी—यह नक्षत्र सिरदर्द, उन्माद, प्रलाप एवं कुक्षिशूल से सम्बन्धित है। इस नक्षत्र में प्रारम्भ हुआ रोग ३।७।९ या १० दिन तक चलता है।

मृगशीर्ष—यह नक्षत्र त्रिदोष, चर्मरोग एवं असहिष्णुता (एलार्जी) से सम्बन्धित है। इस नक्षत्र में रोग होने पर वह ३, ५ या ९ दिन तक रहता है।

आर्द्रा—यह नक्षत्र वायुविकार, स्नायुविकार एवं कफ रोगों से सम्बन्धित है। इसमें रोग होने पर वह १० दिन या १ मास तक रहता है। कभी-कभी इस रोग में उत्पन्न रोग से मृत्यु हो जाती है।

पुनर्वसु—यह नक्षत्र कमर में दर्द, सिरदर्द या गुर्दे के रोगों से सम्बन्धित है। इसमें रोग होने पर ७ या ९ दिन चलता है।

पुष्य—यह नक्षत्र ज्वर, दर्द एवं आकस्मिक पीड़ा-दायक रोगों से सम्बन्धित है। इसमें प्रारम्भ हुआ रोग ७ दिन तक रहता है।

आश्लेषा—यह नक्षत्र सर्वाङ्गपीड़ा, मृत्यु तुल्य कष्ट, विषरोग एवं सर्पदंश आदि से सम्बन्धित है। इस नक्षत्र में प्रारम्भ हुआ रोग ९, २० या ३० दिन रहता है। तथा अधिकांशतया वह मृत्युदायक होता है।

मघा—यह नक्षत्र वायुविकार, उदर विकार एवं मुखरोगों से सम्बन्धित है। इस नक्षत्र में प्रारम्भ हुआ रोग २०, ३० या ४५ दिन तक चलता है। और उसकी पुनरावृत्ति भी हो जाती है।

पूर्वाफाल्गुनी—यह नक्षत्र कर्णरोग, शिरोरोग, ज्वर तथा वेदना से सम्बन्धित है। इसमें प्रारम्भ हुआ रोग ८, १५ या ३० दिन तक रहता है। कभी-कभी इस नक्षत्र में रोग १ वर्ष तक भी रहता है।

उत्तराफाल्गुनी—यह नक्षत्र पित्तज्वर, अस्थिभंग एवं सर्वाङ्गपीड़ा से सम्बन्धित है। इस नक्षत्र में रोग होने पर वह ७, १५ या २७ दिन तक चलता है।

हस्त—यह नक्षत्र उदर शूल, मंदाग्नि एवं अन्य उदर विकारों से सम्बन्धित है। इस नक्षत्र में रोग होने पर वह ७, ८, ९ या १५ दिन तक रहता है। कभी-कभी रोग की पुनरावृत्ति भी हो जाती है।

चित्रा—यह नक्षत्र अत्यन्त कष्टदायक या दुर्घटना जन्य पीड़ाओं से सम्बन्धित है। इस नक्षत्र में रोग होने पर वह ८, ११ या १५ दिन तक रहता है। तथा कभी-कभी उस रोग से मृत्यु भी हो जाती है।

स्वाति—यह नक्षत्र उन जटिल रोगों से सम्बन्धित है, जिनका शीघ्र निदान या उपचार नहीं हो पाता है। इसमें प्रारम्भ हुआ रोग १, २, ५ या १० मास तक रहता है।

विशाखा—यह नक्षत्र वातव्याधि, मेदो रोग, कुक्षिशूल एवं सर्वाङ्गपीड़ा से सम्बन्धित है। इस नक्षत्र में रोग होने पर वह ८, १०, २० या ३० दिन तक रहता है।

अनुराधा—यह नक्षत्र तीव्रज्वर, सिरदर्द एवं संक्रामक रोगों से सम्बन्धित है। इसमें रोग होने पर वह ६, १० या २८ दिन तक रहता है।

ज्येष्ठा—यह नक्षत्र कम्प, विकलता एवं वक्ष रोगों से सम्बन्धित है। इसमें रोग होने पर वह १५, २१ या ३० दिन तक चलता है। और कभी-कभी वह रोग मृत्युदायक भी हो जाता है।

मूल—यह नक्षत्र उदर रोग, मुख रोग एवं नेत्र रोगों से सम्बन्धित है। इसमें रोग होने पर वह ९, १५ या २० दिन तक चलता है।

पूर्वाषाढ़—यह नक्षत्र प्रमेह, धातुक्षय, दुर्बलता एवं अन्य गुप्त रोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न रोग १५-२० दिन या २, ३ अथवा ६ मास तक रहते हैं। इस नक्षत्र में उत्पन्न रोगों की पुनरावृत्ति भी हो जाती है।

उत्तराषाढ़—यह नक्षत्र उदरशूल, कटिशूल एवं अन्य दर्द देने वाले रोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न रोग २० या ४५ दिन तक रहता है।

श्रवण—यह नक्षत्र अतिसार, विपूचिका, मूत्रकृच्छ्र एवं संग्रहणी से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न रोग ३, ६, १० या २५ दिन तक रहता है।

धनिष्ठा—यह नक्षत्र आमाशय, बस्ती एवं गुर्दे के रोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न रोग १३ दिन, सप्ताह या पक्ष तक चलते हैं।

शतभिषा—यह नक्षत्र वात ज्वर, सन्निपात एवं विपम ज्वर से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न रोग ३, १०, २१ या ४० दिन तक रहता है।

पूर्वा भाद्रपद—यह नक्षत्र वमन, घबड़ाहट, शूल एवं मानसिक रोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न रोग २ या १० दिन अथवा २ या ३ मास तक रहता है।

उत्तराभाद्रपद—यह नक्षत्र दन्तरोग, वातरोग या ज्वर से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न रोग ७, १०, या ४५ दिन रहता है।

रेवती—यह नक्षत्र मानसिक रोग, अभिचार अन्य रोग एवं वातरोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न रोग १०, २८ या ४८ दिन तक चलता है।

रोग विचार के प्रसंग में राशियों का परिचय

राशि चक्र या क्रान्तिवृत्त का १२ वाँ भाग राशि कहलाता है। अतः राशियों की संख्या १२ होती है। इनके नाम हैं :— १–मेष, २–वृष, ३–मिथुन, ४–कर्क, ५–सिंह, ६–कन्या, ७–तुला, ८–वृश्चिक, ९–धनु, १०–मकर, ११–कुम्भ एवं १२–मीन।

राशियों का स्वरूप, शुभाशुभत्व, बल एवं अन्य संज्ञाएँ ज्योतिषशास्त्र के सामान्य ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक बतलायी गयी हैं। यहाँ हम उनका विचार न करके केवल रोग विचार के लिए उपयोगी बातों पर ही प्रकाश डालना चाहेंगे।

अंगों की प्रतिनिधि राशियाँ—

ज्योतिषशास्त्र के जातक ग्रन्थों[1] में काल रूपी पुरुष की कल्पना कर उसके शरीर के विविध अंगों में मेष आदि द्वादश राशियों की स्थापना की गई है। जिसके आधार पर उसके अंग रोगग्रस्त या स्वस्थ हैं—यह जाना जा सकता है।[2] ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों की इस मान्यता के अनुसार मेष राशि शिर का, वृष मुख का, मिथुन भुजाओं का, कर्क हृदय का, सिंह उदर का, कन्या कमर का, तुला बस्ति का, वृश्चिक गुह्यांग का, धनु उरु का, मकर जानु का, कुम्भ जंघाओं का, तथा मीन राशि पैरों का प्रतिनिधित्व करती है।

इस अंग विभाजन का यदि विस्तारपूर्वक आलोकन किया जाय, तो यह कहा जा सकता है कि मेष आदि १२ राशियाँ मनुष्य के शरीर के निम्नलिखित अंगों का प्रतिनिधित्व करती हैं :—

राशियाँ	सम्बन्धित अंग
मेष	मस्तिष्क, माथा (ललाट), शरीर एवं शिर के बाल।
वृष	आँख, कान, नाक, गाल, होठ (ओष्ठ), दाँत, मुख, जिह्वा एवं गला।
मिथुन	कण्ठ, ग्रीवा, कन्धा, भुजा, कोहनी, मणिबन्ध, हथेली, वक्ष एवं स्तन।
कर्क	फेफड़े, श्वासनली एवं हृदय।
सिंह	पेट, आँतें, जिगर, तिल्ली, गुर्दा एवं नाभि।
कन्या	कमर एवं चूतड़ (नितम्ब)
तुला	बस्ति, मूत्राशय एवं गर्भाशय का ऊपरी भाग।
वृश्चिक	गर्भाशय, जननेन्द्रिय एवं गुदा।

---

१. देखिए— (क) वृहज्जातक, पूर्वोद्धृत, अ० १ श्लो० ८।
(ख) सारावली अ० श्लो।
(ग) जातक पारिजात अ० १ श्लो० ८।

२. कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां कल्पयेत्प्रसवकाले।
सदसद् ग्रहसंयोगाद् पुष्टाः सोपद्रव्यास्ते च।
लघु जातकः आचार्य वराहमिहिर, गंगा पुस्तकालय, वाराणसी, सन् १९५८, अ० १ श्लो० ५।

धनु	ऊरु ।
मकर	जानु एवं घुटना ।
कुम्भ	जंघा, पिंडली ।
मीन	टखना, पैर, पादतल एवं पैर की उंगलियाँ ।

मेषादि राशियाँ एवं उनके रोग—

मेष आदि द्वादश राशियाँ स्वभावतः जिन-जिन रोगों को उत्पन्न करती हैं वे रोग इस प्रकार हैं :—

राशियाँ	रोग
मेष	नेत्ररोग, मुखरोग, मेदरोग, सिरदर्द, मानसिक तनाव, उन्माद एवं अनिद्रा ।
वृष	गले एवं श्वासनली के रोग, घटसर्प तथा आँख, नाक एवं गले के रोग ।
मिथुन	रक्तविकार, श्वास, फुफ्फुसरोग एवं मज्जारोग ।
कर्क	हृदयरोग एवं रक्तविकार ।
सिंह	उदरविकार, मेदवृद्धि एवं वायुविकार ।
कन्या	जिगर, तिल्ली, अमाशय के विकार, अपचन, मन्दाग्नि एवं कमर में दर्द ।
तुला	मूत्राशय के रोग, मधुमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र एवं बहुमूत्र ।
वृश्चिक	गुप्तरोग, अर्श, भगंदर, उपदंश, शूक एवं संसर्ग-जन्य रोग ।
धनु	यकृत् दोष, ऋतु विकार, अस्थिभंग, मज्जारोग एवं रक्त दोष ।
मकर	वातरोग, शीतरोग, चर्मरोग एवं रक्तचाप ।
कुम्भ	जलोदर, मानसिक रोग, ऐंठन एवं गर्मी ।
मीन	असहिष्णुता (एलर्जी), चर्मरोग, रक्तविकार, आमवात, आंव, ग्रन्थि, गठिया ।

रोग विचार के प्रसंग से भावों का परिचय

कुण्डली में लग्न से प्रारम्भ कर १२ भाव माने गये हैं, इनके नाम हैं—१. तनु, २. धन, ३. सहज, ४. सुख, ५. सुत, ६. रोग. ७. जाया, ८. मृत्यु, ९. भाग्य, १० कर्म, ११. लाभ एवं १२. व्यय । इन द्वादश भावों द्वारा मानवजीवन के सम्बन्धित प्रायः सभी विषयों के बारे में जाना जा सकता है । भावों के स्वरूप, संज्ञा, शुभाशुभत्व एवं अन्य बातों का विस्तार से विवेचन ज्योतिष शास्त्र के प्रायः सभी ग्रन्थों में किया गया है। यहाँ हम रोग विचार के लिए उपयोगी पक्ष का ही विचार करना चाहेंगे ।

रोग विचार की दृष्टि से भावों का महत्व अत्यधिक है । क्योंकि इन भावों में से प्रथम, षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश भावों का रोग विचार से प्रत्यक्षतः सम्बन्ध है तथा

द्वितीय एवं सप्तम भाव का मारक भाव होने के नाते स्वास्थ्य से सम्बन्ध है। इस प्रकार ये छः भाव रोग के विचार से एक अहं भूमिका प्रस्तुत करते हैं।

प्रथम भाव या लग्न मनुष्य के सम्पूर्ण शरीर एवं स्वास्थ्य का प्रतिनिधित्व करता है। इस भाव के द्वारा शारीरिक सुख-दुख, शारीरिक गठन, कद, रंग, स्वभाव एवं स्वास्थ्य का विचार किया जाता है।

षष्ठ भाव की 'रिपु' संज्ञा है। यह जातक के शत्रुओं का प्रतिनिधित्व करता है। चूँकि मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए रोग प्रबलतम शत्रु होते हैं। अतः इस भाव से मुख्य रूप से मनुष्य के जीवन में होने वाले रोगों का विचार किया जाता है।

अष्टम भाव 'आयु' या 'मृत्यु' संज्ञक है। आयु एवं मृत्यु एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। आयु का पूरा होना ही मृत्यु है। अतः आयु समाप्त होते ही मृत्यु हो जाती है या मृत्यु होते ही आयु समाप्त हो जाती है। मृत्यु किसी न किसी रोग दुर्घटना या अन्य विकार से होती है। इस प्रकार इस भाव से मृत्युदायक रोग, मृत्यु के कारण और मनुष्य के जीवन की अवधि का विचार किया जाता है। रोगों के साध्य या असाध्य होने में आयु एक महत्वपूर्ण कारण है। जब तक आयु है, कोई रोग असाध्य नहीं होता। किन्तु आयु की समाप्ति के आस पास होनेवाला साधारण रोग भी असाध्य बन जाता है। इसलिए रोगों के साध्य एवं असाध्य होने का विचार भी इस भाव से होता है।

द्वादश भाव को 'व्यय' कहते हैं। व्यय का अर्थ है—खर्च या हानि होना। चूँकि प्रत्येक रोग शारीरिक शक्ति अथवा जीवन शक्ति की हानि करने वाला होता है। इसलिए इस भाव से भी रोगों का विचार किया जाता है।

कुण्डली में अष्टम तथा अष्टम से अष्टम-अर्थात् तृतीय ये दोनों भाव आयु के भाव माने गये हैं।[1] अर्थात् अष्टम तथा तृतीय भाव से आयु का विचार किया जाता है तथा जिस प्रकार कुण्डली में बारहवाँ भाव 'व्यय' कहा जाता है, उसी प्रकार अष्टम एवं तृतीय भावों से बारहवें भाव-अर्थात् सप्तम एवं द्वितीय भाव आयु के व्यय के सूचक होते हैं। आयु का व्यय मृत्यु ही है। इसलिए सप्तम एवं द्वितीय भाव—ये दोनों भाव मृत्यु के सूचक होते हैं। यही कारण है कि इन भावों से मृत्यु या जीवन में मिलने वाले मृत्यु तुल्य कष्टों का विचार किया जाता है। इन दोनों भावों को मारक भाव कहते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कुण्डली के १२ भावों में से प्रथम, षष्ठ, अष्टम, द्वादश, द्वितीय एवं सप्तम - इन ६ भावों का रोग विचार से सम्बन्ध है। अतः रोगों का विचार करते समय इन भावों का भली भाँति विचार करना चाहिये।

शारीरिक अंगों के प्रतिनिधि भाव—

मनुष्य की कुण्डली भी राशि चक्र की भाँति उसके सम्पूर्ण शरीर की प्रतीक है। जिस प्रकार काल पुरुष के शरीर में मेष आदि द्वादश राशियों को स्थापित कर मेष आदि

१. लघुपाराशरी: पूर्वाद्धृत, अ० ३, श्लो० १।

राशियों के प्रतिनिधित्व में आनेवाले अंगों का विचार किया जाता है, ठीक उसी प्रकार कालपुरुष के शरीर में लग्न आदि १२ भावों को स्थापित कर प्रत्येक भाव से शरीर के विविध अंगों का विचार होता है।[1]

कुण्डली का प्रथम भाव शिर का, द्वितीय मुख का, तृतीय भुजाओं का, चतुर्थ हृदय का, पंचम उदर का, षष्ठ कटि का, सप्तम वस्ति का, अष्टम गुप्तांग का, नवम ऊरु का, दशम जानु का, एकादश जंघाओं का तथा द्वादश भाव पैरों का प्रतिनिधित्व करता है। मनुष्य के शरीर के उक्त भागों में स्थित भावों का यदि ध्यानपूर्वक अवलोकन किया जाय, तो यह कह सकते हैं कि कुण्डली के उक्त १२ भाव मनुष्य के शरीर के निम्नलिखित अंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं :—

भाव	शरीर के अंग
प्रथम भाव	मस्तिष्क, ललाट एवं सिर।
द्वितीय भाव	आँख, कान, नाक, गाल, होठ, दाँत, मुख, जिह्वा एवं गला।
तृतीय भाव	कण्ठ, ग्रीवा, कन्धा, भुजा, कोहनी, हथेली, वक्षस्थल एवं स्तन।
चतुर्थ भाव	फेफड़े, श्वासनली एवं हृदय।
पंचम भाव	पेट, आँतें, जिगर, तिल्ली, गुर्दा एवं नाभि।
षष्ठ भाव	कमर, कूल्हा, नितम्ब।
सप्तम भाव	वस्ति, मूत्राशय एवं गर्भाशय का ऊपरी भाग।
अष्टम भाव	गर्भाशय, जननेन्द्रिय, गुदा एवं अण्डकोष।
नवम भाव	ऊरु।
दशम भाव	जानु एवं घुटना।
एकादश भाव	जंघा एवं पिंडली।
द्वादश भाव	टखना, पैर, तलवा (पादतल) एवं पैर की उँगलियाँ।

द्रेष्काण के आधार पर अंगों के प्रतिनिधि भाव—

मनुष्य के शरीर के किस अंग में घाव, चोट या गांठ होगी ? इसका विचार करने के लिए प्राचीन आचार्यों ने द्रेष्काण के आधार पर शरीर के तीन भागों की कल्पना कर लग्न आदि भावों को शरीर के विभिन्न अंगों का प्रतिनिधि माना है[2] यथा --

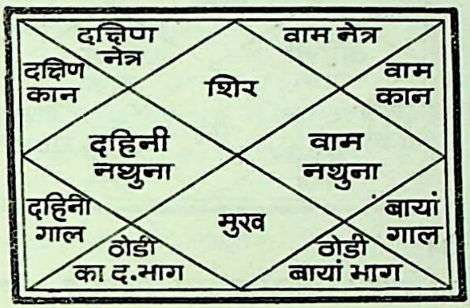
---

१. दैवज्ञाभरण: गवर्नमेंट ओरियन्टल मैनिस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, सन् १९५४, ३ प्रकाश श्लो० ७०।

२. देखिए—(क) बृहज्जातक: पूर्वाद्धृत, अ० ५, श्लो० २४।
(ख) जातक पारिजात: पूर्वाद्धृत, अ० ३, श्लो० ७७।

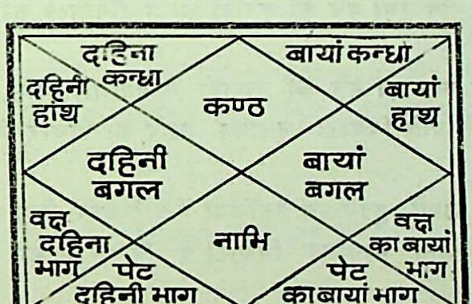
यदि लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो लग्न आदि भाव शिर से लेकर मुख तक के विभिन्न अंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहाँ लग्न शिर का द्वितीय एवं द्वादश भाव क्रमशः दाहिने एवं बायें नेत्र का, तृतीय एवं एकादश भाव क्रमशः दाहिने एवं बायें कान का, चतुर्थ एवं दशम भाव क्रमशः दाहिने एवं बायें नथुने का, पंचम एवं नवम भाव क्रमशः दाहिने एवं बायें गाल का, षष्ठ एवं अष्टम भाव क्रमशः ठोडी के दाहिने एवं बायें भाव का तथा सप्तम भाव मुख का प्रतिनिधित्व करता है।

उदाहरणार्थ कुण्डली



यदि लग्न में द्वितीय द्रेष्काण हो तो लग्नादिभाव कण्ठ से लेकर नाभि तक के विभिन्न अंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यथा—लग्न कण्ठ का, द्वितीय एवं द्वादश भाव क्रमशः दाहिने एवं बायें कन्धे का, तृतीय एवं एकादश भाव क्रमशः दाहिने एवं बायें हाथ का, चतुर्थ एवं दशम भाव क्रमशः दाहिनी एवं बायीं बगल का, पंचम एवं नवम भाव क्रमशः हृदय (वक्ष) के दाहिने एवं बाये भाग का, षष्टम एवं अष्ठम भाव क्रमशः पेट के दाहिने एवं बायें भाग का तथा सप्तम नाभि का प्रतिनिधित्व करता है।

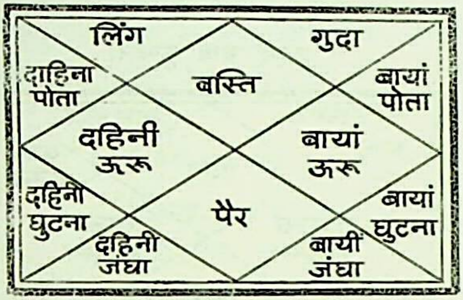
उदाहरणार्थ कुण्डली



यदि लग्न में तृतीय द्रेष्काण हो तो लग्न आदि भाव बस्ति से लेकर पैर तक के विभिन्न अंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं; यथा लग्न बस्ति का, द्वितीय एवं द्वादश भाव

क्रमशः लिंग एवं गुदा का, तृतीय एवं एकादश भाव क्रमशः दाहिने एवं बायें वृषण (पोते) का, चतुर्थ एवं दशम भाव क्रमशः दाहिने एवं बायें ऊरु का, पंचम एवं नवम भाव क्रमशः दाहिने एवं बायें घुटने का, षष्ठ एवं अष्टम भाव क्रमशः दाहिनी एवं बायीं जंघा का तथा सप्तम भाव पैर का प्रतिनिधित्व करता है ।

उदाहरणार्थ कुण्डली



लग्न आदि भावों के रोग

कुण्डली में लग्न आदि १२ भावों के द्वारा मनुष्य के जीवन में घटित होने वाली प्रत्येक घटना का पूर्वानुमान किया जाता है । किस-किस भाव से कौन-कौन से रोग का विचार किया जाता है—यह इस प्रकार है :—

प्रथम भाव—

इस भाव से सिर दर्द, मानसिक रोग, नजला एवं दिमागी कमजोरी का विचार किया जाता है । यह भाव व्यक्ति के स्वास्थ्य का प्रतिनिधि भाव है । व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता का इस भाव से मूल्यांकन होता है ।

द्वितीय भाव—

इस भाव से मृत्यु का विचार होता है । यह भाव नेत्र रोग, कर्ण रोग, मुख रोग नासा रोग, दाँतों के रोग तथा गले का खराबी का प्रतिनिधित्व करता है ।

तृतीय भाव —

इस भाव से कण्ठ एवं गले की खराबी, गण्डमाला, श्वास, खाँसी, दमा, फेफड़े के रोग एवं हाथ में होने वाले विकारों लूलापन आदि का विचार किया जाता है ।

चतुर्थ भाव—

इस भाव से छाती, हृदय एवं पसलियों में होने वाले रोगों का विचार किया जाता है । पागलपन एवं अन्य मानसिक विकारों के विचार में भी इस भाव का उपयोग होता है ।

पंचम भाव—

इस भाव से मन्दाग्नि, अरुचि, पित्तरोग, जिगर, तिल्ली एवं गुर्दे के रोगों का विचार किया जाता है । यह भाव पेट के सभी रोगों का प्रतिनिधित्व करता है ।

षष्ठ भाव—

इस भाव से कमर का दर्द, एपेन्डिक्स, आँतों की बीमारी, हार्निया एवं अश्मरी का विचार किया जाता है ।

सप्तम भाव—

इस भाव से प्रमेह, मधुमेह, प्रदर, उपदंश, पथरी, गर्भाशय के रोग तथा बस्ति में होने वाले रोगों का विचार किया जाता है ।

अष्टम भाव—

इस भाव से गुप्त रोग, वीर्य-विकार, अर्श, भगंदर, उपदंश, संसर्गजन्य रोग, वृषण रोग एवं मूत्रकृच्छ्र का विचार किया जाता है ।

नवम भाव—

इस भाव से स्त्रियों के मासिक धर्म सम्बन्धी रोग, यकृत दोष, रक्त विकार, वायु विकार, कूल्हे का दर्द एवं मज्जा रोगों का विचार होता है ।

दशम भाव—

इस भाव से गठिया, कम्पवात, चर्मरोग, घुटने का दर्द एवं अन्य वायु रोगों का विचार किया जाता है ।

एकादश भाव—

इस भाव से पैर में चोट, पैर की हड्डी टूटना, पिंडलियों में दर्द, शीत विकार एवं रक्त विकार का विचार किया जाता है ।

द्वादश भाव—

इस भाव से असहिष्णुता (अलर्जी), कमजोरी, नेत्र-विकार, पोलियो एवं शरीर में रोगों के प्रतिरोध की क्षमता की कमी का विचार किया जाता है ।

भावों की कुछ महत्वपूर्ण संज्ञाएं—

इस शोध-प्रबन्ध के अग्रिम-अध्यायों में रोगों का विचार करते समय जिन ग्रह-योगों का वर्णन किया गया है, उनमें भावों की केन्द्र, त्रिकोण, त्रिक आदि संज्ञाओं का यथा-स्थान स्वाभाविक रूप से उपयोग हुआ । अतः रोग एवं उनके योगों का विचार करने से पहिले भावों की उन महत्वपूर्ण संज्ञाओं पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है, जिनका आगे उपयोग किया जायेगा ।

केन्द्र—

कुण्डली में लग्न, चतुर्थ, सप्तम एवं दशम भाव को केन्द्र कहा जाता है ।

त्रिकोण—

कुण्डली के पंचम एवं नवम भाव को त्रिकोण कहते हैं ।

पणफर—

कुण्डली के द्वितीय, पंचम, अष्टम एवं एकादश भाव को पणफर कहते हैं ।

आपोक्लिम—

कुण्डली के तृतीय, षष्ठ, नवम एवं द्वादश भाव को आपोक्लिम कहते हैं।

त्रिषडाय—

कुण्डली के तृतीय, षष्ठ एवं एकादश भाव को त्रिषडाय कहते हैं।

त्रिक—

कुण्डली के षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश भाव को त्रिक कहते हैं।

द्विद्वांदश—

कुण्डली के द्वितीय तथा द्वादश—इन दोनों भावों को द्विद्वादंश कहते हैं।

मारक—

कुण्डली के द्वितीय एवं सप्तम भाव को मारक कहते हैं।

उपचय—

कुण्डली में तृतीय, षष्ठ, दशम एवं एकादश भाव को उपचय कहते हैं।

अनुपचय—

कुण्डली के लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, पंचम, सप्तम, अष्टम, नवम एवं द्वादश भाव को अनुपचय कहते हैं।

卐

अध्याय–२

रोग परिज्ञान के प्रमुख सिद्धान्त

भारतीय दर्शन की मान्यतानुसार त्रिगुणात्मक प्रकृति के द्वारा निर्मित समस्त जगत् सत्व, रज एवं तमोमय है। ज्योतिष-शास्त्र में भी सूर्यादि ग्रहों का इन तीनों गुणों में वर्गीकरण किया गया है।[1] जिन ग्रहों में सत्व गुण अधिक रहता है, उनकी अमृतमय किरणें; जिनमें रजोगुण अधिक रहता है, उनकी उभय-गुण मिश्रित किरणें; जिनमें तमोगुण अधिक रहता है, उनकी विषमय-किरणें एवं जिनमें तीनों गुणों की अल्पता रहती है, उनकी गुण-हीन किरणें मानी गयी हैं। ग्रहों के शुभाशुभत्व का विभाजन भी इन किरणों के गुणों से ही हुआ है। आकाश में ग्रहों की गति एवं युति से रश्मियाँ परस्पर मिलती रहती हैं और एक-दूसरे के गुणों को प्रभावित करती रहती हैं। रश्मिविश्लेषण का सिद्धांत बतलाता है। कि प्रत्येक ग्रहों की रश्मियों में स्थान एवं काल विशेष पर उनके गुणों में ह्रास-वृद्धि होती रहती है, जिसे ज्योतिष शास्त्र की परिभाषा में स्थानबल, दिक्‌बल, कालबल एवं चेष्टा बल कहा गया है। अतः ग्रहों के शुभाशुभत्व का विचार करते समय उनके बलाबल का विचार करना भी परम-आवश्यक माना गया है।

आकाश में प्रतिक्षण अमृतरश्मि सौम्य-ग्रह अपनी गति से जहाँ-जहाँ गमन करते हैं, उनकी किरणें भूमण्डल के उन प्रदेशों पर पड़कर वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य एवं बुद्धि आदि पर अपना सौम्य या शुभ प्रभाव डालती हैं। विषमय किरणों वाले क्रूर ग्रह अपनी गति से जहाँ गमन करते हैं, वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य और बुद्धि पर वे अपना दुष्प्रभाव डालते हैं। मिश्रित रश्मि ग्रहों का प्रभाव मिश्रित एवं गुणहीन रश्मि वाले ग्रहों का प्रभाव अकिंचिकर होता है। ग्रहों की गति एवं स्थिति की विलक्षणता के कारण यह प्रभाव समस्त पृथ्वी पर एक-सा नहीं होता क्योंकि एक कालावच्छेदेन दो विभिन्न देशों पर विभिन्न ग्रहों की रश्मियां एक जैसी नहीं पड़तीं। विभिन्न देशों में सूर्य एवं चन्द्र आदि ग्रहों के उदयास्त काल की भिन्नता या देशान्तर-संस्कार को यहाँ साक्ष्य रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। अतः यह निष्कर्ष अनायास ही समझ में आ जाता है,

---

१. चन्द्रार्केज्याः सात्विकाः ज्ञाच्छौ राजसौ शेषास्तामस्ताः।
—जातकतत्वः दैवज्ञ महादेव शर्मा, भुवनेश्वरी यंत्रालय, रतलाम, सन् १९१५, अ० १, सू० ३७।
आदित्यामरमन्त्रिशीतकिरणाः सत्त्वप्रधानग्रहाः।
शुक्रजौ सरजौ गुणौ शनिधरापुत्रौ तमः स्वामिनौ॥
—जातक पारिजातः पूर्वोद्धृत, अ० २, श्लो० २६।

कि स्थान विशेष पर ग्रह रश्मियों के वातावरण की अपनी निजी विशेषता के कारण वहाँ उत्पन्न जातक अन्य स्थान पर उसी क्षण जन्मे व्यक्ति की अपेक्षा भिन्न स्वभाव, भिन्न आकृति एवं विलक्षण शरीरावयव वाला होगा। इनके स्वास्थ्य, बुद्धि एवं अन्य क्षमताओं में निश्चित ही अन्तर मिलता है। उत्पत्ति के समय जिन-जिन रश्मियों वाले ग्रहों की प्रधानता होती है जातक का स्वभाव एवं स्वास्थ्य आदि वैसा ही बन जाता है। अस्तु इस प्रबन्ध में मानव के स्वास्थ्य पर अपना प्रभाव डालकर ग्रह किन-किन रोगों को उत्पन्न करते हैं? —यह विचार करना है; अतः अब हम प्रकृत विषय की ओर चलेंगे।

रोग विचार—

ज्योतिष शास्त्र की मान्यतानुसार रोग का विचार इस प्रकार किया जाता है— षष्ठ (रोग) भाव, षष्ठ भाव में स्थित ग्रह, व्यय तथा अष्टम स्थान में स्थित ग्रह और इन भावों के स्वामी ग्रह, षष्ठेश (रोगेश) ग्रह, षष्ठेश (रोगेश) से युक्त या दृष्ट ग्रह एवं भाव, से रोग का विचार किया जाता है।[1] इसके अतिरिक्त पाप-प्रभाव-युक्त राशियाँ एवं भाव, नीच-राशि-गत अस्तं गत ग्रह तथा निर्बल ग्रह, लग्न और लग्नेश ग्रह, अवरोही ग्रह, क्रूरषष्ठ्यंशगत ग्रह, मारक ग्रह एवं बालारिष्ठ कारक ग्रह भी रोगों के कारक माने गये हैं। इन ग्रहों के शुभाशुभत्व एवं बलाबलत्व के आधार पर रोग तथा रोगी की चर्या, प्रभाव और कालावधि का निर्धारण किया जाता है और बहुलांश में रोग के साध्यत्व-असाध्यत्व का निर्णय किया जाता है।

इस विषय पर विस्तार से विचार करने के पूर्व एक बात और स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि ग्रह फलाफल के नियामक नहीं हैं, किन्तु सूचक है अर्थात् ग्रह किसी को सुख-दुःख नहीं देते हैं, अपितु आने-वाले सुख-दुःख की सूचना देते हैं। वस्तुतः ग्रह अपनी गति, स्थिति एवं युति के द्वारा यह व्यक्त करते हैं कि उनकी रश्मियों या रश्मि-विश्लेषण का प्रभाव किस प्रकार वातावरण तैयार कर रहा है। यद्यपि ग्रह-रश्मियों का हम पर सतत् एवं सुनिश्चित प्रभाव पड़ता है, पर यह स्मरण रखने योग्य बात है कि हम इस प्रभाव के हेतु भूत भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों में विपर्य्यय कर इसे अन्यथा सिद्ध कर सकते हैं। ग्रह चिकित्सा या दूषित फल को दूर करने के सभी उपाय इस सिद्धान्त पर आधारित हैं।

इस सिद्धान्त को और अधिक स्पष्ट करने के लिए ग्रहों के अनिष्ट प्रभाव को दूर करने के लिए, जो रत्न धारण की परिपाटी ज्योतिष-शास्त्र में प्रचलित है, उसे उदाहरण

---

१. (क) रोगस्य चिन्तामपि रोगभावस्थितैर्ग्रहैर्वा व्ययमृत्युसंस्थैः।
रोगेश्वरेणापि तदन्वितैर्वा द्वित्र्यादिसम्वादवशाद्वदन्तु॥
—फलदीपिका: पूर्वाद्धृत, अ० १४, श्लो० १।

(ख) संचिन्तयेन्मङ्गलमान्दा भावतो गदान्नभोगैरुत रोगसद्मगैः।
यद्वा प्रवासैर्व्ययगुह्यगैरुतारीनेन तद्युक्तनभश्चरैः किमु॥
—गदावली: पूर्वोद्धृत, अ० १ श्लो० ५।

के तौर पर प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रायः सौरमण्डलीय वातावरण का प्रभाव पाषाणों के रंग-रूप, आकार-प्रकार तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि तत्वों में से किसी तत्व की प्रधानता पर पड़ता है। सम-गुणवाली रश्मियों के ग्रहों के प्रभाव में उत्पन्न व्यक्ति को वैसी ही रश्मियों के वातावरण में उत्पन्न रत्न धारण कराया जाय, तो वह व्यक्ति नैसर्गिक क्षमताओं में वृद्धि कर उचित परिणाम देगा। यदि व्यक्ति को ग्रहों के विपरीत-प्रभावोत्पन्न धारण करा दिया जाय तो वह अपनी प्रतिक्रियाओं द्वारा विषम-स्थिति उत्पन्न करेगा। अतः स्वभावानुसार रश्मि-प्रभाव परीक्षण के पश्चात् तात्विक-साम्य हो जाने पर रत्न धारणकरना इस शास्त्र का अभिप्रेत है। एक अन्य प्रकार यह है कि ग्रहों के जिन तत्वों के प्रभाव से जो रत्न विशेष प्रभावित हैं; उनका प्रयोग उस ग्रह के तत्व के अभाव में उत्पन्न मनुष्य पर किया जाय तो वह क्षतिपूर्ति के सिद्धान्तानुसार उस व्यक्ति को उचित शक्ति देने वाला होगा उदाहरणार्थ कृष्णपक्ष में उत्पन्न जिन व्यक्तियों को चन्द्रमा का अरिष्ट होता है, अर्थात् जिन्हें चन्द्रबल या चन्द्रमा की अमृत-रश्मियों की शक्ति उपलब्ध नहीं होती, उनके शरीर में कैल्शियम.चूने की अल्पता रहती है। ऐसी अवस्था में चन्द्र-प्रभाव-जन्य उक्त कमी को पूरा करने के लिए मौक्तिक-मणि का प्रयोग लाभकारी होता है। यही कारण है कि ज्योतिष शास्त्र चन्द्रमा के कष्ट से पीड़ित व्यक्ति को मोती के प्रयोग का निर्देश देता है। यह प्रयोग रत्न धारण या रत्नजन्य-औषधि के रूप में किया जा सकता है; मुक्ता भस्म, मुक्ता पिष्टी, मुक्ता पर्पटी एवं कोरामीन ये सब या इनमें से कोई एक औषधि का रोग के निदान के बाद प्रयोग प्रभावकारी गुण दिखलाता है। इसी प्रकार चन्द्रमा के प्रभाव में आने वाले अन्य खनिज, लवण रस या काष्ठादि का प्रयोग भी लाभकारी होता है। अन्य ग्रहों के बारे में भी यही सिद्धान्त लागू होगा।

ग्रहों को रोगकारक बनाने वाले हेतु—

ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों को रोगकारक बनाने वाले निम्नलिखित हेतु बतलाये गये हैं।

१—रोग भाव का प्रतिनिधित्व।
२—अष्टम एवं व्यय भाव का प्रतिनिधित्व।
३—रोग भाव में स्थिति।
४—लग्न में स्थिति या लग्नेश होना।
५—नीचराशि, शत्रुराशि में स्थिति या निर्बलता।
६—अवरोहीपन।
७—क्रूरषष्ठ्यंश में स्थिति।
८—पाप ग्रहों से प्रभावित होना।
९—अरिष्टकारकत्व या मारकत्व।

१. रोग भाव का प्रतिनिधित्व—

षष्ठ स्थान तो रोग का स्थान ही है, अतः षष्ठेश रोगप्रद होता है। यह छठें स्थान में स्थित होकर स्वयं की प्रकृति एवं कारकत्व के अनुसार रोग देता है। जैसे षष्ठ स्थान में स्थित चन्द्रमा कफ विकार, शीतज्वर एवं नेत्र विकार करता है। किन्तु यदि षष्ठेश का किसी अन्य भाव से परिवर्तन योग हो तो उस भाव से सम्बद्ध व्यक्ति या अंग को रोग देगा। जैसे चतुर्थेश से (व्यत्यय) कर माता को रोग दे सकता है और अष्टमेश से व्यत्यय कर नेत्र पीड़ा या गुप्तांग में रोग उत्पन्न कर सकता है। छठें या आठवें स्थान में स्थित षष्ठेश विभिन्न ग्रहों से युक्त होकर विभिन्न स्थानों में व्रण या रोग उत्पन्न करता है। यथा—सूर्य से युक्त हो, तो शिर पर, चन्द्र युक्त हो तो मुख में, मंगल से युक्त होकर कण्ठ में, बुध से युक्त हो नाभि प्रदेश में, गुरु से युक्त होकर नासिका में, शुक्र से युक्त होकर नेत्र में, शनि से युक्त होकर पैर में तथा राहु या केतु से युक्त होकर पेट में व्रण या रोग उत्पन्न करता है।[1] यह अपनी दृष्टि द्वारा भी इसी प्रकार रोगोत्पत्ति में सहायक होता है।

२. अष्टम एवं व्यय भाव का प्रतिनिधित्व—

अष्टम एवं व्यय स्थान रोग कारक स्थान है, अतः इनके स्वामी ग्रह भी रोग-कारक होते हैं। यहाँ इतना और स्मरण रखना चाहिए कि कदाचित् इन स्थानों के स्वामी मंगल या शनि हों तो वे और अधिक शक्ति प्राप्त कर जिस भाव-राशि से अपना युति-दृष्टि द्वारा प्रभाव का विनियोग करेंगे, उस राशि भाव सम्बन्धी अंग में रोगोत्पन्न कर देंगे। केवल अष्टमेश या द्वादशेष का प्रभाव रोग के आधारभूत कारणों को ही उत्पन्न करने का कुछ प्रयास कर सकता है, जब तक कि उनमें किसी प्रकार का प्रभाव निहित न हो चुका हो। महर्षि पारा-शर के अनुसार सूर्य, चन्द्र एवं लग्नेश अष्टम भाव के स्वामी होने पर भी अशुभ-फल दाता नहीं होते तथा व्ययेश त्रिकोण भाव का स्वामी होने पर शुभ फलदायक हो जाता है। यदि सूर्य और चन्द्रमा व्ययेश होकर त्रिकोणेश से सम्बन्ध करें, तो वे अशुभ फल नहीं देते।[2] अतः अष्टमेश एवं व्ययेश में रोग देने की क्षमता का निश्चय करते समय यह सब ध्यान में रखना चाहिए।

---

१. पाराशरे—तेषामपि व्रणं वाच्यमादित्येन शिरोव्रणम्।
इन्दुना च मुखे, कण्ठे भौमेन, ज्ञेन नाभिपु॥
गुरुणा नासिकायां च भृगुणा नयने पदे।
शनिना, राहुणा कुक्षां केतुना च तथा भवेत्॥
—बृहत्पाराशरहोराशास्त्र १७।४-५

२. लघुपाराशरी—(क) नरन्ध्रेशत्वदोषस्तु सूर्याचन्द्रमसोर्भवेत्।
(ख) स एव शुभ सन्धाता लग्नाधीशोपि चेत्स्वयम्।
(ग) लग्नाद्व्ययद्वितीयेशोपरेषां साहचर्यतः।
स्थानान्तरानुगुण्येन भवतः फलदायकौ॥

३. रोग (षष्ठ) भाव में स्थिति—

छठें (रोग) भाव में स्थित ग्रह भी रोग कारक होता है, यह पहिले कहा जा चुका है। यह ग्रह जिस राशि एवं भाव का स्वामी हो या कारक हो, वह राशि और भाव काल-पुरुष के जिस अग में पड़ती हो, अथवा किस अंग आदि का कारक हो, उस अंग में रोगोत्पत्ति करता है। किन्तु यहाँ यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि ऐसा ग्रह जब पाप-प्रभाव में हो तभी रोग उत्पन्न कर सकता है, शुभ प्रभाव होने पर नहीं हेतु ग्रह। यह है कि किसी भाव का स्वामी ६, ८ एवं १२ वें भाव में स्थित होकर उस भाव के शुभ-फल को नष्ट कर देता है।[1] तात्पर्य यह है कि छठाँ भाव शारीरिक प्रगति, उन्नति एवं पुष्टि सबको रोकता है। अतः यह दौर्बल्य-वश रोग कारक हो जाता है। सर्वार्थचिन्तामणि के इस रोग की ओर देखिए जब पंचम भाव का स्वामी छठें भाव में होकर पुत्रकारक गुरु एवं सूर्य से युक्त हो तो उसकी पत्नी को गर्भास्राव-रोग होता है अथवा मृत सन्तान होती है।[2] आशय स्पष्ट है कि सन्तति भाव का स्वामी एवं कारक ये दोनों जब छठें भाव में रहेंगे तब गर्भ की पुष्टि या वृद्धि सम्भव नहीं है, अपितु उपर्युक्त सिद्धांतानुसार पंचम भाव का शुभ फल नष्ट होने से गर्भस्राव या गर्भस्थ शिशु की मृत्यु होना स्वाभाविक है।

४. लग्न में स्थिति या लग्नेश होना—

ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने लग्न को सामूहिक रूप से शरीर माना है। अतः लग्न एवं लग्नेश पर पाप प्रभाव शरीर एवं स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं होता। यह लग्न निज या स्वयं (self) का बोधक है। अतः जब कोई ग्रह लग्न में स्थित हो जाता है तो वह अपनी अस्थि आदि धातुओं का विशेष या पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व करता है।

लग्नस्थ ग्रह	धातुएँ (जिनका विशेष प्रतिनिधित्व करता है)
सूर्य	अस्थि
चन्द्र	रक्त
मंगल	मांस
बुध	त्वचा
गुरु	वसा (चर्बी)
शुक्र	वीर्य
शनि	स्नायु

---

१. जातक पारिजाते—यद्भावनार्था रिपुरिष्करन्धे दुःस्थानयो यद्भवनस्थितोवा।
तद्भावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञाः शुभेक्षितश्चते फलमन्यथा स्यात्॥
अ० ११, श्लो० ४॥.

२. **सर्वार्थ चिन्तामणि—**

सुतेशे रिपुभावस्थे कारके रवि संयुते।
गर्भास्रावयुता भार्या ज्ञायते च मृतप्रजा॥ ५·१७

उदाहरण के लिए जब शुक्र लग्नेतर स्थान में पापयुक्त अथवा पाप-दृष्ट हो तो वीर्य रोग होना सम्भव तो है, परन्तु कुछ अनिश्चय रहता है। वही शुक्र जब लग्न में (जन्म लग्न या चन्द्र लग्न में) स्थित हो तो 'सामूहिक शरीर' से उसका सम्पर्क होने के कारण वह वीर्य का पक्का प्रतिनिधि बन जाता है। ऐसा शुक्र यदि पाप प्रभाव में हो तो निश्चित रूप से वीर्य-विकार उत्पन्न करेगा।

यहाँ हम एक बात और स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि जब कोई ग्रह लग्न में स्थित हो या लग्नेश हो तो वह शरीर के उन तत्वों का विशेष प्रतिनिधित्व करता है, जो शरीर में अधिक व्यापक हैं। उदाहरणार्थ; सूर्य, आँख, हृदय एवं हड्डी इन सब का कारक या प्रतिनिधि है। यह लग्न में स्थिति या लग्नेश होकर हड्डी का विशेष प्रतिनिधित्व करेगा क्योंकि शरीर में हड्डी, आँख एवं हृदय की अपेक्षा अधिक व्यापक है। इसी प्रकार चन्द्रमा मन फेफड़े एवं रक्त इन सबका प्रतिनिधि है परन्तु यह लग्न में स्थिति लग्नेश होने पर रक्त का विशेष प्रतिनिधि होगा।

ग्रह	लग्न में स्थित या लग्नेश न होने पर अंग एवं धातुएँ	लग्न में स्थित एवं लग्नेश होने पर अंग एवं धातुएँ
सूर्य	नेत्र, हृदय एवं अस्थि	अस्थि
चन्द्र	मन, फेफड़े एवं रक्त	रक्त
भौम	मांस एवं मज्जा (अस्थिसार)	मांस
बुध	वाक्शक्ति, श्रवण-शक्ति एवं त्वचा	त्वचा
गुरु	उदर, आन्त्र, जिगर एवं मेदा (चर्बी)	मेदा (चर्बी)
शुक्र	नेत्र, मूत्र एवं वीर्य	वीर्य
शनि	पैर एवं नसें (स्नायु)	स्नायु

उपर्युक्त स्थिति में यदि सूर्यादि ग्रह निर्बल एवं पाप-प्रभाव युक्त हों तो अपने कारकत्व (विशेष प्रतिनिधित्व) के अनुसार निश्चित रूप से रोग देते हैं।

ग्रह जो लग्न में स्थित या लग्नेश होकर निर्बल एवं पाप-प्रभावित युक्त हों	रोग
सूर्य	अस्थिज्वर हड्डी, टूटना अस्थि दौर्बल्य
चन्द्र	रक्तविकार, रक्ताभाव एवं रक्तचाप
मंगल	सूखारोग
बुध	त्वचा रोग, दाद, खाज, खुजली, फुन्सी एवं कुष्ठ
गुरु	स्थौल्य एवं दौर्बल्य
शुक्र	वीर्यविकार, प्रमेह, मधुमेह, धातु-क्षय
शनि	स्नायु-दौर्बल्य फालिस एवं लकवा

लग्न के स्वामी का नीचत्व भी रोग का सूचक होता है, क्योंकि लग्नाधिपति व्यक्ति का सामूहिक शरीर है और नीचत्व दुर्बलता का द्योतक है। अस्तु, सूर्यादि लग्नेशों के नीचत्व द्वारा उत्पन्न रोग इस प्रकार हैं। यहाँ भी यह स्मरण रखना चाहिए कि रोगों की निश्चितता के लिए इन ग्रहों पर पाप-प्रभाव का होना परमावश्यक है।

लग्नेश होकर नीचराशिस्थ ग्रह	रोग[1]
सूर्य	कर्ण रोग
चन्द्र	जलोदर
मंगल (मेष लग्न का स्वामी)	हृदय रोग एवं फेफड़ों में विकार
मंगल (वृश्चिक लग्न का स्वामी)	नितम्ब एवं उरु प्रदेश में व्रण
बुध (मिथुन लग्न का स्वामी)	घुटनों में दर्द
बुध (कन्या लग्न का स्वामी)	मूत्र रोग
गुरु (धनु लग्न का स्वामी)	मुख रोग
गुरु (मीन लग्न का स्वामी)	कर्ण रोग, फाइलेरिया
शुक्र (वृष लग्न का स्वामी)	उदर विकार
शुक्र (तुला लग्न का स्वामी)	नेत्र रोग
शनि (मकर लग्न का स्वामी)	हृदय शूल
शनि (कुम्भ लग्न का स्वामी)	साँस की नली में विकार, गल रोग

५. नीच राशि, शत्रु राशि में स्थिति या निर्बलता—

नीच राशि, शत्रु राशिगत एवं अन्य प्रकार से निर्बल-ग्रह शरीर में अपनी धातु की अपेक्षित पूर्ति नहीं कर पाता, तथा वह जिन अंगों का प्रतिनिधित्व करता है, उनका भी सम्यक् विकास नहीं होने देता। फलतः इस प्रकार का ग्रह अपने तत्व के अभाव द्वारा कारकत्व के अनुसार अंग या धातु में विकार उत्पन्न कर रोग देता है।

नीच राशिगत, अस्तंगत या निर्बलग्रह	रोग
सूर्य	पित्तज्वर, दाह, नेत्र, पीड़ा एवं हृदय दौर्बल्य
चन्द्र	कफजरोग, शीतज्वर, उन्माद एवं जलोदर
मंगल	जलना, गिरना, गुप्तरोग, शिरशूल
बुध	त्रिदोष, चर्मरोग, कर्णरोग
गुरु	सूजन (शोफ) नितम्ब एवं पैर में पीड़ा
शुक्र	वीर्य विकार, नेत्र रोग, मुख रोग एवं मूत्र रोग
शनि	दर्द, वायुविकार, स्नायुविकार

---

१. फलदीपिका: पूर्वोद्धृत, रोगनिर्णयाध्याय।

६. अवरोहीपन—

जो ग्रह अपने परमोच्च से आगे तथा परमनीच से पहिले अर्थात् परमोच्च एवं परमनीच के बीच की ६ राशियों में कहीं भी स्थित हो वह अवरोही कहलाता है। अवरोही ग्रह की दशा को अवरोहिणी कहते हैं[1] तथा प्रत्येक ग्रह की अवरोहिणी दशा के समय रोगोत्पत्ति होती है।[2] अतः अवरोही ग्रह रोग कारक माना जाता है।

७. क्रूरषष्ठ्यंश में स्थिति —

प्रत्येक राशि में ६० षष्ठ्यंश होते हैं तथा एक राशि में ३० अंश होते हैं। अतः आधे अंश या ३० कला का एक षष्ठ्यंश होता है। इन ६० षष्ठ्यंश के स्वामियों के नाम इस प्रकार हैं— १–घोर, २–राक्षस, ३–देव, ४–कुबेर, ५–यक्षोगण, ६–किन्नर, ७–भ्रष्ट, ८–कुलघ्न, ९–गरल, १०–अग्नि, ११–माया, १२–यम, १३–वरुण, १४–इन्द्र १५–कला, १६–सर्प, १७–अमृत, १८–चन्द्र, १९–मृदु, २०–कोमल, २१–पद्म, २२–विष्णु, २३–गुरु, २४–शिव, २५–देव, २६–आर्द्र, २७–कलिनाश, २८–क्षितीश, २९–कमलाकर, ३०–मन्दात्मज, ३१–मृत्युकर, ३२–काल, ३३–दावाग्नि, ३४–घोरा, ३५–अधम, ३६–कण्टक, ३७–सुधा, ३८–अमृत, ३९–पूर्णचन्द्र, ४०–विषदग्ध, ४१–कुलनाश, ४२–मुख्य, ४३–वंशक्षय, ४४–उत्पातक, ४५–काल, ४६–सौम्य ४७–मृदुष्ट्र ४८–सुशीतल, ४९–दंष्टाकराल, ५०–इन्दुमुख, ५१–प्रवीण, ५२–कालाग्नि, ५३–दण्डायुध ५४–निर्मल, ५५–शुभाकर, ५६–अशोधन, ५७–शीतल, ५८–सुधा समुद्र, ५९–भ्रमण एवं ६०–इन्दुरेखा। विषम राशियों में षष्ठ्यंश के स्वामियों की गणना घोर से इन्दुरेखा तक यथा क्रमेण तथा समग्र राशियों में षष्ठ्यंश के स्वामियों की इन्दुरेखा से घोर पर्यन्त व्युत्क्रम से की जाती है। उक्त ६० षष्ठ्यंशों के स्वामियों में से जिनके नाम शुभ हैं, उन्हें शुभ षष्ठ्यंश तथा जिनके नाम क्रूर हैं उन्हें क्रूरषष्ठ्यंश कहते हैं।[3] इस क्रूरषष्ठ्यंश में स्थित ग्रह की दशा में रोग होते हैं।[4] अतः ष्ठ् क्रूरषष्ठ्यंश में स्थित ग्रह रोगकारक कहलाता है।

८. पापग्रहों से प्रभावित होना—

पापग्रहों के साथ होना या पाप ग्रहों से दृष्ट होना पाप प्रभाव कहलाता है। जिस भाव का प्रतिनिधि ग्रह पापग्रहों से दृष्ट या युत होता है, वह अपने भाव से सम्बन्धित अंग में रोग उत्पन्न करता है।

९. अरिष्ट (बालारिष्ट) कारकत्व या मारकत्व —

ज्योतिष के सभी प्रामाणिक ग्रंथों में बालारिष्ट अर्थात् बाल्यावस्था में अकाल मृत्यु का विस्तृत-विवेचन मिलता है। इस अरिष्ट योग के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :—

---

१. वृहज्जातकः पूर्वोद्धृत, अ० ८, श्लो० ६।
२. देखिए–तत्रैव–अष्टम अध्याय।
३. जातक पारिजातः पूर्वोद्धृत, अ० १ श्लो० ३८–४३।
४. देखिए–सर्वार्थ चिन्तामणि अ० १३।

(क) लग्न एवं लग्नेश निर्बल हों—

यह बात युक्तियुक्त है, क्योंकि लग्न एवं लग्नेश के बलाबल से स्वास्थ्य, शारीरिक वृद्धि एवं आयु का विचार करते हैं।[1] अतः इन दोनों की निर्बलता से मानव को जीवन मिलने की सम्भावना नष्ट हो जाती है।

(ख) अष्टम भाव एवं अष्टमेश निर्बल हों—

ज्योतिषशास्त्र के सभी आचार्यों ने अष्टम स्थान को आयु का स्थान माना है।[2] अतः इसकी निर्बलता भी जीवन के लिए हानिकारक है।

(ग) चन्द्रमा क्षीण एवं पाप प्रभावयुक्त हो—

चन्द्रमा बाल्यावस्था का प्रतिनिधि ग्रह है, यह पाप-प्रभाव द्वारा व्यक्त करता है कि इस आयु में अवश्य कोई खतरा होना चाहिए।

(घ) लग्न, चन्द्र एवं अरिष्टकारक ग्रहों पर शुभ प्रभाव का अभाव—

ज्योतिष शास्त्र का यह सार्वभौम सिद्धान्त है कि शुभ ग्रहों की युति या दृष्टि द्वारा पड़ने वाला प्रभाव सभी अनिष्टों को दूर कर देता है। इस प्रभाव का न होना अनिष्टों को निश्चयता प्रदान करता है।

(ङ) पाप ग्रहों का बलवान् एवं शुभ ग्रहों का निर्बल होना—

शुभ ग्रहों की निर्बलता इस बात की द्योतक है कि जातक पर उनकी अमृतमय रश्मियों का कम प्रभाव है तथा पापग्रहों का बलशाली होना, उनकी विषमय किरणों की प्रचण्डता का द्योतक है।

इन पाँचों कारणों पर विहंगम दृष्टि डालने से अनायास ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि ये कारण स्वयं जो कार्य करेंगे, वह मृत्यु के अलावा क्या होगा? आचार्य वराहमिहिर ने उपर्युक्त लगभग सभी बातों का समावेश कर कहा है कि यदि किसी जातक की कुण्डली में क्षीण चन्द्रमा द्वादश स्थान में हो, पाप-ग्रह लग्न तथा अष्टम् में हों, केन्द्र स्थानों में कोई शुभ ग्रह न हो, तो ऐसी स्थिति में उत्पन्न जातक की तुरन्त मृत्यु हो जावेगी।[3]

---

१. शरीरवर्ण चिन्हायु वयो मानं सुखासुखम्।
ज्ञातिशीलं च मतिमाल्लग्नात्सर्वं विचिन्तयेत्। - प्रश्नतन्त्रम्

२. लघुपाराशरी—
अष्टमं ह्यायुषस्थानं अष्टमादष्टमं च यत्॥३।१

३. बृहज्जातके—क्षीणे हिमगौ व्ययगे पापैरुदयाष्टमगैः।
केन्द्रेषु शुभाश्च न चेत् क्षिप्रं निधनं प्रवदेत्॥—अरिष्टाध्याय श्लो० ४।

उपर्युक्त विवेचन में हमने प्रथम ३ कारणों द्वारा अरिष्ट-योग का होना सूचित किया है तथा पिछले २ कारणों द्वारा अरिष्ट भंग न होना व्यक्त किया। अतः अरिष्ट-निर्णय करते समय इन पाँचों कारणों का सूक्ष्म विचार आवश्यक है।

महर्षि पाराशर के अनुसार अष्टम एवं तृतीय स्थान आयु के स्थान होते हैं। इन दोनों के यथाक्रमेण व्यय स्थान होने के कारण सप्तम एवं द्वितीय स्थान मारक-स्थान कहलाते हैं। प्रायः सभी आचार्यों ने द्वितीय एवं सप्तम स्थान के स्वामी को मारक-ग्रह माना है। महर्षि जैमिनी ने छिद्र, रुद्र एवं शूल ग्रहों की परिकल्पना की है, जो मृत्यु के कारण होते हैं। ये मारक-ग्रह अपनी अन्तर्दशा में आयुर्दाय की समाप्ति के समय मृत्यु देते हैं।[1]

क्योंकि मृत्यु को एक महारोग माना गया है अतः मारक एवं बालारिष्ट कारक ग्रहों को रोगदायक माना गया है। भारतीय ज्योतिष के अनुसार सूर्यादि ग्रहों में से कोई मारक या अरिष्टकारक होने पर निम्नलिखित रोगों से मृत्यु देता है।

मारकग्रह	रोग
सूर्य	अग्निदाह, उष्णज्वर, पित्त क्षेभ एवं ब्रेन हैमरेज।
चन्द्र	विषूचिका, जलोदर, प्ल्यूरेसी या अन्य बिमारी जिसमें कहीं जल इकट्ठा हो जावे, तपेदिक एवं निम्न रक्त चाप।
मंगल	जलना, दुर्घटना, रक्त विकार, बवासीर, सूजाक, अतिसार, संग्रहणी, अधिक रक्त चाप एवं बिजली का करेण्ट लगना। यह आपरेशन के समय अधिक रक्त निकल जाने या रक्त की कमी से तुरन्त मृत्यु देता है।
बुध	पाण्डु, भ्रान्ति, यकृतरोग एवं त्रिदोष।
गुरु	कफविकार, किन्तु मृत्यु के समय कष्ट नहीं होता।
शुक्र	वीर्यविकार, प्रमेह, मधुमेह एवं अन्य मूत्र राग
शनि	सन्निपात, वातज रोग (लकवा, फालिस आदि) एवं कैंसर।
राहु	कुष्ठ, छूतरोग, विष तथा कीटाणु रोग एवं सर्पदंश।

---

१. लघुपाराशरी—अष्टमं ह्यायुषस्थानं अष्टमादष्टमंच यत्।
तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते।
तदीशितु तत्र गताः पापिनस्तेन संयुताः।
तेषां दशा विपाकेषु संभवे निधनं नृणाम् ॥३।१-२

ग्रह	रोग
केतु	आकस्मिक दुर्घटना (मोटर, रेल, वायुयान, विस्फोट गिरना या कत्ल कर देना।) सेप्टिक, हृदय गति रुकना तथा विषाक्त किटाणुओं के शरीर में प्रवेश होने से उत्पन्न रोग।[1]

अष्टम स्थान में स्थित ग्रह जब पाप प्रभाव युक्त होता है, तो उसे भी मारक कहते हैं। जातक पारिजातकार ने सूर्यादि ग्रहों के मारक होने पर विभिन्न स्थितियों के मृत्यु के योग इस प्रकार लिखे हैं।[2]

योग	रोग
१—सूर्य और मंगल बलहीन तथा मारक हों। धनस्थान में पापग्रह हों।	पित्तरोग
२—चन्द्र एवं गुरु जलचर राशि में स्थित एवं मारक हों।	क्षयरोग
३—शुक्र मारक हो और पापग्रह देखते हों।	वातरोग, क्षयरोग एवं प्रमेह
४—राहु मारक हो और पापग्रह देखते हों।	पिटक, उष्णताजन्य रोग एवं सर्पदंश
५—केतुमारक हो और पापग्रह देखते हों।	मसूरिका एवं पित्त रोग

१. फलदीपिका—

अग्न्युष्णज्वरपित्तशस्त्रज मिनश्चन्द्रो विपूच्यग्गुरु—
ग्यक्ष्मादि क्षितिजो सृजा च दहनक्षुद्राभिचारायुधैः।
पाण्ड्वादि श्रमजं बुधो गुरुरनायासेन मृत्युं कफात्,
स्त्रीसंगोत्थरुजं कपिस्तु मरुजा वा सन्निपातैः शनि।
कुष्ठेन वा कृत्रिमभक्षणाद्वा राहुर्विषाद्वाथ मसूरिकाद्यैः।
कुर्याच्छिखी दुर्मरणं नराणां रिपोर्विरोधादपि कीटकादौः॥
—रोगनिर्णयाध्याय, श्लो० १४–१५॥

२. जातक पारिजात—

रन्ध्रस्थानगते सूर्ये भौमे वा बलवर्जिते।
वित्ते पापग्रहैर्युक्ते पित्तरोगान्मृतिं वदेत्॥
जलराशिगते चन्द्रे चाष्टमेथवा गुरौ।
पापग्रहेण संदृष्टे क्षयरोगान्मृतिं वदेत्॥
अष्टमस्थानगे शुक्रे पापग्रह निरीक्षिते।
वातरोगात्क्षया द्वापि प्रमेहाद्वा मृतिं वदेत्॥
मृत्युस्थानगते राहौ पापग्रह निरीक्षिते।
पिटकाद्युष्णरोगाद्वा सर्पदोषान्मृति वदेत्॥
पराभव गते राहौ पापग्रह निरीक्षिते।
मसूरिकारोगाद्वा पित्त भृंशान्मृति वदेत्॥
—आयुर्दायाध्याय श्लो० ८७ से ८९ एवं ९१ तथा ९२।

यहाँ सर्वत्र मारक से तात्पर्य अष्टम भाव में स्थित ग्रह है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन ९ हेतुओं द्वारा प्रत्येक ग्रह रोग कारक हो जाता है। ऐसा रोग कारक ग्रह जिन-जिन रोगों को उत्पन्न कर सकता है—उनकी तालिका इस प्रकार है—

ग्रह	रोग
सूर्य	१–पित्त विकार, २–उष्ण ज्वर, ३–शरीर में जलन, ४–अपस्मार (मिर्गी). ५–हृदय रोग ६–नेत्र रोग, ७—नाभि से नीचे प्रदेश या कोख में पीड़ा, ८—चर्मरोग, ९–अस्थिसुति, १०–विष-पीड़ा, ११–अग्निरोग, १२–ज्वरवृद्धि, १३—क्षय, १४—अतिसार, १५—चित्त-व्याकुलता, १६–अग्नि, शस्त्र एवं काष्ठ से व्रण, १७—शिर-पीड़ा ।[1]
चन्द्र	१—निद्रारोग (निद्रा न आना या अधिक आना। सोते-सोते चलना जिसे निद्राटन या संन्यास रोग कहते हैं), २—आलस्य, ३—कफ, ४—अतिसार (संग्रहणी), ५—पिटक ६—शीतज्वर, ७–मन्दाग्नि, ८–अरुचि, ९–पीलिया, १०–रक्तविकार ११–चित्त थकावट या व्याकुलता, १२–पाण्डु १३—जलोदर, १४—कामला, १५—पीनस, १६—स्त्री जन्यरोग, १७– प्रमेह, १८—वाताधिक्य एवं १९—मानसिक रोग ।[2]

१. फलदीपिका—

'पित्तोष्णज्वरतापदेहतपनापस्मारहृत्क्रो

जव्याधीन्वक्ति रविर्हगार्त्यरिभयं त्वग्दोषमस्थिसुतिम् ।१४।२

जातक-पारिजात—

'सदाग्निरोगज्वरवृद्धिदीपनक्षयातिसारदिकरोगसंकुलम् ।२।७५।

गदावली—

'करोति दुष्टस्तपनो क्षिकव्यथामुष्णातिसारं ज्वरदेहतापनम् ।

पित्तं क्षयं तापगदं गरानलास्त्रदारुपीडां च हृदङ्कयोरुजम् ।।१।६

२. फलदीपिका—

निद्रालस्यकफातिसारपिटकाः शीतज्वरं चन्द्रमा,

शृंग्यब्जाहतिमग्निमान्द्यमरुचिं योषिव्यथाकामिला ।१४।३।

जातकपारिजात—

'पाण्डुदोष-जलदोपकामलापीनसादिरमणीकृतामयैः ।२।७६।

गदावली—

'विधुर्विधत्ते रुचिमग्निमन्दताम्बुदोषशीतज्वरपाण्डुकामलाः ।

प्रमेहवाताधिकताकलानिलातिसारमसृग्विकृतिं च पीनसम् ।।१।७।

ग्रह	रोग
भौम	१–तृष्णा, २–वायुक्षोभ से पित्त-प्रकोप, ३–पित्त ज्वर, ४–जलन, ५–विषमय ६–रक्तकुष्ठ, ७–नेत्ररोग, ८–गुल्म (एपिन्डिसाइटीज), ९–अपस्मार, १०–गज्जारोग, ११–खुजली, १२–चमड़े में खुर्दरापन, १३–शरीर का कोई अंग या हड्डी टूटना, १४–वृहद्वीज, १५–कफज ग्रन्थि रोग, १६–व्रण, १७– रक्त विकार (रक्ताभाव, रक्तपात या रक्तचाप)।[1]
बुध	१–भ्रान्ति, २–बौद्धिक-असंतुलन, ३–नेत्ररोग (रोएँ आदि) ४–गले का रोग, ५–नासिका रोग, ६–त्रिदोष-ज्वर, ७–विष की बीमारी (सेप्टिक), ८–चर्मरोग, ९–पीलिया, १०–खुजली, ११–दाद, १२–उदर विकार, १३–गुप्तरोग, १४–वायुविकार, १५–कुष्ठ, १६–मन्दाग्नि, १७–संग्रहणी १८–विर्चचिका, १९–मूर्छा एवं वाक् रोग,[2] २१—चेचक (मसूरिका), २२—जड़ता।

---

१. फलदीपिका –

"तृष्णासृक्कोपपित्तज्वरमनलविषास्त्रार्तिकुक्षाक्षिरोगान्,
गुल्मापस्मारमज्जाविहृतिपरुषतापामिकादेहअगान्॥ १४।४।

जातक पारिजात—

"पीनवीजकफ-शस्त्र-पावक-ग्रन्थिरुग्व्रणदरिद्रजामयैः। २।७७।

गदावली—

कुर्य्यात्कुजो गुल्मगदं च पामिका-,
पस्मारपित्तज्वरपीन बीजकम्।
ग्रन्थ्यस्त्रकोपाक्षि गदान् दरिद्रजः
रुक्कुष्ठतृष्णास्त्रविषानलव्यथा॥ १।८।

२. फलदीपिका—

भ्रान्ति दुर्वचनं हगामपगलघ्राणोत्थरोगं ज्वरं,
पित्तं श्लेष्मसमीरजं विषमपि त्वग्दोषपाण्डवामयान्।
दुःस्वप्नं च विर्चचिकाग्निपतने पारुष्यबन्धश्रमान्,। १४।५।

जातक पारिजात—

गृह्योदरादश्यसमीर-कुष्ठ-मन्दाग्नि-शूल-ग्रहणीरुगाद्यैः। २।७८।

गदावली—

कुष्ठं त्रिदोषं नयनामयं गलघ्राणोत्थरोगं ग्रहणीं विर्चचिकाम्।
भ्रान्ति कृशानौ पतनं विषं ज्वरं दुःश्वप्नमोहान्कुरुते कलेशजः॥१।९।

ग्रह	रोग
गुरु	१—गुल्म (पेट का फोड़ा एपिन्डिसाइटीज), २—आन्त्र ज्वर (टाइफाइड) ३—मूर्च्छा, ४—कर्णरोग, ५—कफज रोग, ६—ज्वर. ७—मोहजन्य कफजन्य या सर्वजन्य रोग, ८—छर्दी (वमन), ९—आन्त्र रोग (हार्निया), १०—शोफ रोग. ११—स्थौल (चर्बी बढ़ना)।[1]
शुक्र	१—पाण्डु, २—कफ एवं वायु विकार से नेत्र रोग (मोतिया बिन्दु काला पानी) ३—मूत्ररोग (पेशाब में कठिनता या कष्ट-उपदंश, सुजाक, पथरी या प्रोस्ट्रेट ग्लैण्ड वढ़ जाने के कारण), ४—प्रमेह, ५—वीर्य की कमी, ६—संभोग में अक्षमता. ७—अतिसम्भोग के कारण दौर्वल्य, कास, श्वास एवं क्षय, ८—शोष (शरीर सूखना), ९—स्त्रीजन्य रोग, १०—मधुमेह, ११—वात एवं श्लेष्म-विकार, १२—वेश्या से उत्पन्न रोग, १३—कामजन्य पीड़ा, १४—कामान्धत्व (उन्माद, जो कामजन्य हो), १५—शीघ्रपतन, १६—स्वप्न दोष, १७—धातुक्षय ।[2]
शनि	१—वात एवं कफ जन्य रोग, २—टाँग दर्द या लँगड़ाना, ३—अधिक श्रम से मानसिक थकान, ४—भ्रान्ति (बौद्धिक रोग), ५—कुक्षि में गाँठ,

१. फलदीपिका—

गुल्मान्त्रज्वरशोकमोहकफजान् श्रोत्रार्तिमोहामयान् । १४।६ ।

जातकपारिजात—

आचार्यदेवगुरुभूसुरशापदोषैः
शोकं च गुल्मरुजमिन्द्रगुरुः करोति । २।६८ ।

गदावली—

वृहस्पतिः सूचयति ज्वरं श्रुतिव्यथां गदान्मोहकफाहिसम्भवान् ।
छर्दीञ्च गुल्मान्त्ररुजं शुचं द्विजशापोत्थपीड़ां सुरसम्भवांरुजम् ।। १।१० ।

२. फलदीपिका—

पाण्डुश्लेष्ममरुत्प्रकोपनयनव्यापत्प्रमेहामयान्,
गुह्यस्यामयमूत्रकृच्छ्रमदनव्यापत्तिशुक्लसुतिम् ।
वारस्त्रीकृतदेहकान्तिविहतिं शोषामयं योगिनी । १४।७ ।

जातकपारिजात—

कान्ताविकारजनिमेहरुजा सुराद्यैः
स्वेष्टाङ्गनाजनकृतैर्मयमासुरेज्यः । २।७९ ।

गदावली—

करोति मः श्लेष्ममरुत्प्रकोपं पाण्डुं प्रमेहं गणिकोत्थरोगम् ।
मारव्यथां शोषरुजं च गुह्यरुङ्मूत्रकृच्छ्रे नयनामयं च ।। १।११ ।

ग्रह	रोग
	६–शरीर में अधिक उष्णता, ७–हृदयताप, ८–सन्धिरोग, (गठिया, हार्निया), ९—गुप्तेन्द्रिय में पीड़ा, १०—पार्श्व तथा शरीर में पीड़ा ११—पक्षाघात, १२—पोलियो, १३—फालिस, १४—स्नायु-दौर्बल्य, १५—कैंसर एवं १६—वातशूल ।[1]
राहु	१—हृदय दौर्बल्य, २—हृदय-ताप, ३—कुष्ठ, ४—दुर्मति, (मानसिक स्नायविक उत्तेजना से मतिक्षय), ५—विष, विष कीटाणु से उत्पन्न बीमारियाँ (जहरवाद), ६—पैर में चोट, ७—अपस्मार, ८—मसूरिका, ९—गण्डमाला, १०—कृमिरोग, ११—अरुचि, १२—उद्‌बन्धन ।[2]
केतु	१—श्वेतकुष्ठ, २—गर्भस्राव, ३—चर्मरोग, ४—कण्डूरोग, ५—मसूरिका, ६—जलोदर एवं विषरोग ।[3]

---

१. फलदीपिका—

"वातश्लेष्मविकारपादविहितं चापत्तितन्द्राश्रमान्,
भ्रान्ति कुक्षिरुगन्तरुष्णमृतकध्वंसं च पार्श्वाहतिम् ।
भार्यापुत्रविपत्तिमङ्गविहतिं हृत्तापमर्कात्मजो ।१४।८।

जातकपारिजात—

"दारिद्रयदोपनिजकर्मपिशाचचौरैःक्लेशंकरोति रविजःसहसन्धिरोगैः ।२।७९।

गदावली—

"भ्रान्तिं च तापं हृदि कुक्षसन्धिरोगं विकारं मरुतः कफस्य ।
गुह्ये व्यथां पार्श्वतनूहती च श्वासामयं भानुजनिर्विधत्ते ।।१।१२।

२. फलदीपिका—

"स्वर्भानुर्हृदि तापकुष्ठविमतिं व्याधिं विषं कृत्रिमं,
पादर्ति च पिशाचपन्नगमयं भार्यातनूजापदम् ।१४।९।

जातकपारिजात—

"करोत्यपस्मारमसूरिरज्जुक्षुद्हृक्कृमिप्रेतपिशाचभूतैः ।
उद्‌बन्धनेनारुचिकुष्ठरोगैर्विधुन्तुदश्चातिभयं नराणाम् ।२।८१।

गदावली—

"पादव्यथां चेतसि तापमात्मजवधूपिपर्त्ति कृमिरोगमङ्गिनाम् ।
उद्‌बन्धनं कृत्रिमरुङ्मसूरिकासपौत्थरोगान्कुरुते भुजङ्गम् ।।१।१३।

३. जातकपारिजात—

"कण्डूमसूरिरिपुकृत्रिमकर्मरोगैः स्वाचारहीनलघुजातिगणैश्च केतुः ।२।८०।

गदावली—

"दुष्टो विधत्ते चिकुरोम्बुबाधनं स्वाचारहीनोभ्दव कर्मजामयम् ।
राजन्यविप्रैःसह वैरमङ्गिवां कण्डूं विषप्रेतदरं मुसूरिकाम् ।।१।१४।

ग्रह	रोग
गुलिक	१—उदरविकार, २—चिड़चिड़ापन, ३—प्रसाद आलस्य एवं दौर्बल्य, ४—कैंसर, ५—कृमिरोग, ६—विषरोग ।[1]

रोग (षष्ठ) भाव—

६वां भाव रोग भाव है। इस भाव पर पाप-प्रभाव रोग उत्पन्न नहीं होने देता। किन्तु शुभ-प्रभाव रोगोत्पत्ति में सहज-वृद्धि कारक माना गया है। आचार्य वराहमिहिर सुपुत्र पृथुयशसा ने भाव से फल ज्ञान के प्रकार का विश्लेषण करते हुए कहा है कि "जो भाव शुभग्रह या अपने स्वामि से दृष्टि-युत हो, वह अपने प्राकृतिक-फल को वृद्धिगत करता है, किन्तु वहीं भाव प्राप-प्रभाववश प्राकृतिक फल की हानि करता है।[2] यतः छठां भाव रोग भाव है और इसका प्राकृतिक फल रोगोत्पत्ति एवं रोगवृद्धि है। अतः शुभ प्रभाव इस प्राकृतिक फल को वृद्धिगत कर रोगोत्पत्ति में सहायक माना गया है।

इस भाव में स्थित बलवान् ग्रह ही रोगोत्पत्ति-कारक होते हैं, निर्बल नहीं। शुभाशुभ फल देने की क्षमता बलवान् ग्रह में ही होती है, अस्तु। इसी प्रकार छठें भाव में नीच राशि एवं शत्रुराशि गत ग्रह रोग विनाशक माने गये हैं, जब कि उच्च राशि एवं मित्र राशिगत ग्रह रोगकर्ता होते हैं। हमने अनेक व्यक्तियों की कुण्डलियों में प्रत्यक्षतः देखा है—छठे भाव में कर्क राशिगत मंगल होने पर वे स्वस्थ, साहसी एवं स्वाभिमानी होते हैं। वस्तुतः इस सिद्धान्त की पृष्ठ-भूमि में भी ज्योतिष यह सर्वमान्य सिद्धान्त अन्तर्निहित है कि नीच और शत्रु राशिगत ग्रह भाव के नैसर्गिक-फल का विनाश

---

१. फलदीपिका—

"प्रेतोत्थं च भयं विषं च गुलिको देहार्तिमाशौचजम् ।१४।६।

२. षटपंचाशिका—

यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा स्यात्तस्य तस्यास्तिवृद्धिः ।
पापैरेवं तस्य भावस्य हानिः निर्देष्टव्या पृच्छतां जन्मतो वा । श्लो ०५।

तथा चाह-पाराशर :—

'यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा स्यात्तस्याभिवृद्धिः ।
पापैरेवं तस्य भावस्य हानिर्निदिष्टव्या जन्मतः प्रश्नतो वा ॥११।१४

अन्यच्च-जातक पारिजाते—

"तन्वादिभावेषु शुभोदयेषु तद्भावनाथोपगते क्षितेषु ।
तदुक्तभावस्य समृद्धिरुक्ता न पापखेटे क्षितसंयुतेषु ॥
अध्याय ११, श्लो० २ ।

करता है, किन्तु मूलत्रिकोण, उच्च एवं मित्र राशि गत ग्रह उसकी परम वृद्धि करता है।[1]

इस भाव में मेषादि राशियाँ पाप-प्रभाववश निम्नलिखित रोगों को उत्पन्न करती हैं :—

राशियाँ	रोग
मेष	पित्तज्वर, उष्णता, तृष्णा, दाह, व्रण, स्फोट, अग्निमय, लू लगना एवं जठराग्नि सम्बन्धी रोग।
वृषभ	त्रिदोषजन्य रोग, सन्निपात, नपुंसकता एवं अग्नि दाह (जलना)।
मिथुन	श्वास, कास, दमा, उष्णशूल (पित्तजन्य तीव्रदर्द) एवं कामुकता।
कर्कट	पागलपन, उन्माद, वातरोग एवं अरुचि।
सिंह	ज्वर, स्फोट, शिर-शूल एवं स्नायविक तनाव।
कन्या	स्त्रियों के कारण गुप्त रोग।
तुला	धीज्वर, सन्निपात, प्रमेह, शरीर का सन्तुलन न बनने के कारण गिरना आदि।
वृश्चिक	प्लीहा, तिल्ली, संग्रहणी एवं पाण्डु रोग।
धनु	आन्त्र विकार, पेड़ से गिरना, पैर एवं कमर में चोट।
मकर	शूल (पेटदर्द-एपिण्डीसाइटिज) पेट में फोड़ा अरुचि, मन्दाग्नि, बुद्धिभ्रम एवं स्नायविक रोग।
कुम्भ	खाँसी, ज्वर, (कफज), प्रतिश्याय (इन्फ्लूएंजा) एवं क्षय।
मीन	जलोदर, कफ एवं शीत विकार।

अष्टम एवं व्यय स्थानाभाव—

अष्टम भाव, मृत्यु या नाश भाव होने के कारण स्वास्थ्य/देहसुख का ह्रास करने वाला है। यह भाग्य स्थान का व्यय स्थान होने के कारण संचित या प्रारब्ध कर्म की अशुभता का सूचक है। व्यय स्थान लग्न से १२ वाँ भाव होने के कारण स्वास्थ्य एवं शरीर के क्रमिक ह्रास का प्रतिनिधि-स्थान है। इन कारणों से व्यय एवं अष्टम स्थान रोग के कारक माने गये हैं। इन दोनों भावों में स्थित ग्रह अपनी राशि, भाव एवं कारकत्व के अनुसार तत्प्रकार से अशुभ-फलदायक होकर रोगोत्पत्ति करते हैं। ज्योतिष शास्त्र के सभी आचार्यों ने इस विलक्षणता को ध्यान में रख यह नियम/सिद्धान्त घोषित किया होगा— कि '६ठें एवं ८वें भाव में स्थित सभी ग्रह नेष्ट होते हैं।'[2] इस सिद्धान्त का प्रयोग,

१. जातक पारिजाते—

नीचस्थो रिपुराशिस्थः खेटो भावविनाशकः।
मूलस्वतुङ्गमित्रस्थो भाववृद्धिकरो भवेत्॥ अ० ११, श्लो० ३।

२. "सर्वे नेष्टा व्ययाष्टमगाः।"

बैद्यनाथ के जातक-पारिजात में शरीर-सुख का विचार प्रसंग में देखिये—क्रूर ग्रह से लग्नेश ६ठें, ८वें एवं १२ वें स्थान में हो तो शरीर-सुख की हानि होती है।[1] तात्पर्य स्पष्ट है—स्वास्थ्य एवं शरीर-सुख का प्रतिनिधि ग्रह (लग्नेश) जब ८ वें और १२ वें स्थान में स्थित होगा, तो अवश्य देह-सुख का ह्रास/नाश करेगा। यहाँ 'सक्रूर' शब्द केवल इस योग को बल दे रहा है, क्योंकि शुभयुत या शुभ दृष्ट होने पर कोई रोगविषयक प्रबल योग नहीं बन सकता। उदाहरण के तौर पर ८वें तथा १२ वें में स्थित चन्द्रमा शरीर में दुर्बलता, अनेक रोग मन में व्याकुलता, उद्वेग एवं नेत्रपीड़ा करता है।[2] एवं इन्हीं स्थानों में स्थित सूर्य नेत्रकारक होने के नाते नेत्र पीड़ा करता है।[3]

अन्य भाव एवं राशियों को रोगकारक बनाने वाले हेतु

लग्न आदि द्वादश भाव तथा मेष आदि द्वादश राशियां निम्नलिखित कारणों से रोग-कारक बन जाती हैं :—

१—पाप ग्रहों के मध्य में स्थिति।

२—पापग्रहों से युति या पाप ग्रहों की दृष्टि।

३—त्रिक स्थान से सम्बन्ध।

४—स्वामियों की अनिष्ट स्थान में स्थिति।

५—भाव, राशि या इनके स्वामियों की निर्बलता।

६—भाव से चतुर्थ, अष्टम एवं द्वादश स्थान में या त्रिकोण स्थान में पापग्रहों का होना।

७—रोग कारक ग्रहों से सम्बन्ध।

८—शुभ ग्रहों का प्रभाव न होना।

---

१. जातकपारिजात—"सक्रूरो देहपो देहसांख्यहान्त्यारिरन्ध्रगः।
अ० ११, श्लो० ३३।

२. जातकाभरण—
नानारोगैः क्षीणदेहो तिनिस्वश्चौराराातिक्षोणिपालामितप्तः।
चित्तोद्वेगैर्व्याकुलो मानवः स्यादायुः स्थाने वर्तमाने हिमांशौ॥
हीनत्वं वै चारुशी लेन मित्रै वैकल्यं स्यान्नेत्रयोः शत्रुवृद्धिः।
....पीयूषांशौ द्वादशे वेश्मनीह॥
—चन्द्रभावफलाध्याय श्लो० ८ एवं १२।

३. सारावली—
विकलनयनोष्टमस्थे धनसुखहीनोल्पजीवितः पुरुषः।
तथा विकलशरीरः काणः पतितो बन्ध्यापति पितुरमित्र।
द्वादशसंस्थे सूर्ये बलरहितो जायते क्षुद्रः॥
—ग्रह भाव फलाध्याय श्लो० ६ एवं १३।

उक्त आठ कारणों में पहिले सात कारण भाव या राशि के अपने फल में विकार या हानि पैदा कर देते हैं। इस प्रकार जिस राशि या भाव के फल में विकार या हानि का कोई स्पष्ट कारण दिखलाई दे, वह राशि या भाव शरीर के शीर्ष[1] आदि जिस अंग या वात[2] आदि जिस विकार का प्रतिनिधित्व करता हो, शरीर के उस अंग में वात पित्तादि के प्रकोप वश रोग होता है। किन्तु किसी भी भाव या राशि पर शुभ ग्रहों का प्रभाव (दृष्टि या युति) हो तो वह रोग उत्पन्न नहीं होने देता। इसलिए भाव या राशि पर शुभग्रहों का प्रभाव न होने पर ही वे रोगकारक बनते हैं।

१—पापग्रहों के मध्य में स्थिति—

जो भाव या राशि दो पाप ग्रहों के बीच में हो वह भाव या राशि पाप-प्रभाव युक्त होने के कारण जिस अंग का प्रतिनिधित्व करता है, उसमें विकार उत्पन्न कर देता है। यदि भाव या राशि से बारहवें स्थान में स्थित पापग्रह मार्गी तथा दूसरे स्थान में स्थित पापग्रह वक्री हो तो यह योग पापकर्तरी कहलाता है। इस पापकर्तरी में अनुलोम एवं विलोम गति से चलने वाले पापग्रहों की कैंची उस राशि या भाव से सम्बन्धित अंग के स्वास्थ्य के टुकड़े-टुकड़े कर देती है।

२—पाप ग्रहों से युति या पाप ग्रहों की दृष्टि—

जो राशि या भाव शुभग्रहों से दृष्ट या युत होता है, उसके फल की वृद्धि होती है। और जो राशि या भाव पापग्रहों से दृष्ट या युत होता है, उसके फल का ह्रास होता है।[3] तात्पर्य यह है कि जिस राशि भाव में पाप ग्रह स्थित हो या जिस राशि अथवा भाव पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो, वह राशि या भाव शरीर के जिस अंग या धातु का प्रतिनिधित्व करता है, उसमें विकार हो जाता है। इसलिए किसी भी राशि या भाव का पापग्रहों से दृष्ट या युत होना रोगोत्पत्ति का प्रमुख कारण माना जाता है।

३—त्रिक् स्थान से सम्बन्ध—

षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश स्थान को त्रिक स्थान कहते हैं। इन स्थानों में से षष्ठ स्थान रोग का, अष्टम स्थान आयु या मृत्यु का तथा द्वादश स्थान हानि का प्रतिनिधित्व करता है। जिस भाव का स्वामी इन स्थानों में हो या जिस राशि या भाव में त्रिकेश हो, उस राशि या भाव का फल नष्ट हो जाता है।[4] इसलिए ज्योतिष शास्त्र के आचार्य ने त्रिक्स्थान या त्रिकेश से सम्बन्धित राशि अथवा भाव को अनिष्ट फलदायक माना है।[5]

---

१. वृहत्पाराशर होराशास्त्रम् पूर्वोद्धृत, अ० ४, श्लो० ४।

२. तत्रैव, श्लो० ५–६।

३. देखिए—(क) जातक पारिजातः पूर्वोद्धृत, अ० ११, श्लो० १।
(ख) प्रश्नमार्गः पूर्वोद्धत, अ० १४, श्लो० २५ तथा ४६।

४. जातक परिजातः अ० ११, श्लो० ४।

५. प्रश्नमार्गः अ० ११, श्लो० २६।

इस प्रकार (क जिस राशि या भाव का स्वामी त्रिक् स्थान में स्थित हो, (ख) जिस राशि या भाव का स्वामी त्रिकेश से युत या दृष्ट हो (ग) त्रिकेश जिस राशि या भाव में बैठा हो अथवा (घ) त्रिकेश जिस राशि या भाव में बैठा हो उस राशि या भाव से सम्बन्धित अंग में रोग होता है।

४—राशि या भाव के स्वामी की अनिष्ट स्थान में स्थिति—

जिस प्रकार किसी भी राशि या भाव का स्वामी त्रिक् स्थान में बैठने से वह रोगकारक हो जाता है, इसी प्रकार किसी राशि या भाव का स्वामी ग्रह अनिष्ट स्थान में हो तो वह राशि या भाव रोगकारक माना जाता है।

राशि या भाव के स्वामी दो प्रकारके होते हैं :—१—शुभ ग्रह तथा २—पापग्रह। शुभग्रहों के लिए तृतीय, षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश स्थान अनिष्ट स्थान होते हैं तथा पापग्रहों के लिए तृतीय, षष्ठ एवं एकादश स्थान के अलावा सभी स्थान अनिष्ट-स्थान होते हैं।[1] इस प्रकार किसी भी राशि या भाव का स्वामी यदि शुभ ग्रह हो और वह कुण्डली में तृतीय, षष्ठ, अष्टम या एकादश स्थान में बैठा हो तो वह राशि का भाव रोगकारक हो जाता है। तथा यदि किसी राशि या भाव का स्वामी पापग्रह हो और वह त्रिषडाय को छोड़कर अन्य स्थान में बैठा हो तो वह राशि या भाव रोगकारक हो जाता है।

५—भाव, राशि एवं इनके स्वामियों की निर्बलता—

जो भाव या राशि निर्बल हो अथवा जिस भाव या राशि का स्वामी ग्रह निर्बल हो उससे सम्बन्धित अंग में दुर्बलता या रोग होता है। इसका कारण यह है कि भाव या भावेश की निर्बलता भाव के फल को नष्ट कर देती है।[2]

६—भाव से चतुर्थ, अष्टम एवं द्वादश में या त्रिकोण स्थान में पापग्रहों का होना—

फलित शास्त्र के आचार्यों का मत है कि जिस भाव से ४ थे, ८ वें एवं १२ वें स्थान में अथवा ५ वें एवं ९वें स्थान में पापग्रह हों उस भाव की हानि होती है।[3] तथा जिस भाव से दूसरे, १२वें एवं ७वें स्थान में शुभ ग्रह हों अथवा ४ थे एवं १० वें स्थान में शुभ ग्रह हों उस भाव की वृद्धि होती है।[4] इसलिए जिस भाव से चतुर्थ, अष्टम एवं द्वादश स्थान में पापग्रह हों या उससे पंचम एवं नवम स्थान में पापग्रह हो तो वह भाव शरीर के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करता है उसमें रोग या विकार पैदा हो जाता है।

७—रोगकारक ग्रहों से सम्बन्ध—

जैसा कि पहिले बतलाया जा चुका है कि लग्नादि भाव में मेषादि राशियाँ मनुष्य के शरीर के सिर से लेकर पैर तक विविध अंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं।[5] यदि किसी

१. प्रश्नमार्ग: पूर्वोद्धृत, अ० १४, श्लो० ४४।
२. तत्रैव, श्लो० २८ एवं ३०।
३. प्रश्नमार्ग: पूर्वोद्धृत, अ० १४ श्लो० ३०।
४. तत्रैव, श्लो० २७।
५. देखिए अध्याय १ पृ०।

राशि या भाव का पूर्वोक्त रोगकारक ग्रह से सम्बन्ध हो तो वह राशि या भाव शरीर के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करता है, उस अंग में विकार या रोग हो जाता है।

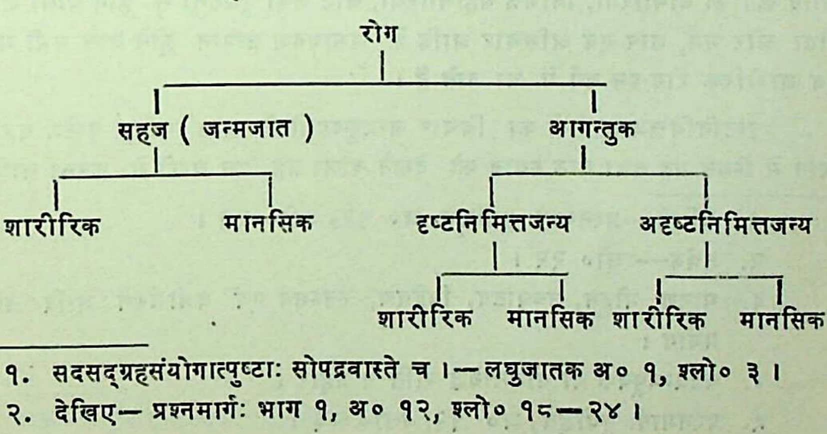
८—शुभ ग्रहों का प्रभाव न होना—

जिन राशि या भाव पर शुभग्रहों का प्रभाव (दृष्टि या युति) होता है, उस राशि से सम्बन्धित अंग पुष्ट एवं स्वस्थ रहता है।[1] इसलिए जिस राशि या भाव पर शुभग्रहों का प्रभाव नहीं होता, उससे सम्बन्धित अंग में ही रोग उत्पन्न होने की सम्भावना होती है।

रोगों का वर्गीकरण

ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थों में रोगों का गम्भीरतापूर्वक विचार करने से पहिले उनके भेदों का विचार किया गया है। इस शास्त्र[2] में रोगों को दो प्रकार का माना गया है—१. सहज एवं २. आगन्तुक। जन्मजात रोगों को सहज रोग कहते हैं तथा जन्म के बाद होने वाले रोगों को आगन्तुक रोग कहते हैं। सहज रोगों के दो भेद होते हैं--१--शारीरिक तथा २--मानसिक। लूलापन, लंगड़ापन, कुबड़ापन, अन्धत्व, मूकत्व, बधिरत्व, नपुंसकत्व, हीनांग एवं अधिकांग आदि कुछ शारीरिक रोग जन्मजात होते हैं। जड़ता, उन्माद एवं पागलपन आदि कुछ मानसिक रोग भी जन्मजात होते हैं। इस प्रकार के समस्त जन्मजात रोगों को सहज रोग कहा जाता है।

आगन्तुक रोग भी दो प्रकार के होते हैं--१—दृष्टनिमित्तजन्य एवं २—अदृष्टनिमित्तजन्य। शाप, अभिचार, घात, संसर्ग, महामारी एवं दुर्घटना आदि प्रत्यक्ष घटनाओं द्वारा उत्पन्न होने वाले रोगों को दृष्टनिमित्तजन्य रोग कहते हैं तथा बाधकग्रह योगों के द्वारा उत्पन्न रोग अदृष्टनिमित्ता जन्य रोग कहलाते हैं। इन रोगों का कारण पूर्वाजित कर्म माना गया है। उक्त दृष्टनिमित्ताजन्य एवं अदृष्टनिमित्तजन्य रोगों के भी शारीरिक एवं मानसिक--ये दो भेद माने गये हैं :—



१. सदसद्ग्रहसंयोगात्पुष्टाः सोपद्रवास्ते च।—लघुजातक अ० १, श्लो० ३।

२. देखिए—प्रश्नमार्गः भाग १, अ० १२, श्लो० १८—२४।

सहज (जन्मजात) रोग—

जन्मजात रोगों का कारण जातक का पूर्वजन्मकृत कर्म एवं माता-पिता द्वारा किया गया कर्म माना गया है। अतः ज्योतिष शास्त्र में जन्मजात रोगों का विचार गर्भाधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली से किया जाता है। उक्त कुण्डलियों में अष्टम स्थान, अष्टमेश ग्रह, अष्टम स्थान में स्थित ग्रह, अष्टम स्थान को देखने वाला ग्रह एवं अन्य योगों के द्वारा जन्मजात शारीरिक रोगों का विचार होता है।[1] जिन योगों में अष्टमेश एवं अष्टम स्थान के साथ स्पष्ट-सम्बन्ध दिखलाई दे, उन योगों के प्रभाववश होने वाले शारीरिक रोग असाध्य होते हैं तथा जिन योगों में अष्टमेश या अष्टम स्थान के साथ कोई सम्बन्ध न हो वे शारीरिक रोग साध्य माने गये हैं। ऐसे रोग चिकित्सा द्वारा ठीक हो जाते हैं किन्तु जन्मजात रोगों में हीनांग योग द्वारा उत्पन्न होने वाले रोग असाध्य ही माने गये हैं। अतः हीनांग योग द्वारा उत्पन्न लूलापन, लँगड़ापन, अन्धत्व, व्रणत्व, मूकत्व एवं वधिरत्व आदि रोगों के साध्यासाध्यत्व का उक्त रीति से विचार नहीं करना चाहिए।

जन्मजात मानसिक रोगों का विचार उक्त कुण्डलियों में अष्टमेश एवं चतुर्थेश की युति एवं दृष्टि के आधार[2] पर उन रोगों के योगों के द्वारा करना चाहिए। मानसिक रोगों के जिन योगों में अष्टमेश एवं चतुर्थेश की युति या दृष्टि प्रत्यक्षतः दिखलायी दे वे मानसिक रोग असाध्य होते हैं तथा जिन मानसिक रोगों के योगों में अष्टमेश एवं चतुर्थेश की दृष्टि या युति न हो वे मानसिक रोग जन्मजात होने पर भी चिकित्सा द्वारा साध्य होते हैं।

दृष्टनिमित्तजन्य रोग—

जिन रोगों का कारण प्रत्यक्ष रूप से जाना जा सकता है, उन रोगों को दृष्टनिमित्तजन्यरोग कहते हैं। भय, शाप, अभिचार,[3] घात,[4] संसर्ग, महामारी एवं दुर्घटना जैसे प्रत्यक्ष कारणों से उत्पन्न रोग दृष्टनिमित्तजन्यरोग कहलाते हैं। इस प्रकार हैजा, चेचक आदि छूत की बीमारियाँ, विभिन्न महामारियाँ, चोट तथा दुर्घटना से होने वाली शारीरिक पीड़ा और भय, शाप एवं अभिचार आदि के प्रभाववश उत्पन्न होने वाले सभी मानसिक एवं शारीरिक रोग इस वर्ग में आ जाते हैं।

दृष्टनिमित्तजन्य रोगों का विचार जन्मकुण्डली के षष्ठ स्थान, षष्ठेश ग्रह, षष्ठस्थान में स्थित ग्रह तथा षष्ठ स्थान को देखने वाला ग्रह इन चारों से करना चाहिये।[5]

१. देखिये—प्रश्नमार्गः पूर्वोद्धृत, अ० १२, श्लो० २१।
२. तत्रैव—श्लो० २२।
३. मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, स्तम्भन एवं वशीकरण आदि तांत्रिक प्रयोग।
४. षडयन्त्रपूर्वक या योजनाबद्ध रीति से प्रहार।
५. प्रश्नमार्गः पूर्वोद्धृत, अ० १२, श्लो० २३।

कुण्डली में षष्ठ स्थान रोग एवं शत्रु का प्रतिनिधित्व करता है। जब कोई व्यक्ति किसी कारणवश किसी के विरुद्ध हो जाता है और यह विरोध उग्र रूप धारण कर लेता है, तभी शाप, अभिचार एवं घात का आश्रय लिया जाता है। अतः भय, शाप, अभिचार एवं घात के मूल में उग्रतम विरोध करने वाला व्यक्ति ही कारण है, जिसे प्रमुख शत्रु कहा जा सकता है। इसलिए षष्ठ स्थान एवं षष्ठेश आदि से दृष्टनिमित्तजन्य रोगों का विचार किया जाता है।

अदृष्टनिमित्तजन्य रोग—

जिन रोगों का कारण प्रत्यक्ष रूप से दिखलाई नहीं देता, उन रोगों को अदृष्ट-निमित्तजन्य रोग कहते हैं। ज्वर, अतिसार आदि समस्त रोग इस वर्ग में आते हैं। इस प्रकार के रोगों के कारण का विचार करते हुए ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने कहा है कि अदृष्टनिमित्तजन्य रोगों का मुख्य कारण बाधक ग्रहों का प्रभाव है।[1] सूर्यादि ग्रह मनुष्य के शरीर के समस्त अंग, धातु, वात पित्त एवं कफ आदि दोष, आन्तरिक संरचना एवं संचालन प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुण्डली में जो ग्रह बाधक होता है, वह शरीर के जिस अंग, धातु या दोष आदि का प्रतिनिधित्व करता है, उसमें बाधा या विकार की सूचना देता है और इस प्रकार के विकारों से उक्त रोगों की उत्पत्ति होती है। अतः अदृष्टनिमित्तजन्य शारीरिक एवं मानसिक रोगों की उत्पत्ति का मुख्य कारण बाधक ग्रहों को माना गया है।

———

१. प्रश्नमार्गः पूर्वोद्धृत, अ० १२, श्लो० २४।

अध्याय—३

सहज (जन्मजात) रोग

फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में लूलापन, लँगड़ापन, कुबड़ापन, अन्धत्व, काणत्व, मूकत्व, बधिरत्व, नपुंसकत्व एवं जड़ता आदि अनेक जन्मजात रोगों का विचार किया गया है। इन जन्मजात रोगों का कारण जातक का पूर्वाजित कर्म तथा उसके माता-पिता द्वारा किया गया कर्म माना गया है। अतः इन रोगों का विचार जन्मकुण्डली तथा गर्भाधान कुण्डली से किया जाता है।

लूलापन (बाहु-हीनता) एवं उसके ग्रह योग—

हाथ में हथेली के न होने या कट जाने को लूलापन कहते हैं। जिस व्यक्ति की जन्मकुण्डली में निम्नलिखित योगों[1] में से कोई एक योग हो, वह लूला होता है—

(क) शनि, मंगल, बुध एवं गुरु—ये चारों साथ हों, चतुर्थ भाव में शुक्र हो तथा दिन में जन्म हो।

(ख) शनि एवं मंगल-दोनों षष्ठ भाव में राहु के भाग्यांश हों।

(ग) षष्ठ स्थान में शत्रु राशि में शनि हो तथा उसके साथ शुक्र हो।

जातकालंकार[2] में हथेली या हाथ में विकार प्रकट करने वाला एक योग बतलाया गया है, जो इस प्रकार है—

(क) सूर्य, चन्द्र एवं शनि—ये तीनों षष्ठ या अष्टम स्थान में हों।

लँगड़ापन (पंगुत्व) एवं उसके ग्रह योग—

पैर का न होना या कट जाना लँगड़ापन कहलाता है। अनेक बार ऐसे बच्चे का जन्म होता है, जिसका एक पैर चलने-फिरने के लायक न हो। ऐसे बच्चों को पंगु कहते हैं। जातक ग्रंथों[3] में कहा गया है कि यदि गर्भाधान कुंडली में मीन लग्न हो और उस पर चन्द्रमा, मंगल एवं शनैश्चर की दृष्टि हो तो गर्भस्थ शिशु लँगड़ा होता है।

---

१. जातकत्वः देवल, महादेव शर्मा, भुवनेश्वरी यन्त्रालय, रतलाम, सन् १९१५, प्रथम विवेक, सूत्र–३२७–२९।

२. अ० ३, श्लो० २७।

३. देखिए—(क) वृहज्जातक अ० ४, श्लो० १८।

(ख) सारावली अ० ८, श्लो० ६०।

(ग) जातक पारिजातः अ० ६, श्लो० ४९।

जन्मकुंडली में निम्नलिखित योगों[3] में से कोई एक योग होने पर जातक पंगु होता है—

(क) मीन, वृश्चिक, मेष, कर्क या मकर राशि में पापग्रहों के साथ चन्द्रमा एवं शनि हों।

(ख) पंचम या नवम भाव में पापग्रहों के साथ चन्द्रमा एवं शनि हों।

(ग) शनि एवं षष्ठेश—ये दोनों १२ वें भाव में हों और इन पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।

(घ) षष्ठ स्थान में सूर्य, मंगल एवं शनि हों।

ज्योतिष शास्त्र में मीन राशि, १२ वाँ भाव तथा शनि पैर का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतः यदि इन पर पापग्रहों का प्रभाव हो या इनका रोग (षष्ठ) भाव से सम्बन्ध हो तो ये पैर में विकार की सूचना देते हैं। परिणामतः मनुष्य चलने-फिरने के लायक नहीं होता।

कुबड़ापन एवं उसके ग्रह योग

कुबड़े बच्चे का जन्म होने का एक बहुचर्चित योग इस प्रकार है। इस योग का विचार आधान कुण्डली से किया जाता है। यदि आधान कुण्डली में कर्क लग्न में चन्द्रमा हो और उस पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो तो गर्भस्थ बालक कुबड़ा होता है।[1]

जन्मकुंडली से कुबड़ेपन का निर्णय निम्नलिखित योग से किया जाता है। यदि कुंडली में निम्नलिखित योग हों, तो बालक कुबड़ा होता है—यदि लग्नेश मेष या वृश्चिक राशि में चतुर्थभाव में वृश्चिक के नवांश में हो, तो कुबड़े बालक का जन्म होता है।[2]

हीनाङ्ग योग

शरीर में किसी एक अंग का न होना अंगहीनता कहलाती है। जातक ग्रंथों में अङ्गहीनता का विचार करने के लिए अनेक योग बतलाये गये हैं। इन योगों में से कुछ योगों का विचार आधान कुण्डली से तथा कुछ योगों का विचार आधान कुण्डली तथा जन्म कुण्डली दोनों से किया जाता है। यदि आधान कुंडली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो तो अङ्गहीन बालक का जन्म होता है—

(क) लग्न में मंगल का द्रेष्काण हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो गर्भस्थ शिशु के सिर नहीं होता।

---

१ देखिए—जातकतत्वः प्रथम विवेक सूत्र ३४०-४६।

२. देखिए—(क) बृहज्जातक : पूर्वोद्धृत, अ० ४ श्लो० १८।
(ख) सारावली : पूर्वोद्धृत, अ० ८ श्लो० ५६।
(ग) जातकपारिजात : पूर्वोद्धृत, अ० ६ श्लो० ४६।

३. जातकतत्व : पूर्वोद्धृत, प्रथम विवेक-सूत्र ३३१।

(ख) पंचम भाव में मंगल का द्रेष्काण हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो गर्भस्थ बालक के हाथ नहीं होते।

(ग) नवम भाव में मंगल का द्रेष्काण हो तथा उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो गर्भस्थ शिशु के पैर नहीं होता है।[१]

घ) लग्न से दशम स्थान में चन्द्रमा, सप्तम में मंगल तथा द्वितीय स्थान में सूर्य हो तो गर्भस्थ बालक अङ्गहीन होता है।[२]

(ङ) सप्तम स्थान में शनैश्चर हो, वह राहु या मंगल के साथ हो तथा निर्बल हो तो अंगहीन बालक का जन्म होता है।[३]

(च) आधान लग्न में बुध या शनि हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो, तो हाथ पैर आदि रहित पिण्डाकार बालक का जन्म होता है।[४]

यदि जन्मकुण्डली में निम्नलिखित योगों[५] में से कोई एक योग हो तो अंगहीन बालक का जन्म होता है—

(क) पंचम स्थान में मंगल हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

(ख) नवम स्थान में मंगल हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

जन्मान्ध योग

जो व्यक्ति जन्म से ही अन्धा होता है, उसे जन्मान्ध कहते है। जातक ग्रन्थों में जन्मान्ध के सूचक अनेक योग बतलाये गये हैं। उनमें से कुछ योगों का विचार आधान कुण्डली के द्वारा तथा कुछ का जन्मकुंडली के द्वारा किया जाता है। आधान कुंडली में निम्नलिखित योगों[६] मे से कोई एक योग हो तो गर्भस्थ शिशु जन्मान्ध होता है –

(क) सिंह लग्न में सूर्य एवं चन्द्रमा हो तथा उन पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो।

(ख) व्यय भाव में सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों हों।

(ग) एक साथ स्थित सूर्य एवं चन्द्रमा से द्वितीयेश मंगल ८ वें स्थान में हो तथा छठे या १२वें भाव में हो।

---

१. उक्त तीनों योगों के लिए देखिए –(क) वृहज्जातक, अ० ४ श्लो० १९।
(ख) सारावली, अ० ८ श्लो० ६।

२. जातक पारिजात: अ० ६ श्लो० ४७।

३. तत्रैव, श्लो० ४६।

४. सर्वार्थ चिन्तामणि: अ० २ श्लो० ४१।

५. जातकतत्व: प्रथम विवेक-सूत्र ४४।

६. देखिये—(क) वृहज्जातक: अ० ४ श्लो० २०।
(ख) सारावली: अ० ८ श्लो ५३।
(ग) जातक पारिजात: अ० ६ श्लो० ५२-५४ एवं ५७।

जन्मकुंडली में निम्नलिखित-योगों[1] में से कोई एक योग हो तो इस योग में उत्पन्न बालक जन्मान्ध होता है—

(क) सूर्य, शुक्र एवं लग्नेश के साथ द्वितीयेश ६ ठे, ८ वें या १२ वें भाव में हों।

(ख) लग्नेश में ग्रहणकालीन सूर्य हो तथा मंगल एवं शनि त्रिकोण में हों।

(ग) सूर्य एवं शुक्र के साथ लग्नेश त्रिक स्थान में हो।

(घ) लग्न से दूसरे स्थान में मंगल, ६ ठे चन्द्रमा, ८ वें सूर्य तथा १२ वें स्थान में शनि हो।

काणत्व–योग

कुछ बच्चे ऐसे होते हैं, जो जन्म से काने होते हैं। जन्म से काना होने के योगों का विचार भी आधान कुण्डली एवं जन्मकुंडली से किया जाता है। आधान कुण्डली में निम्नलिखित योगों [2] में कोई एक योग हो तो गर्भस्थ शिशु एक आँख से काना होता है—

(क) यदि व्यय भाव में क्षीण चन्द्रमा हो तो बायें नेत्र से तथा उस भाव में सूर्य हो तो दाहिने नेत्र से काना होता है।

(ख) षष्ठ भाव में पाप ग्रह हो तो बायी आँख से तथा अष्टम भाव में पाप ग्रह हो तो दाहिनी आँख से काना होता है।

जन्म कुण्डली में निम्नलिखित योगों[3] में से कोई योग हो तो काने बालक का जन्म होता है।

(क) व्यय भाव में मंगल हो तो बायीं आँख से तथा वहाँ शनिश्चर हो तो दाहिनी आँख से काना होता है।

(ख) सिंह राशि में सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो।

(ग) कर्क राशि में सप्तम स्थान में सूर्य हो तथा उस पर मंगल की दृष्टि हो।

गूंगापन एवं उसके योग—

जन्म से ही गूंगा होने के योगों का विचार आधान कुंडली द्वारा किया जाता है। यदि आधान कुंडली में वृष राशि में चन्द्रमा हो तथा सब पापग्रह भसन्धि में स्थित हों तो

---

१. देखिए –(क) सर्वार्थ चिन्तामणिः अ० ३ श्लो० ३।
(ख) जातकतत्वः प्रथम विवेक सू० २४२-४४।
(ग) जातकपारिजातः अ० ६ श्लो० ५८।

२. देखिए—(क) वृहज्जातकः अ० ४ श्लो० २०।
(ख) सारावलीः अ० ८ श्लो० ५५।
(ग) जातक पारिजातः अ० ६ श्लो० ५२, ५४।

३ देखिए –(क) दैवज्ञाभरणः पूर्वोद्धृत, द्वितीय विवेक-श्लो०१९।
(ख) जातकतत्व-प्रथमविवेक-सू० २७५-७६।

गर्भस्थ शिशु गूंगा होता है[१] इस योग में चन्द्रमा पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो बालक जन्म से ४ या ५ साल में बोलने लगता है।

जन्मकुण्डली में निम्नलिखित योगों[२] में से कोई एक योग हो तो गूंगे बालक का जन्म होता है—

(क) कर्क, वृश्चिक या मीन राशि में स्थित बुध को अमावस्या का चन्द्रमा देखता हो।

(ख) षष्ठेश एवं बुध—ये दोनों लग्न में हों।

(ग) षष्ठेश एवं गुरु—ये दोनों लग्न में हों।

(घ) धनेश एवं गुरु—ये दोनों त्रिक स्थान में हों।

बहिरापन एवं उसके योग

कान के रोगों में बहिरापन मुख्य रोग है। यह जन्मजात भी हो सकता है और बाद में भी। जन्मजात बहिरापन का विचार जन्मकुण्डली के द्वारा किया जाता है। जन्मकुण्डली में निम्नलिखित योगों[३] में से कोई एक योग हो तो बहिरे बालक का जन्म होता है—

(क) पाप ग्रहों के साथ चन्द्रमा लग्न, तृतीय या एकादश भाव में हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

(ख) पंचम एवं नवम भाव में पापग्रह हों और उन पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।

(ग) शनि से चतुर्थ में बुध तथा षष्ठेश त्रिक स्थान में हो।

(घ) रात्रि में जन्म हो, बुध षष्ठ भाव में तथा शुक्र दशम भाव में हो।

(ङ) पूर्णचन्द्र एवं शुक्र—ये दोनों अपने शत्रु ग्रहों के साथ हों।

(च) षष्ठेश एवं बुध पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।

(छ) षष्ठेश त्रिक स्थानों में हो तथा उन पर शनि की दृष्टि हो।

नपुंसकता एवं उसके योग

सन्तानोत्पादन की शक्ति के अभाव को नपुंसकता कहते हैं। इस शक्ति से हीन पुरुष नपुंसक तथा स्त्री वन्ध्या कहलाती है। स्त्रियों के वन्ध्यात्व सम्बन्धी योगों का विचार स्त्री रोगों के साथ अन्यत्र किया जायेगा। यहाँ हम पुरुषों की नपुंसकता के सूचक ग्रहयोगों का विचार करना चाहते हैं।

---

१. देखिए—(क) बृहज्जातक: अ० ४ श्लो० १७।
(ख) सारावली: अ० ८ श्लो० ५६।

२. जातकतत्व: प्रथम विवेक सू० २६३-६६।

३. देखिए—(क) सारावली: अ० १० श्लो० ६८-६६।

नपुंसकता भी दो प्रकार की होती है—१—जन्मजात एवं २—बाद में होने वाली। यहाँ हम केवल जन्मजात नपुंसकता पर विचार करेंगे, जातक ग्रन्थों में जन्मजात नपुंसकता सूचक निम्नलिखित छः योग बतलाये गये हैं, जिन्हें 'षट्क्लीव योग' कहते हैं। इन योगों का विचार आधान-कुण्डली एवं जन्मकुण्डली दोनों से किया जाता है। जिस व्यक्ति के गर्भाधान या जन्म के समय कुण्डली में निम्नलिखित योगों[1] में से कोई एक योग हो वह जन्मजात नपुंसक होता है—

(क) विषम राशि में स्थित सूर्य एवं चन्द्रमा एक दूसरे को देखते हों।
(ख) विषम राशि में स्थित शनि एवं बुध एक दूसरे को देखते हों।
(ग) विषम राशिगत मंगल सम राशिगत सूर्य को देखता हो।
(घ विषम राशिगत मंगल विषम राशिगत लग्न एवं चन्द्रमा को देखता हो।
(ङ) विषमराशि में बुध तथा समराशि में चन्द्रमा हो और दोनों को मंगल देखता हो।
(च) विषम राशि तथा विषम राशि के नवांश में लग्न, चन्द्रमा एवं बुध हों तथा उन पर शुक्र एवं शनि की दृष्टि हो।

उक्त छः योगों के अलावा निम्नलिखित योगों[2] में गर्भाधान होने पर नपुंसक व्यक्ति का जन्म होता है—

(क) मिथुन या कन्या राशि में लग्न में षष्ठेश हो, लग्नेश भी बुध की राशि में हो तथा इनका शनि एवं मंगल से योग हो।

(ख) विषम राशि में स्थित चन्द्रमा एवं शनि एक दूसरे को देखते हों।

जड़ता एवं उसके योग

जड़ता पागलपन का पूर्वरूप है। इस स्थिति में मनुष्य को अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं होता। वह मूर्ख या पागलों की हरकत करता है। जन्मजात मानसिक रोगों में यह एकमात्र तथा प्रमुखतम रोग है। यह अकेला ही आगे चलकर अनेक रूप-रूपान्तरों में परिवर्तित होकर अनेक मानसिक-रोगों को उत्पन्न करता है।

अन्य जन्मजात रोगों की भाँति जड़ता का विचार भी आधान कुण्डली दोनों से किया जाता है। फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में जन्मजात-जड़ता का सूचक यह योग[3] बहु-

---

१. देखिए—(क) बृहज्जातकः पूर्वोद्धृत, अ० ४ श्लो० १३।
(ख) सारावलीः पूर्वोद्धृत, अ० ८ श्लो० १८-२०।
(ग) जातक पारिजातः पूर्वोद्धृत, अ० ३ श्लो० २३।

२. देखिए—(क) सर्वार्थ चिन्तामणिः अ० २ श्लो० ५४।
(ख) जातक पारिजातः अ० ३ श्लो० ३१ एवं ३३।

३. देखिए—(क) बृहज्जातकः अ० ४ श्लो० १८।
(ख) जातकपारिजातः अ० ६ श्लो० ४६।

चर्चित है- यदि आधान कुण्डली में पापग्रहों के साथ चन्द्रमा भसन्धि में बैठा हो तथा उस पर किसी शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो, तो गर्भस्थ शिशु जड़ होता है। ज्योतिष शास्त्र में चन्द्रमा मन का प्रतिनिधि ग्रह माना गया है। अतः पापप्रभाव ग्रस्त होना तथा भसन्धि जैसे नेष्ट स्थान में बैठना मानसिक अस्वस्थता का द्योतक है।

जन्मकुण्डली में निम्नलिखित योगों[1] में से कोई एक योग हो तो मनुष्य जन्मजात जड़ होता है—

(क) लग्न में सूर्य, १२ वें भाव में चन्द्रमा तथा त्रिकोण स्थान में मंगल हो।

(ख) लग्न में सूर्य त्रिकोण में चन्द्रमा तथा तीसरे स्थान में गुरु हो।

(ग) केन्द्र स्थान में शनि एवं चन्द्रमा हो तथा इन पर पापग्रहों की दृष्टि न हो।

(घ) केन्द्र स्थान में चन्द्रमा, शनि एवं गुलिक हों।

(च) द्वितीय स्थान में सूर्य एवं गुलिक हों तथा इनको दो पापग्रह देखते हों या तृतीयेश शनि के साथ हो।

(छ) पंचम भाव में शनि हो, लग्नेश पर शनि की दृष्टि हो तथा पंचमेश पापग्रह के साथ हो।

जन्मजात रोगों का परिहार

जन्मजात रोगों के उक्त योगों के बारे में वराहमिहिर, कल्याण वर्मा एवं वैद्यनाथ प्रभृति आचार्यों का मत है कि यदि उक्त योगों में योगकारक ग्रहों पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो इन योगों के होने पर रोग चिकित्सा करने से ठीक हो जाते हैं।[2] अतः इन जन्मजात रोगों के योगों पर शुभ एवं पाप ग्रहों की दृष्टि के आधार पर उनके साध्यत्व एवं आसाध्यत्व का विचार करना चाहिए।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि किसी भी जन्मजात रोग के योग में योग-कारक ग्रह पर शुभग्रह की दृष्टि हो तो नवजात शिशु के शरीर में योगज-रोग के लक्षण दिखलाई देते हैं। किन्तु कालान्तर में वह रोग ठीक हो जाता है। तथा उस रोग का उस व्यक्ति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

———

१. देखिए—(क) दैवज्ञाभरणः त्रयोदशप्रकाश श्लो० ६-८।
(ख जातकतत्व-पंचम विवेक सू० २२-२३ एवं २६।

२. देखिए—(क) वृहज्जातक. अ० ४ श्लो० २०।
(ख) सारावली. अ० ८ श्लो० ६०।
(ग. जातकपारिजात अ० ६ श्लो० ५२।

अध्याय--४

दृष्टिनिमित्तजन्य (आकस्मिक) रोग

चोट, दुर्घटना, संसर्ग, महामारी, भय, शाप एवं अभिचार जैसे प्रत्यक्ष कारणों से उत्पन्न रोग दृष्टिनिमित्तजन्य रोग कहलाते हैं। इस प्रकार के रोगों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये अकस्मात् उत्पन्न होते हैं। अतः इन्हें आकस्मिक रोग कहा जा सकता है।

फलित ज्योतिष में इन आकस्मिक व्याधियों का प्रमुख प्रतिनिधि ग्रह मंगल माना गया है। तथा राहु, केतु एवं अन्य पापग्रह उसके सहयोगी माने गये हैं। ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों का मत है कि अग्नि, विष एवं शस्त्र से पीड़ा, दुर्घटना, विस्फोट, युद्ध, ग्रहण राक्षस एवं घोर ग्रहों से भय, शत्रुता, विनाशकारी संकल्प एवं मारण आदि अभिचारों का प्रतिनिधित्व मंगल करता है।[1]

चोट, दुर्घटना, महामारी, भय, शाप एवं अभिचार में प्रवृत्ति या व्यक्ति का उग्रतम विरोध मुख्य कारण है। जब किसी व्यक्ति का किसी कारणवश किसी से विरोध हो जाता है तथा वह विरोध उग्र रूप धारण कर लेता है, तभी भय, शाप, अभिचार या घात (चोट) का आश्रय लिया जाता है। इसी प्रकार जब प्रकृति उग्र हो जाता है तब दुर्घटना एवं महामारी होती है। जन्म कुण्डली में इस उग्र विरोध तथा विरोध करने वाले शत्रु का प्रतिनिधि भाव षष्ठ भाव है। इसलिए इन दृष्टिनिमित्तजन्य या आकस्मिक रोगों का विचार षष्ठभाव, षष्ठेश, षष्ठस्थान में स्थित तथा षष्ठ स्थान को देखनेवाले ग्रह से कहना चाहिए।[2]

दुर्घटना, चोट एवं घाव (व्रण)—

वह आकस्मिक घटना, जिससे शरीर या उसके किसी अंग को आघात या हानि पहुँचती है, दुर्घटना कहलाती है। दुर्घटना के कारणः पत्थर, हथियार या लकड़ी आदि के प्रहार से, ऊपर से गिर जाने या किसी भारी चीज के शरीर पर गिर जाने आदि से शरीर को चोट लगती है।

---

१. देखिए—(क) फलदीपिका: अ० १३ श्लो० ४।
(ख) जातकपारिजात: अ० २ श्लो० ७७।
(ग) प्रश्नमार्ग: अ० १२ श्लो० ६६।
(घ) गदावली: अ० १ श्लो० ८।

२. "शापाभिचारघातादिजाताः दृष्टनिमित्तजाः।
ज्ञेयाः षष्ठतदीशाभ्यां तद्द्रष्टा तद्गतेन वा ॥
—प्रश्नमार्गः पूर्वोद्धृत, अ० १२ श्लो० २३।

किसी प्रकार की चोट लगने, आग से जल जाने, जानवरों के काट लेने या फोड़ा-फुंसी आदि के भयंकर रूप धारण कर लेने पर शरीर में घाव हो जाते हैं। इस प्रकार दुर्घटना एवं चोट से शरीर में होने वाले घाव का विचार निम्नलिखित योगों से किया जाता है। जिसकी कुण्डली में निम्नलिखित योगों[1] में से कोई एक हो वह दुर्घटना या चोट से घायल हो जाता है—

(क) वृश्चिक राशि में मंगल हो तथा उस पर गुरु या शुक्र की दृष्टि न हो चोट से शरीर घायल हो जाता है।

(ख) केतु एवं मंगल सप्तम स्थान में हो तो शरीर में घाव होते हैं।

(ग) लग्नेश एवं मंगल त्रिकस्थान में हों तो शस्त्र से चोट लगती है।

(घ) शनि एवं मंगल-ये दोनों षष्ठ स्थान या व्यय स्थान में हो तो दुर्घटना में चोट लगती है।

(ङ) लग्नेश एवं मंगल पंचम स्थान में हो तथा वे पापग्रहों से दृष्ट-युत हों तो शस्त्र से शिर में चोट लगती है।

(च) लग्न में मंगल तथा सप्तम में गुरु या शुक्र हो तो शिर में घाव होता है।

(छ) पाप ग्रहों के साथ षष्ठेश लग्न या त्रिक स्थान में हो।

(ज) सूर्य के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो तो शिर में चोट लगती है।

(झ) चन्द्रमा के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो तो मुख घायल होता है।

(ञ) बुध के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो तो हृदय एवं वक्षस्थल पर घाव होता है।

(ट) गुरु के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो तो नाभि के नीचे घाव होता है।

(ठ) शुक्र के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो तो आँख के नीचे घाव होता है।

(ड) शनि के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो तो पैर घायल होते हैं।

(ढ) राहु या केतु के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हों तो पूरे शरीर या होंठ पर घाव होते हैं।

(ण) व्यय भाव में चन्द्रमा एवं गुरु हों तथा तीसरे, ६ ठे या ११ वें स्थान में बुध हो तो गुदा में घाव होते हैं।

किस अंग में चोट लगेगी ?

शरीर के कौन से अंग में चोट लगेगी या घाव होगा? इस बात का विचार जातक-ग्रंथों में विस्तार पूर्वक किया गया है। जन्म कुण्डली में षष्ठ स्थान में पापग्रह हों तथा उस पर किसी शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो शरीर में निश्चित रूप से चोट लगने या

१. जातकतत्व: षष्ठ विवेक—सू० २०-३८।

घाव होने का योग बनता है । इस योग में षष्ठ स्थान में स्थित राशि के अनुसार घायल होने वाले अंग की जानकारी की जा सकती है[1] यथा —

(१) षष्ठ स्थान में	मेष राशि में पापग्रह हो तो		सिर में ।
(२) ,,	वृष	,,	मुख में ।
(३) ,,	मिथुन	,,	हाथ में ।
(४) ,,	कर्क	,,	वक्षस्थल पर ।
(५) ,,	सिंह	,,	पेट में ।
(६) ,,	कन्या	,,	कमर में ।
(७) ,,	तुला	,,	बस्ति में ।
(८) ,,	वृश्चिक	,,	गुप्तांग में ।
(९) ,,	धनु	,,	ऊरु में ।
(१०) ,,	मकर	,,	जानु में ।
(११) ,,	कुम्भ	,,	जंघाओं में ।
(१२) ,,	मीन	,,	पैरों में ।

दैवज्ञाभरण में चोट ग्रस्त या घायल होने वाले अंग का विचार ग्रहों के आधार पर किया गया है । जिस व्यक्ति की कुंडली में षष्ठेश किसी ग्रह के साथ षष्ठ या अष्टम भाव में हो वह अवश्य ही चोटग्रस्त होता है । यहाँ षष्ठेश के साथ जो ग्रह हो उसके अनुसार चोट-ग्रस्त अंग की जानकारी की जा सकती है,[2] यथा ·

(१) यदि षष्ठेश	सूर्य के साथ षष्ठ या अष्टम में हो तो		सिर में ।
(२) ,,	चन्द्रमा	,,	कान, नाक; गले में,।
(३) ,,	मंगल	,,	गुप्तांग में ।
(४) ,,	बुध	,,	कन्धों में ।
(५) ,,	गुरु	,,	बगल में ।
(६) ,,	शुक्र	,,	आँखों में ।
(७) ,,	शनि	,,	पैरों में ।
(८) ,,	राहु	,,	तलुवे में ।
(९) ,,	केतु	,,	पसली में ।

जातक ग्रन्थों में ग्रहों के आधार पर घायल-अंग की जानकारी की एक अन्य रीति यह है—यदि षष्ठेश किसी पाप ग्रह के साथ लग्न या अष्टम स्थान में हो तो मनुष्य के

---

१. देखिए—(क) बृहज्जातक पूर्वोद्धृत, अ० ५ श्लो० २६ ।
(ख) जातक परिजात: पूर्वोद्धृत, अ० ३ श्लो० ७६ ।
२. देवज्ञामरण : पूर्वोद्धृत, चतुर्दश प्रकाश श्लो० १४-१५ ।

शरीर में फोड़ा, फुन्सी या चोट लगने से घाव हो जाता है। इस योग में षष्ठेश के साथ सूर्य आदि ग्रह होने पर उसके शरीर के निम्नलिखित अंगों में घाव होते हैं,[1] यथा—

(१) षष्ठेश सूर्य के साथ लग्न या अष्टम में हो तो सिर में।				
(२)	,,	चन्द्रमा	,,	कान, नाक, गले में।
(३)	,,	मंगल	,,	गुदा में।
(४)	,,	बुध	,,	हाथ में।
(५)	,,	गुरु	,,	बगल में।
(६)	,,	शुक्र	,,	नेत्र में।
(७)	,,	शनि	,,	पैर में।
(८)	,,	राहु	,,	पैर के तुलुवे में।
(९)	,,	केतु	,,	पसली में।

उक्त दोनों रीतियों में १—षष्ठेश का पाप ग्रह के साथ होना, २—अष्टम स्थान में बैठना तथा, ३—सूर्य ग्रहों के अनुसार सिर आदि अंगों में चोट लगना—ये तीनों बातें समान हैं। इन दोनों रीतियों में केवल इतना ही भेद है कि प्रथम रीति षष्ठ स्थान में द्वितीय रीति में लग्न में पाप ग्रह के साथ षष्ठेश होने पर चोट लगने की बात कही गयी है। जातक ग्रन्थों में वर्णित घाव या व्रण के योगों में षष्ठेश का लग्न एवं षष्ठ दोनों स्थानों में बैठना व्रणदायक कहा गया है।[2] अतः षष्ठेश के पापग्रह के साथ लग्न, षष्ठ या अष्टम स्थान में होने पर सूर्य आदि ग्रहों के अनुसार व्रणयुक्त अंग की जानकारी कर लेनी चाहिए।

चोट किससे लगेगी ?

चोट किससे लगेगी ? इस प्रश्न का निश्चय पूर्वोक्त योगकारक ग्रहों में जो बलवान् पाप ग्रह हो उससे करना चाहिए। सामान्यतया सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध एवं शनि—ये ५ ग्रह पाप ग्रह होते हैं यदि चोटदायक ग्रहों में सूर्य बलवान् हो तो काठ या पशु से, चन्द्रमा बलवान् हो तो पशु के सिर या जलचर जन्तु से, मंगल बलवान् हो तो अग्नि या शस्त्र से, बुध बलवान् हो तो ऊपर से गिर पड़ने से तथा शनि बलवान् हो तो पत्थर पर टकराने से चोट लगती है।[3]

चोट लगने के कारण का निश्चय निम्नलिखित योगों से भी किया जा सकता है[4]—

---

१. सपापे षष्ठेशे लग्ने त्रिके शरीरे व्रणः—जातकतत्व षष्ठविवेक सूत्र २३।
२. सपापे षष्ठेशे लग्ने त्रिके शरीरे व्रणः—जातकतत्व—षष्ठविवेक, सू० २३।
३. बृहज्जातकः अ० ५ श्लो० ५५।
४. जातकतत्वः अष्टम विवेक—सू० १२५-३०।

(१) दशम स्थान में रवि तथा चतुर्थ में मंगल हो तो पत्थर से चोट लगती है।

(२) मंगल एवं सूर्य दोनों चतुर्थ में हों तो पत्थर से चोट लगती है।

(३) दशमेश चतुर्थेश से युत या दृष्ट हो तो पत्थर से चोट लगती है।

(४) राहु एवं शनि के साथ चतुर्थेश हो तथा उस पर मंगल की दृष्टि हो तो पत्थर से चोट लगती है।

(५) सप्तम या एकादश स्थान में राहु हो तो काठ या लाठी से चोट लगती है।

(६) एकादश स्थान में सूर्य एवं मंगल हों तो शस्त्र से चोट लगती है।

दुर्घटना में मृत्यु होने के योग

जातकग्रन्थों में दुर्घटनाओं में मृत्यु होने के अनेक योग बतलाये गये हैं, उनमें से कुछ प्रमुख योग इस प्रकार हैं :—

(१) कारकांश में सूर्य एवं राहु हों तथा उन पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो सर्पदंश से मृत्यु होती है।[१]

(२) कारकांश में गुलिक होने से विष खाने से मृत्यु होती है।[२]

(३) कुण्डली में जिस नवांश में गुलिक हो उससे ७ वीं राशि में मंगल होने पर युद्ध में शस्त्राघात से, शनि हो तो चोरों या सर्प से, सूर्य हो तो, राजदण्ड से तथा वहाँ चन्द्रमा हो तो जल में डूबने से मृत्यु होती हैं।[३]

(४) चतुर्थ एवं दशम स्थान में सूर्य एवं मंगल हो तो पत्थर की चोट से मृत्यु होती है।[४]

(५) चतुर्थ में शनि, सप्तम स्थान में चन्द्रमा तथा दशम में मंगल हो तो कुएं में गिरने से मृत्यु होती है।[५]

(६) लग्न में द्विस्वभाव राशि में सूर्य एवं चन्द्रमा हो तो जल में डूबने से मृत्यु होती है।[६]

(७) मेष या वृश्चिक राशि में दो पाप ग्रहों के मध्य में चन्द्रमा हो तो शस्त्राघात से या जलने से मृत्यु होती है।[७]

(८) मकर या कुम्भ राशि में दो पाप ग्रहों के मध्य में चन्द्रमा हो तो फांसी से या अग्नि में जल जाने से मृत्यु होती है।[८]

(९) चतुर्थ में सूर्य तथा दशम स्थान में मंगल हो और उन पर क्षीण चन्द्रमा की दृष्टि हो लाठी की चोट से मृत्यु होती है।[९]

१-२. जैमिनीय सूत्र —अ० १ पा० २ सू० २३, २९।

३. जातक पारिजातः अ० ५ श्लो० ७३।

४-९. वृहज्जातकः अ० २५ श्लो० २-३, ५-८

(१०) अष्टम स्थान में क्षीण चन्द्रमा, दशम में मंगल, लग्न में शनि तथा चतुर्थ स्थान में सूर्य हो तो लाठी की चोट से मृत्यु होती है।[१]

(११) दशम स्थान में क्षीण चन्द्रमा, नवम में मंगल, लग्न में शनि एवं पंचम में सूर्य हो तो जलने से मृत्यु होती है।[२]

(१२) लग्न में मंगल, सप्तम में सूर्य तथा दशम स्थान में शनि हो तो शस्त्राघात, अग्नि या राजदण्ड से मृत्यु होती है।[३]

(१३) दशम स्थान में सूर्य तथा चतुर्थ में मंगल हो तो वाहन-दुर्घटना में मृत्यु होती है।[४]

(१४) सप्तम स्थान में मंगल तथा लग्न में सूर्य, चन्द्र एवं शनि हों तो मशीनरी की दुर्घटना से मृत्यु होती है।[५]

(१५) अष्टम में शनि हो तथा क्षीण चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि हो तो शस्त्र की चोट से या गोली लगने से मृत्यु होती है।[६]

(१६) सप्तम स्थान में सूर्य एवं मंगल, अष्टम में शनि तथा चतुर्थ में क्षीण चन्द्रमा हो तो पक्षियों के नोचने से मृत्यु होती है।[७]

(१७) लग्न में सूर्य, पंचम में मंगल, अष्टम में शनि तथा नवम में क्षीण चन्द्रमा हो तो पर्वत की चोटी, छत या दीवार पर से गिरकर मृत्यु होती है।[८]

(१८) अष्टमेश एवं लग्नेश निर्बल हो तथा षष्ठेश मंगल के साथ हो तो युद्ध में शस्त्र की चोट से मृत्यु होती है।[९]

(१९) अष्टम स्थान में मंगल के साथ क्षीण चन्द्रमा हो तो पिशाच पीड़ा से मृत्यु होती है।[१०]

(२०) अष्टम स्थान में क्षीण चन्द्रमा राहु के साथ हो तो आग में जलने से और यदि वह शनि के साथ हो तो जल में डूबने से मृत्यु होती है।[११]

(२१) सूर्य लग्न में तथा चन्द्रमा सप्तम में हो और उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो जल में डूबने से मृत्यु होती है।[१२]

(२२) लग्न में बुध, चतुर्थ में मंगल तथा दशम में सूर्य हो तो पशु के सींग की चोट से मृत्यु होती है।[१३]

(२३) द्वितीय स्थान में चन्द्रमा, चतुर्थ में मंगल तथा दशम में सूर्य हो तो वाहन दुर्घटना में मृत्यु होती है।[१४]

१.-६. वृहज्जातक: अ० २५ श्लो० २-३,५-८।

७.-८. वृहजातक: अ० २५ श्लो १०।

९.-१४. जातक पारिजात: अ० ५ श्लो० ८३,८६,९९,१०१.१०४–५।

(२४) चतुर्थ में सूर्य, अष्टम में शनि तथा दशम में क्षीण चन्द्रमा हो तो लकड़ी या मलवे में दब जाने से मृत्यु होती है ।[१]

(२५) तृतीयेश अष्टमेश के साथ लग्न में हो तो आग में जलने से मृत्यु होती है ।[२]

(२६) शनि की राशि में केतु एवं मंगल के साथ लग्नेश हो तो आग में जलने से मृत्यु होती है ।[३]

(२७) लग्नेश एवं अष्टमेश-ये दोनों शनि एवं राहु के साथ हों तो शस्त्र की चोट से मृत्यु होती है ।[४]

चोट या दुर्घटना में अंग भंग के योग

दुर्घटना या चोट से अंग-भंग की सम्भावना सदैव रहती है । अतः इनका विचार करते समय अंग-भंग होने का भी विचार कर लेना चाहिए । जातक ग्रन्थों में अंग-भंग होने के अनेक योग बतलाये गये हैं, उनमें से अनेक योग[५] इस प्रकार हैं:—

(१) गुरु एवं शनि-ये दोनों नवम या तृतीय स्थान में हों, तथा सूर्य अष्टम या द्वादश स्थान में हों तो हाथ कट जाता है ।

(२) चन्द्रमा एवं मंगल-ये दोनों सप्तम या अष्टम स्थान में हों तो हाथ कट जाते हैं ।

(३) बुध, शनि एवं राहु दशम स्थान में हो तो पैर कट जाता है ।

(४) अष्टम स्थान में शनि तथा दशम स्थान में गुरु हो तो हाथ कट जाता है ।

(५) अष्टमेश पर शुक्र की दृष्टि हो तथा सूर्य के साथ शनि एवं राहु हो तो सिर कट जाता है ।

(६) अष्टमेश पर शुक्र की दृष्टि हो तथा सूर्य क्रूर षष्ठमेश में हो तो सिर कट जाता है ।

(७) शनि लग्न में, राहु सप्तम में, शुक्र कन्या में, तथा क्षीण चन्द्रमा सप्तम में हो तो हाथ एवं पैर दोनों कट जाते हैं ।

(८) लग्न में मंगल की राशि या उसके नवांश में सूर्य हो तथा क्षीण चन्द्रमा, राहु एवं बुध सिंह राशि में हों तो पेट फट जाता है ।

(९) लग्न में शनि हो, उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो, तथा क्षीण चन्द्रमा राहु एवं सूर्य साथ-साथ हों तो शस्त्र की चोट से कुक्षि फट जाती है ।

---

१. जातक परिजातः अ० ५ श्लो० ८३,८६,९९, १०१,१०४-५ ।

२. दैवज्ञाभरण-षोडश प्रकाश श्लो० ५७ ।

३. ४. दैवज्ञाभरण-षोडस प्रकाश श्लो० ५८ एवं ६२ ।

५. देखिए-(क) सर्वार्थ चिन्तामणि अ० ५ षष्ठभावविचार श्लो० १२-२० ।
(ख) जातक पारिजात अ० ५ श्लो० ९३-९७ ।

(१०) अमावस्या का जन्म हो, लग्न में शनि हो तथा चन्द्रमा के साथ राहु हों तो शस्त्र की चोट से कुक्षि फट जाती है ।

महामारी एवं छूत के रोग

प्रकृति के प्रकोप से फैलने वाली बीमारियों को महामारी कहते हैं । ये बीमारियाँ एक साथ बड़े भू भाग में फैलती है, तथा अचानक ही वहाँ के लोगों को बीमार बना डालती है । ऐसी बीमारियों में चेचक एवं हैजा प्रमुख हैं । छूत की बीमारियाँ उन संचारी रोगों को कहते हैं, जो छूने से फैलती हैं । ऐसे रोगों में तपेदिक एव कुष्ठ प्रमुख हैं ।

फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में चेचक एवं हैजा जैसे महामारी जन्य रोगों का तथा तपेदिक एवं कुष्ठ जैसे छूत के रोगों का भलीभाँति विचार कर उनके योगों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है । तथा यह बतलाया गया है कि किन योगों में उत्पन्न व्यक्तियों को ये रोग होते हैं ?

चेचक एवं उसके योग

चेचक में मनुष्य के शरीर पर मसूर के दानों जैसे फफोले निकल आते है । शरीर में ज्वर रहता है खुजली होती है । मसूर जैसे दाने निकलने के कारण इस रोग को प्राचीन काल में मसूरिका कहा जाता था । जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो, उसे चेचक निकलती है:—

(१) लग्न में मंगल हो तथा उस पर शनि एवं सूर्य की दृष्टि हो ।[१]

(२) लग्न, सप्तम, द्वितीय या अष्टम स्थान में सूर्य हो तथा उस पर मंगल की दृष्टि हो ।[२]

(३) उक्त स्थानों में मंगल हो तथा उस पर सूर्य की दृष्टि हो ।[३]

(४) लग्न, षष्ठ, सप्तम या द्वादश स्थान में गुलिक एवं मंगल हो तथा उन पर सूर्य की दृष्टि हो ।[४]

हैजा एवं उसके योग

हैजा में मनुष्य को उल्टी एवं दस्त होने लगते हैं, शरीर का पानी सूख जाता है, बार-बार प्यास लगती है तथा पूरे शरीर में अकड़न आ जाती है । यदि इस रोग का समय से उपचार न किया जाय, तो यह रोग प्राणघातक हो सकता है । निम्नलिखित योगों में उत्पन्न व्यक्ति को हैजा होता है—

(१) सप्तम स्थान में शुक्र हो तथा उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो ।[५]

१. जातक पारिजात: अ० ६ श्लो० ६२ तथा गदावली प्रकरण ३ श्लो० ३२ ।
२. ३. तत्रैव, अ० ११ श्लो० ७१ ।
४. जातक तत्व—षष्ठ विवेक सू० १६६ ।
५. जातक पारिजात, अ० ६ श्लो० ६५ ।

(२) लग्न में बुध एवं राहु हों तथा सप्तम भाव में मंगल एवं शनि हों।'[१]

तपेदिक (क्षय रोग) एवं उसके योग—

'अल्प परिश्रम से थकान एवं श्वास फूलना, बार-बार खांसी होना, गले में खुश्की, कब्ज एवं मन्दाग्नि होना, शरीर का शनैः शनैः क्षीण होना, आँख एवं नाखूनों का सफेद होना तथा मन में चिड़चिड़ापन आना—ये सब तपेदिक होने के पूर्वलक्षण माने गये हैं। तपेदिक के रोगी के हाथ एवं पैरों में जलन, शरीर में कमजोरी, स्वभाव में असहिष्णुता तथा लगातार हल्का ज्वर बना रहता है। ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थों में इस रोग को क्षय एवं राज्यक्ष्मा कहा गया है, तथा इस रोग के योगों का गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है। इस रोग के योग इस प्रकार हैं :—

(१) लग्नेश एवं शुक्र त्रिक स्थान में हों।[२]

(२) लग्न पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो।[३]

(३) कर्क राशि में बुध हो।[४]

(४) अष्टम स्थान में पापग्रह, पंचम में शनि तथा लाभस्थान में सूर्य हो।[५]

(५) दशम स्थान में मंगल एवं शनि हों तथा लग्न चतुर्थ अथवा अष्टम में सूर्य हो।[६]

(६) षष्ठ स्थान में बुध के साथ मंगल हो, वह क्रूरांश में हो तथा उस पर चन्द्रमा एवं शुक्र की दृष्टि हो।[७]

(७) कारकांश लग्न से चतुर्थ में मंगल तथा व्यय स्थान में राहु हो।[८]

(८) षष्ठ या अष्टम स्थान में मंगल के साथ चन्द्रमा हो और उस पर लग्नेश की दृष्टि हो।[९]

(९) षष्ठ स्थान में जलराशि में क्षीण चन्द्रमा हो तथा लग्न में पाप ग्रह हों।[१०]

(१०) षष्ठ स्थान में गुलिक एवं शनि हो, उन पर सूर्य, मंगल एवं राहु की दृष्टि हो तथा वे शुभ ग्रहों से युत दृष्ट न हों।[११]

(११) सूर्य एवं चन्द्रमा एक दूसरे की राशि या नवांश में हो।[१२]

(१२) कर्क या सिंह राशि में साथ साथ सूर्य एवं चन्द्रमा हो।[१३]

(१३) शनि के साथ चन्द्रमा हो तथा उस पर मंगल की दृष्टि हो।[१४]

---

१. जातक तत्व—षष्ठविवेक सू० १०४।

२-१०. गदावली प्रकरण ३ श्लो० १९—२०।

११. देखिए - (क) जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ९५।
(ख) सर्वार्थ चिन्तामणि अ० ५ षष्ठभावविचार श्लो० ३९।

१२. १४. जातकतत्व—षष्ठ विवेक सू० ४८-५०।

कुष्ठ एवं उसके योग

कुष्ठ एक छूत की बीमारी है, जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में चली जाती है। जब वात आदि दोष त्वचा, मांस एवं रक्त को दूषित कर देते हैं, तब यह रोग होता है। इस रोग के कारण शरीर में लाल, नीले या सफेद दाग बन जाते हैं तथा शरीर के अंग धीरे-धीरे गलने लगते हैं। फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में इसके अनेक योगों का विवेचन किया गया है। निम्नलिखित योगों में उत्पन्न व्यक्ति को यह रोग होता है—

(१) सूर्य, शुक्र एवं शनि—ये तीनों एक साथ हों।[१]

(२) मंगल की राशि में सूर्य हो तथा उस पर शुक्र की दृष्टि हो।[२]

(३) सिंह राशि में सूर्य हो तथा उस पर शुक्र की दृष्टि हो।[३]

(४) मंगल एवं शनि के साथ चन्द्रमा मेष या वृष राशि में हो।[४]

(५) चन्द्रमा, मंगल, गुरु, शुक्र एवं शनि—ये सब कर्क, वृश्चिक या मीन राशि में हों।[५]

(६ मेषराशि में बुध, दशम स्थान में चन्द्रमा तथा किसी भी स्थान में शनि एवं मंगल साथ-साथ हों।[६]

(७) मिथुन, कर्क या मीन के नवांश में स्थित चन्द्रमा पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो।[७]

(८) वृष, कर्क, वृश्चिक या मकर राशिगत पापग्रहों से त्रिकोण स्थान दृष्ट या युत हो।[८]

(९) चन्द्र, बुध एवं लग्नेश–तीनों राहु या केतु के साथ हों।[९]

(१०, लग्न में मंगल, अष्टम में सूर्य तथा चतुर्थ स्थान में शनि हो।[१०]

विविध कुष्ठों के योग

(१) शनि, मंगल, चन्द्रमा एवं शुक्र—ये चारों पापग्रहों से दृष्ट युत होकर जलराशियों में हों तो गलित कुष्ठ होता है।[११]

(२) शनि, मंगल एवं सूर्य—ये तीनों साथ-साथ हों तो रक्त कृष्ण कुष्ठ होता है।[११]

(३) मंगल के साथ षष्ठेश लग्न में हो तो पित्तकुष्ठ होता है।[१२]

(४) शनि के साथ षष्ठेश लग्न में हो तो कफज कुष्ठ होता है।[१३]

(५) सूर्य के साथ षष्ठेश लग्न में हो तो रक्त कुष्ठ होता है।[१४]

---

१. ३. सारावली अ० १६ श्लो० १५, अ० २२ श्लो० ८ एवं ४०।

४. ५. जातकालंकार अ० २ श्लो०

६. ७. देखिए—(क) जातक तत्व—षष्ठ विवेक सू० ११६-११७।
(ख) गदावली प्रकरण ३ श्लो० ५०।

८-१४. देखिए—(क) गदावली प्रकरण ३ श्लो० ५१-५२, ५८-५६।
(ख) जातकतत्व—षष्ठविवेक सू० ११८-१२५।

(६) कारकांश से चतुर्थ में चन्द्रमा हो तथा उस पर केतु की दृष्टि हो तो नील कुष्ठ होता है।[1]

(७) कारकांश से चतुर्थ में चन्द्रमा हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो तो ग़लित कुष्ठ होता है।[2]

श्वेतकुष्ठ के योग

(१) कारकांश से चतुर्थ में चन्द्रमा हो और उस पर शुक्र की दृष्टि हो तो श्वेत कुष्ठ होता है।[3]

(२) चन्दमा एवं शुक्र—ये दोनों पापग्रहों के साथ जलराशियों में हो तो श्वेत कुष्ठ होता है।[4]

(३) लग्नेश किसी भी स्थान में राहु या केतु के साथ हों तो शरीर के किसी भी अंग में सफेद दाग होता है।[5]

(४) चन्द्रमा एवं मंगल—ये दोनों राहु या केतु के साथ हों तो शरीर के किसी भाग में सफेद दाग होता है।[6]

(५) शनि, मंगल एवं चन्द्रमा मेष या वृष राशि में हो तो श्वेत कुष्ठ होता है।[7]

(६) शनि एवं मंगल क्रमशः द्वादश एवं द्वितीय स्थान में हों, लग्न में चन्द्रमा तथा सप्तम में सूर्य हो तो श्वेत कुष्ठ होता है।[8]

(७) लग्नेश एवं बुध—ये दोनों तथा चन्द्रमा एवं मंगल ये दोनों साथ-साथ हों और राहु या केतु से युक्त हों।[9]

(८) मेष या वृष राशि में मंगल एवं शनि के साथ चन्द्रमा हो तो श्वेत कुष्ठ होता है।[10]

(९) कर्क, वृश्चिक या मीन में पापग्रहों के साथ सूर्य एवं चन्द्रमा हों तो श्वेत कुष्ठ होता है।[11]

(१०) अष्टम स्थान में लग्नेश हो और वह पापग्रहों से दृष्ट-युत हो तो श्वेत कुष्ठ होता है।[12]

भय योग

पानी में डूबना, आग से जलना, जहर खाना एवं जीव जन्तुओं के आघात या दंश के कारण घटित होने वाली दुर्घटनाओं के योगों को जातक ग्रन्थों में भय योग कहा गया है : विविध प्रकार के भय योग इस प्रकार हैं :—

---

१. २. जैमिनीयसूत्र : चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, अध्याय १ पाद २ सत्र ८६-९०

३. तत्रैव, सूर्य ८८।

४-८. जातक तत्व: षष्ठ विवेक सूत्र १२८-१३२।

९-१२. गदावली प्रकरण ३ श्लो० ५५-५६।

जल भय के योग

वापी, कूप, तालाब, नहर, नदी एवं समुद्र आदि में डूबने की घटना को जल भय कहा जाता है, इसके योग निम्नलिखित हैं —[1]

(१) कारकांश में कर्क राशि हो ।

(२) अष्टम स्थान में (जलचर राशि में) चन्द्रमा हो ।

(३) लग्न में स्थित चन्द्रमा पर पापग्रहों की दृष्टि हो ।

(४) नीच राशिगत, शत्रु राशिगत, अस्तंगत या बलहीन चतुर्थेश जलराशि में चतुर्थ या अष्टम स्थान में हो ।

(५) लग्नेश निर्बल हो तथा चतुर्थ स्थान में पापग्रह हो ।

(६) चतुर्थेश निर्बल हो तथा चतुर्थ स्थान में पापग्रह हो ।

(८) पापग्रहों के साथ चतुर्थेश केन्द्र में हो ।

(८) लग्नेश एवं चतुर्थेश दोनों चतुर्थ भाव में हों तथा इन पर दशमेश की दृष्टि हो ।

(९) चतुर्थेश जिस राशि में हो उस राशि का स्वामी चतुर्थेश से ही युत या दृष्टि हो ।

अग्नि, चोर एवं दुर्जन भय के योग

आग से जलना तथा चोर, डाकू या बदमाशों से चोट खाने की घटना को ग्रंथों में[2] अग्नि, चोर एवं दुर्जन भय कहा गया है । इन घटनाओं के योग इस प्रकार हैं :—

(१) षष्ठेश राहु या केतु के साथ हो तो चोर या अग्नि का भय होता है ।

(२) नवमेश षष्ठ स्थान में हो और उस पर षष्ठेश की दृष्टि हो तो चोर या अग्नि का भय होता है ।

(३) षष्ठेश शनि एवं मंगल साथ साथ हों तो चोर या अग्नि का भय होता है ।

(४) लग्न, सप्तम या अष्टम स्थान में स्थित सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो तो अग्नि या दुर्जन का भय होता है ।

(५) लग्न, द्वितीय, सप्तम या अष्टम स्थान में स्थित मंगल पर सूर्य की दृष्टि हो तो अग्नि या दुर्जन का भय होता है ।

(६) लग्न, षष्ठ, सप्तम या द्वादश स्थान में मंगल एवं गुलिक हों तथा उन पर सूर्य की दृष्टि हो, तो अग्नि या दुर्जन का भय होता है ।

---

१. देखिए— क) जातक तत्व: षष्ठ विवेक सूत्र १५३-५५ ।
(ख) तत्रैव: अष्टम विवेक सूत्र १३२-३८ ।

२. देखिए —(क) जातक तत्व: षष्ठ विवेक सूत्र १६१-६८ ।
(ख) तत्रैव: अष्टम विवेक सू० १२५ एवं १३१ ।

(७) षष्ठेश मंगल के साथ हो तो आग से जलने का भय होता है।

(८) लग्न में स्थित क्रूर ग्रह किसी पाप ग्रह के साथ हो तथा उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो तो आग से जलने का भय होता है।

(९) मंगल अष्टम में हो तो आग से शरीर जल जाता है।

(१०) लाभ स्थान में सूर्य एवं मंगल हो तो शरीर आग से जल जाता है।

विष भय के योग

विष भय के योग में उत्पन्न व्यक्ति या तो स्वयं जहर खा लेता है अथवा कोई अन्य व्यक्ति धोखे से उसे जहर खिला देता है। ये योग इस प्रकार हैं[१] :—

(१) कारकांश में गुलिक हो।

(२ एकादश भाव में सूर्य के साथ मंगल हो।

(३) षष्ठ या अष्टम स्थान में चन्द्रमा एवं बुध हों।

(४) सूर्य एवं बुध ये दोनों अष्टम स्थान में हों।

सर्प भय के योग

सर्प भय के योग में उत्पन्न व्यक्ति को सर्प काट लेता है। ये योग इस प्रकार हैं।[२]

(१) चन्द्रमा एवं मंगल ये दोनों षष्ठ या अष्टम स्थान में हों।

(२) राहु द्वितीय भाव में हो तथा वह राहु से युत या दृष्ट हो।

(३) लग्न में राहु के साथ तृतीयेश हो।

(४) षष्ठेश राहु या केतु के साथ हो।

पशु भय के योग

कुत्ता, गाय, बैल, भैंस; हाथी, घोड़ा आदि पालतू पशुओं तथा सियार, लोमड़ी, हिरन आदि जंगली पशुओं के काटने या मारने के योगों को पशु भय का योग कहते हैं। ये योग इस प्रकार हैं[३]—

(१) द्वितीय भाव में शनि हो और वह पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो कुत्ता काट लेता है।

(२) शनि धनेश से युत या दृष्ट हो तो कुत्ता काट लेता है।

(३) तृतीयेश एवं गुरु ये दोनों लग्न में हो तो गाय, बैल या भैंस आदि चौपाये से चोट लगती है।

(४) कर्क या सिंह राशि में राहु स्थित हो और वह चन्द्रमा या सूर्य के साथ हो तो पशुओं से चोट लगती है।

---

१. देखिए—(क) जैमिनीय सूत्र अ० १ पा० २ सू० २९।

(ख) जातकतत्व: अष्टम विवेक—सू० १२३-२५।

२. जातकतत्व: षष्ठविवेक सू० १५६—५८ एवं १६१।

२. तत्रैव: सू० १६९-७७

(५) षष्ठेश एवं लग्नेश ये दोनों गुरु के साथ हों तो हाथी से चोट लगती है।

(६) लग्नेश एवं षष्ठेश ये दोनों चन्द्रमा के साथ हों तो घोड़े से चोट लगती है।

(७) गुलिक एवं मंगल ये दोनों द्वितीय या अष्टम स्थान में हों और इन पर धनेश की दृष्टि हो तो सियार, लोमड़ी, भेड़िया आदि जंगली जानवरों से भय होता है।

(८) सूर्य के साथ षष्ठेश धन स्थान में हो तो सियार आदि हिंसक पशुओं से भय होता है।

(९) शनि षष्ठेश हो तथा वह राहु या केतु के साथ हो तो जंगली जानवरों से भय होता है।

जीव जन्तुओं से मृत्यु के योग

पालतू एवं जंगली पशुओं के काटने या आघात करने से अनेक बार मृत्यु हो जाती है। इस का विचार निम्नलिखित योगों[1] के आधार पर किया जाता है—

(१) षष्ठ या अष्टम स्थान में सूर्य एवं चन्द्रमा हो तो सिंह के द्वारा मृत्यु होती है।

(२) चतुर्थ में मंगल तथा दशम में शनि हो तो सिंह के द्वारा मृत्यु होती है।

(३) दशम स्थान में राहु एवं शुक्र हों तो सर्पदंश से मृत्यु होती है।

(४) कारकांश में सूर्य हो और वह पापग्रहों से दृष्ट हो तो सर्पदंश से मृत्यु होती है।

(५) चतुर्थ में मंगल तथा दशम भाव में रवि हो तो सर्पदंश से मृत्यु होती है।

(६) सप्तम स्थान में शनि, रवि एवं राहु हों तो सर्पदंश से मृत्यु होती है।

(७) सप्तम में रवि तथा दशम भाव में गुरु एवं मंगल हों तो कुत्ते के काटने से मृत्यु होती है।

(८) लग्न पर मंगल एवं सूर्य की दृष्टि हो तथा गुरु एवं शुक्र की दृष्टि न हो तो बैल या सांड से मृत्यु होती है।

(९) षष्ठ या अष्टम स्थान में सूर्य एवं चन्द्रमा हो तो हाथी से मृत्यु होती है।

शाप एवं अभिचारजन्य रोग

गुरु एवं देवता आदि के शाप से उत्पन्न होने वाले रोगों को शापजन्य रोग कहते हैं। मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, स्तम्भन एवं वशीकरण आदि तान्त्रिक क्रियाओं को अभिचार कहते हैं। इन अभिचार प्रयोगों के द्वारा उत्पन्न रोग अभिचारजन्य रोग कहलाते हैं। इन रोगों के योग इस प्रकार हैं :—

१. जातक तत्व: अष्टमविवेक—सूत्र ३१—३६,४२ एवं ६१।

(१) केन्द्र में गुलिक हो तथा लग्न, चतुर्थ या दशम स्थान में गुरु हो तो देवता के कोप या शाप से रोग होता है।[१]

(२) लग्न में चरराशि हो, लग्नेश पापग्रह के साथ हो तथा सप्तम स्थान में शनि हो तो देवता के कोप या शाप से रोग होता है।[२]

(३) लग्न में चर राशि हो, षष्ठेश की लग्न पर दृष्टि हो तथा मंगल एकादश भाव में हो, तो अभिचार से रोग होता है।[३]

(४ सप्तम में द्विस्वभावराशि तथा नवम में स्थिर राशि हो तथा उन पर षष्ठेश एवं मंगल की दृष्टि हो तो अभिचार से रोग होता है।[४]

(५) षष्ठेश सप्तम या दशम स्थान में हो तथा लग्न पर मंगल की दृष्टि हो तो शत्रुकृत अभिचार से रोग होता है।[५]

(६) चर लग्न में शुभ ग्रह हों, सप्तम में शनि हो तथा चन्द्रमा पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो भूत, प्रेत या पिशाच की पीड़ा से रोग होता है।[६]

(७) लग्न में राहु के साथ शनि हो तो भूत, प्रेत या पिशाच की पीड़ा से रोग होता है।[७]

(८) लग्न में स्थित केतु पर अनेक पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो पिशाच पीड़ा होती है।[८]

(९) षष्ठ स्थान में राहु या केतु हो तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो पिशाच पीड़ा से रोग होता है।[९]

(१०) अष्टम स्थान में निर्बल चन्द्रमा एवं शनि हो तो पिशाच पीड़ा से रोग होता है।[१०]

१-२. गदावली: प्रकरण ३ श्लो० ६०-६१।

३-४. जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ७७ एवं ९३।

५. जातक पारिजात: अ० ६ श्लो० ९३।

६. तत्रैव, श्लो० ९४।

७-८. सर्वार्थ चिन्तामणि अ० २ श्लो ८८ एवं ९०।

९. दैवज्ञाभरण—चतुर्दशप्रकाश श्लो० ३२।

१०. जातकतत्व—षष्ठविवेक, सू० ९४।

अध्याय-५

अदृष्टनिमित्तजन्य

शारीरिक रोग

शरीर एवं उसके अंगों में उत्पन्न होने वाले रोगों को शारीरिक रोग कहते हैं। ये रोग दो प्रकार के होते हैं—१. अंगों के रोग तथा २. वात पित्तादि के रोग।

आमवात, शूल, सन्धिशूल, पक्षाघात, रक्तपित्त, दाह, तृष्णा, कफ, खांसी, श्वास, क्षय, ज्वर, पाण्डु (पीलिया), शोफ (सूजन), सूखा, छर्दि, स्थौल्य, मूर्च्छा, मिरगी, फुन्सी, घाव, दाद, खाज, खुजली एवं कुष्ठ आदि रोग वात, पित्त एवं कफ इन तीन विकारों से उत्पन्न होते हैं।

शिर से लेकर पैर तक शरीर के समस्त अंगों में उत्पन्न होने वाले विकारों को अंगों का रोग कहा जाता है।

अदृष्टिनिमित्तजन्य रोग

जैसा कि बतलाया जा चुका है आगन्तुक रोग दो प्रकार के होते हैं—१. दृष्टनिमित्त-जन्य रोग तथा २—अदृष्टनिमित्तजन्य रोग। दृष्टनिमित्तजन्य रोगों का विचार पिछले अध्याय में किया गया था। अब इन तीन अध्यायों में अदृष्टनिमित्त जन्य रोगों का विचार करेंगे।

दृष्टनिमित्तजन्य रोगों के दुर्घटना, चोट, संसर्ग, महामारी, घात, शाप एवं अभिचार आदि कारण प्रत्यक्षतः दिखलाई देते हैं। किन्तु अदृष्टनिमित्तजन्य रोगों का कारण प्रत्यक्ष रूप से दिखलाई नहीं देता। ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों की मान्यता है कि पूर्वार्जित कर्मों के प्रभाव से रोग उत्पन्न होते हैं। वस्तुतः पूर्वार्जित कर्म शरीर के अंग, धातु तथा दोष (वात, पित्त आदि) को प्रभावित कर शरीर में रोग उत्पन्न कर देते हैं इन अदृष्ट-निमित्तजन्य रोगों की जानकारी बाधक ग्रहों के द्वारा की जा सकती है।[1] कारण यह है कि सूर्य आदि ग्रह, मनुष्य के शरीर के समस्त अंगों, धातुओं एवं दोषों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा जो ग्रह, योगों, के प्रभाववश बाधक बन जाता है, वह शरीर के जिस अंग, धातु या दोष का प्रतिनिधित्व करता है, उसमें विकार या रोग की सूचना देता है।

भेद

अदृष्टनिमित्तजन्य रोग दो प्रकार के होते हैं—१. शारीरिक तथा २. मानसिक। अन्धत्व, काणत्व, मूकत्व, बधिरत्व आदि अंग विकार, अस्थि विकार, रक्तविकार, चर्म विकार

१. देखिए—प्रश्नमार्गः पूर्वोद्धृत, अ० श्लो० २३।

आदि धातु विकार तथा ज्वर अतिसार आदि दोष व रोग—ये सब शारीरिक रोग कहलाते हैं मन एवं मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले रोगों को मानसिक रोग कहा जाता है। फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में शारीरिक रोगों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया गया है—१. अंगों में उत्पन्न होने वाले रोग २. धातु तथा दोष से उत्पन्न होने वाले रोग। इस अध्याय में हम अंगों में उत्पन्न होने वाले रोगों का विचार कर रहे हैं। धातु एवं दोषजन्य रोग तथा मानसिक रोगों का विचार यथाक्रमेण अग्रिम अध्यायों में किया जायगा।

शारीरिक रोगों को उक्त दो ही वर्गों में वर्गीकृत करने का मुख्य कारण यह है कि कुण्डली के लग्न आदि भाव तथा मेष आदि राशियां मनुष्य-शरीर के शिर से लेकर पैरों तक विविध अंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें से भाव शरीर की धातु या दोष का प्रतिनिधित्व नहीं करते। जब कि सूर्य आदि ग्रह तथा मेष आदि राशियां शरीर के अंग, धातु एवं दोष—इन तीनों का प्रतिनिधित्व करते हैं[१]। इसलिए शरीर के अंगों में उत्पन्न होने वाले विकारों में भावों तथा राशियों की तथा अन्य रोगों में ग्रहों की महत्व-पूर्ण भूमिका रहती है। यद्यपि योग :—राशि, भाव एवं ग्रह इन तीनों से बनते हैं। अतः अन्धत्व, काणत्व आदि अंगविकार के योगों में भी भाव के साथ राशि एवं ग्रहों का उल्लेख होता है। तथापि अंगविकार के योगों में ग्रहों की तुलना में भाव एवं राशि की प्रधानता होती है। वराहमिहिर आदि आचार्यों ने कहा है[२] 'कि जिस भाव या राशि पर पाप ग्रह का प्रभाव होता है, वह भाव या राशि शरीर के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करती हैं, जातक के शरीर के उस अंग में विकार होता है। तथा कुण्डली में जिस भाव या राशि पर शुभ ग्रहों का प्रभाव होता है, वह भाव या राशि शरीर के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करती हैं, जातक के शरीर का वह अंग पुष्ट होता है', अस्तु।

१. ग्रहों के अंग, धातु एवं दोष

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
अंग	हृदय	मन	दृष्टि	नासिका	शरीर	जिह्वा	कर्ण
धातु	अस्थि	रक्त	मज्जा	त्वचा	मैदा	वीर्य	स्नायु
दोष	पित्त	वात एवं कफ	पित्त	त्रिदोष	कफ	कफ एवं वायु	वायु

२. देखिए—(क) लघुजातकः अ० १ श्लो० ४–५।
(ख) सारावलीः अ० ३ श्लो० ५–६।
(ग) जातक पारिजातः अ० १ श्लो० ८

अंगों के रोग

शारीरिक रोगों में से जिनका सम्बन्ध शरीर के किसी निश्चित अंग से रहता है, उनका विचार यहाँ किया जा रहा है। फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में शिरःशूल, गंजापन, उन्माद, मिरगी, मूर्छा, अंधापन, कानापन, भेंगापन, रतौंधी, आँख फूटना, बहिरापन, कम सुनाई देना, कान में दर्द, कान कटना, नासा रोग, नाक कटना, गूंगापन, हकलाहट, तुतलाहट, दन्तरोग, तालु रोग, कण्ठ रोग, गण्डमाला, गलगण्ड, लूलापन, हाथ कटना, हृदय रोग, हृदय शूल, हृदय कम्प, अजीर्ण, मन्दाग्नि, अतिसार, संग्रहणी, गुल्म, तालु, कृमि, प्लीहा, पाण्डु, जलोदर, उरःशूल, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी उपदंश, शूक, वृषण,वृद्धि, नपुंसकता, बन्ध्यात्व, अर्श, भगन्दर, जंघा क्षति, श्लीपद, लंगड़ापन एवं पंगुता, आदि रोगों का, जिनका शरीर के किसी निश्चित अंग से सम्बन्ध रहता है, विचार किया गया है।

जिस रोग का शरीर के जिस अंग से सम्बन्ध रहता है, उस अंग के आधार पर उक्त रोगों का वर्गीकरण कर दिया जाय, तो रोगों के निम्नलिखित १२ वर्ग बन जाते हैं—१—शिरोरोग, २—नेत्ररोग ३—कर्णरोग, ४—नासारोग, ५—मुखरोग, ६—गलरोग, ७—हृदयरोग, ९—उदररोग, १०—गुप्तरोग, ११ गुदारोग, तथा १२—चरण रोग। उक्त १२ वर्ग तथा इनके रोग इस प्रकार हैं—

१—शिरोरोग—	शिरशूल, गंजापन, उन्माद, मिरगी एवं मूर्च्छा आदि।
२ नेत्ररोग—	अन्धापन, कानापन, भेंगापन, रतौंधी, आँख फूटना आदि।
३—कर्णरोग—	बहिरापन, कम सुनाई देना, कान में दर्द, एवं कान कटना आदि।
४—नासारोग—	नाक कटना एवं अन्य नाक के रोग।
५—मुखरोग—	गूंगापन, हकलाहट, तुतलाहट, दन्तरोग, एवं तालुरोग।
६—गलरोग—	कण्ठ रोग, गण्डमाला एवं गलगण्ड आदि।
७—हस्तरोग—	लूलापन एवं हाथ कटना आदि।
८—हृदयरोग—	हृदयशूल, हृत्कम्प एवं अन्य विकार।
९—उदररोग—	अजीर्ण, मन्दाग्नि, अतिसार, संग्रहणी, गुल्म, कृमि, पाण्डु, जलोदर एवं उदर शूल आदि।
१०—गुप्तरोग—	प्रमेह, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, उपदंश, शूक, वृषणवृद्धि, प्रदर, नपुंसकता एवं बध्यात्व (बाँझपन) आदि।
११—गुदारोग—	अर्श एवं भगन्दर आदि।
१२—चरणरोग—	जंघा क्षति, श्लीपद, लंगड़ापन एवं पंगुता आदि।

शिरोरोग

सिरदर्द, गंजापन, मिरगी, मूर्च्छा, उन्माद, भ्रम एवं जड़ता आदि रोगों की गणना शिरोरोग के अन्तर्गत की जाती है। इन रोगों में मिरगी, मूर्च्छा, उन्माद, भ्रम एवं जड़ता का सम्बन्ध मन एवं मस्तिष्क के साथ होने के कारण इन्हें मानसिक रोग कहते हैं। मान-

सिक रोगों का विचार अगले अध्याय में यथा स्थान किया आयेगा। अतः यहाँ हम सिर दर्द एवं गंजापन का विचार कर रहे हैं।

सिर दर्द एवं उसके योग

वात पित्त आदि के कोप से, मन मस्तिष्क में दबाव या तनाव से तथा सिर में चोट लगने से सिर दर्द होता है। वात पित्त आदि से उत्पन्न सिर दर्द का विचार सूर्य से, मानसिक दबाव या तनाव से उत्पन्न सिर दर्द का विचार चन्द्रमा एवं बुध से तथा सिर में चोट लगने के कारण होने वाले सिर दर्द का विचार मंगल आदि पापग्रहों से करना चाहिये। फलित ग्रन्थों में सिर दर्द के निम्नलिखित योग बतलाये गये हैं। इन योगों में उत्पन्न व्यक्ति सिर दर्द से परेशान रहता है। ये योग इस प्रकार हैं—

(१) तृतीयेश जिस नवांश में हो, उस राशि का स्वामी जिस नवांश में हो, उस राशि का स्वामी केन्द्र में पाप ग्रहों से युत एवं दृष्ट हों।[1]

(२) राहु, मंगल एवं शनि—ये तीनों एक राशि में हों।[2]

(३) लग्न में पाप ग्रह की राशि हो तथा गुरु एवं चन्द्रमा पाप ग्रहों के साथ हों।[3]

(४) लग्न में राहु हो और वह पापग्रहों से युत दृष्टि हो।[4]

(५) मंगल लग्नेश होकर लग्न में बैठा हो तथा वह पापग्रहों से युत एवं दृष्ट हो तो शिर में चोट लगती है।[5]

(६) शनि लग्नेश होकर लग्न में बैठा हो तथा वह पाप ग्रहों से युत एवं दृष्ट हो, तो शिर में चोट लगती है।[6]

(७) सूर्य की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा आने पर सिर दर्द होता है।[7]

(८) बुध की दशा में मंगल की अन्तर्दशा आने पर सिर दर्द होता है।[8]

गंजापन एवं उसके योग

इस रोग मे सिर के बाल झड़ जाते हैं तथा काफी उगते नहीं हैं। गंजापन अधिकांशतया प्रौढावस्था में शुरु होता है। लग्न पर पापग्रहों का प्रभाव इस रोग का सूचक माना गया है। जातक ग्रन्थों में गंजेपन के निम्नलिखित योग बतलाये गये हैं। जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित योगों[9] में से कोई एक योग हो, वह गंजा होता है।

१-३. देखिए (क) गदावली: प्रक० २ श्लो० १।
(ख) जातकत्व: षष्ठ विवेक सू० ८५-८६।

४. बृहद् यवन जातक: पृ० ६ श्लो० ८।

५. ६. देखिए (क) सर्वार्थ चिन्तामणि: अ० २ श्लो ८०-८१।
(ख) दैवज्ञाभरण: नवम प्रकाश श्लो० ६४।

७. ८. सारावली: अ० ४२ श्लो० १६ एवं ३२।

९. देखिए—(क) बृहज्जातक: अ० २३ श्लोक १५।
(ख) जातकतत्व: प्रकीर्णतत्व सू० २१६-२१।

(१) लग्न में वृष या धनु राशि हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।
(२) लग्न में पाप ग्रह की राशि में पाप ग्रह हो।
(३) लग्न में सिंह, कन्या वृश्चिक या धनु राशि हो तथा कर्क राशि में स्थित चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि हो।

नेत्र रोग

नेत्र रोग मुख्यतया तीन प्रकार के होते हैं- १. जन्मजात, २. आगन्तुक एवं ३. सामान्य। जन्म से ही अन्धा, काना या भेगा होना जन्मजात नेत्र रोग का परिणाम है। इस प्रकार के नेत्ररोगों का विचार जन्मजात रोगों के प्रकरण में किया जा चुका है। आगन्तुक नेत्र रोग मनुष्य या अन्य जीवों के द्वारा चोट पहुँचाने से अथवा चेचक आदि अन्य रोगों के परिणाम स्वरूप होते हैं। तथा सामान्य नेत्र रोग वे कहलाते हैं जो आयु के साथ-साथ वृद्धावस्था में होते हैं। इस श्रेणी में वृद्धावस्था के कारण होने वाला दृष्टिमान्द्य, अन्धत्व एवं अन्य नेत्र विकारों को सम्मिलित किया जा सकता है। नेत्र रोगों का यह वर्गीकरण उसके कारणों के आधार पर किया जाता है।

ज्योतिष शास्त्र के ग्रंथों में अन्धत्व, आँख फूटना, काणत्व, रतौंधी, भेंगापन, एवं अन्य नेत्र रोगों का विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। फलित के प्रायः सभी ग्रंथों में नेत्र रोगों की चर्चा मिलती है। फलित ग्रन्थों में सूर्य को नेत्रों का कारक माना गया है तथा चन्द्रमा एवं शुक्र को उसका सहयोगी। इस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा एवं शुक्र इन तीन ग्रहों से नेत्र तथा उसमें होने वाले विकारों का विचार किया जाता है।

कुण्डली में द्वितीय भाव से दायें नेत्र का तथा द्वादश-भाव से बायें नेत्र का विचार किया जाता है। इन भावों के अलावा षष्ठ एवं अष्टम भाव से भी नेत्रों का विचार किया जाता है। अतः किसी भी व्यक्ति के नेत्रों या नेत्र रोगों का विचार करते समय उक्त चारों भावों का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन कर लेना चाहिए।

नेत्र रोगों के बारे में विचार करते समय आज ज्योतिष शास्त्र के विद्वानों को कुछ सामयिक परिवर्तनों को भी ध्यान में रखना चाहिए। प्राचीन काल में प्रचलित विभिन्न प्रकार के राजदण्डों में आँखों को फोड़ देना या निकाल लेना भी एक प्रकार का राजदण्ड था। परन्तु आधुनिक युग में यह दण्ड समाप्त हो चुका है। अतः ज्योतिष शास्त्र के विभिन्न ग्रंथों में जो राजकोप या राजदण्ड द्वारा नेत्र नाश के योग बतलाये गये हैं, इन योगों का आधुनिक काल की परिस्थिति के साथ तालमेल बैठाकर फलादेश करना विद्वानों का कर्तव्य है। वर्तमान काल में फलादेश करते समय केवल प्राचीन आचार्यों के वचन को ही अन्तिम प्रमाण मान कर चलना, तथा सामयिक परिवर्तनों का ध्यान न रखना किसी भी प्रकार से उचित नहीं कहा जा सकता। यह ठीक है कि हमारे मनीषी आचार्यों ने ग्रहयोगों का भली-भाँति विचार कर उनका जो अन्तिम परिणाम फलादेश के रूप में बतलाया है, वह सब कालों में सत्य रहता है। किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि परिस्थितियों के परि-

वर्तन के साथ परिणाम की प्राप्ति के प्रकार में भी अन्तर आ जाता है। वास्तविकता यह है कि देश, काल एवं परिस्थितियों के परिवर्तन फलादेश को हमेशा ही प्रभावित करते रहते हैं। अतः आधुनिक काल में फलादेश करते समय प्रत्येक ज्योतिषी को अधिक जागरूक रहने की आवश्यकता है। उक्त राजकोप या राजदण्ड से नेत्रनाश के योग के बारे में मेरा विचार यह है कि जिस व्यक्ति की कुण्डली में उक्त योग पूर्णरूपेण घटता हो, उस व्यक्ति के जीवन की तात्कालिक परिस्थितियों के साथ तालमेल बैठाकर किसी व्यक्ति द्वारा किये गये या कराये गये आक्रमण या चोट आदि से उसकी आँखों का फूटना ही इस योग का परिणाम है। इस योग में आक्रमणकर्ता कोई दुष्ट, उग्र, बलवान् या प्रभावशाली व्यक्ति हो सकता है।

नेत्र रोगों का विचार करते समय आज एक अन्य स्मरणीय बात यह है कि वर्तमान युग में शल्य क्रिया द्वारा अन्धता को दूर किया जा सकता है तथा मृत व्यक्ति की आँखों को अन्धे व्यक्ति की आँखों में आरोपित कर उसे दृष्टि शक्ति सम्पन्न भी बनाया जा सकता है। आज चश्मा धारण कर मन्द दृष्टिवाला व्यक्ति भी आसानी से अपने सभी काम काज कर लेता है। प्राचीन काल में यह सम्भव नहीं था। अतः ज्योतिष शास्त्र के प्राचीन ग्रंथों में अन्धता के योगों के अपवाद की कोई खास चर्चा नहीं की गयी। आज अन्धता को दूर करने की उक्त विधियाँ विद्यमान हैं। अतः ज्योतिषियों को इस विषय पर नये सिरे से विचार कर, तथा उक्त सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर ही फलादेश करना चाहिए।

वास्तविकता यह है कि शल्यचिकित्सा या उपचार द्वारा जो नेत्र ज्योति पुनः प्राप्त की जाती है, उसकी ओर इंगित करने वाले ग्रहयोग भी कुण्डली में होते ही हैं, आवश्यकता केवल उनपर ध्यान देने की है। जैमिनी आदि महर्षियों एवं वराहमिहिर, कल्याण वर्मा प्रभृति आचार्यों ने स्पष्ट रूप से बतलाया है कि जिस रोगकारक ग्रह के ऊपर शुभग्रहों की दृष्टि हो, वह रोग उपचार करने से ठीक हो जाता है,[१] अस्तु।

अन्धापन एवं उसके योग

देखने की शक्ति या दृष्टि का नष्ट हो जाना अन्धापन कहलाता है। जातक ग्रन्थों में इस रोग का विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। तथा जन्मान्धता एवं बाद में होने वाले अन्धेपन के योग बतलाये गये हैं। जन्मान्धता के योगों का विचार जन्मजात रोगों के प्रसंग में पहिले किया जा चुका है। अतः यहाँ जन्म के बाद होने वाले अन्धेपन के योगों का विचार करेंगे। जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो, वह अन्धा हो जाता है—

---

१. (क) जैमिनीयसूत्रः शुभदृग्योगान्न, अ० १ पा० १ सू० ४।
(ख) अशुभगदिता योगाः याप्या भवन्ति शुभेक्षिता-बृहज्जातक अ० ४ श्लो० २०।
(ग) याप्या भवन्ति योगाः सौम्यग्रहवीक्षिताः सर्वे—सारावली ६।६०।
(घ) शुभग्रहाणानवलोकहाने चान्धो भवत्येव शुभैर्नदोषः। जातकपारिजात ६।८५।

(१) सिंह लग्न में सूर्य एवं चन्द्रमा हों तथा उन पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो ।[1]

(२) सूर्य अष्टम, चन्द्रमा षष्ठ हो, मंगल द्वितीय में तथा शनि द्वादश स्थान में हो ।[2]

(३) सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों द्वादश भाव में हों ।[3]

(४) षष्ठ एवं अष्टम स्थान में पाप ग्रह हों ।[4]

(५) राहु लग्न में तथा सूर्य सप्तम स्थान में हो ।[5]

(६) द्वितीय एवं द्वादश स्थान में क्रमशः सूर्य एवं चन्द्रमा हो तथा षष्ठ एवं अष्टम भाव में पाप ग्रह हों ।[6]

(७) षष्ठ में चन्द्रमा, अष्टम में सूर्य, नवम में शनि तथा द्वितीय स्थान में मंगल हो ।[7]

(७) मंगल द्वितीयेश होकर सूर्य एवं चन्द्रमा से ८ वें स्थान में हो तथा शनि ६ ठे या १२ वें स्थान में हो ।[8]

(९) शनि एवं मंगल के साथ चन्द्रमा ६, ८ या १२ वें स्थान में हो ।[9]

(१०) द्वितीयेश एवं लग्नेश त्रिक स्थान में हो ।[10]

(११) चतुर्थ एवं पंचम स्थान में पापग्रह हों तथा चंद्रमा ९ वें या १२ वें स्थान में हो ।[11]

(१२) सूर्य एवं चंद्रमा दोनों तृतीय या केन्द्र में हो ।[12]

(१३) पापग्रह की राशि में मंगल हो ।[13]

(१४) शनि की राशि में सप्तम भाव में सूर्य हो ।[14]

(१५) शुभग्रह ६।८ एवं १२ वें स्थान में हों तथा उन परपापग्रहों की दृष्टि हो ।[15]

(१६) कुम्भ राशि में लग्न में मंगल हो ।[16]

(१७) शुक्र एवं लग्नेश के साथ द्वितीय एवं द्वादशेश त्रिक स्थान में हो ।[17]

(१८) शुक्र एवं दो पापग्रहों के साथ चन्द्रमा द्वितीय स्थान में हो ।[18]

(१९) चन्द्रमा त्रिक स्थान में हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो ।[19]

(२०) सिंह लग्न में शनि हो ।[20]

---

१. वृहज्जातक अ० ४ श्लो० २० ।

२. तत्रैव अ० २३ श्लो० १० ।

३-७. सारावली : अ० १० श्लो० ५८, ६०-६१ ।

८. जातक पारिजात: अ० ६ श्लो० ५७ ।

९-१०. जातकपारिजात: अ० ६ श्लो० ५७, ५९ ।

११. जातक पारिजात: अ० ६ श्लो० ७५ ।

१२-२०. जातक तत्व: प्रकीर्ण तत्व सू० २४९-७६ ।

(२१) शनि द्वादश में, चन्द्रमा द्वितीय में तथा सूर्य अष्टम स्थान में हो ।[१]

(२२) लग्न से पंचम स्थान पर सूर्य एवं राहु की दृष्टि हो ।[२]

(२३) शुक्र से पंचम स्थान पर सूर्य एवं राहु की दृष्टि हो ।[३]

(२४) चतुर्थ स्थान में शनि हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो ।[४]

(२५) द्वितीयेश एवं द्वादशेश ये दोनों शुक्र एवं लग्नेश के साथ त्रिकस्थान में हों ।[५]

(२६) शुक्र एवं पापग्रह के साथ चन्द्रमा द्वितीय स्थान में हो ।[६]

(२७) सूर्य एवं चन्द्रमा पापग्रहों के मध्य में हो ।[७]

(२८) सूर्य एवं चन्द्रमा से ७ वें स्थान में मंगल हो तथा बुध पृष्ठोदय राशि में हो ।[८]

आँख फूटना एवं उसके योग

जन्म से सुन्दर एवं स्वस्थ नेत्र वाले व्यक्ति की भी चोट, लड़ाई-झगड़े या अन्य दुर्घटना में आँख फूट जाती है। यह घटना उन लोगों के जीवन में घटती है, जिनकी कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक हो—

(१) शनि या मंगल १२ वें स्थान में हो तो आँख फूट जाती है। इस स्थान में शनि के होने पर दाहिनी आँख तथा मंगल के होने पर बायीं आँख फूटती है ।[९]

(२) सूर्य एवं चन्द्रमा १२ वें स्थान में हो तो आँख फूट जाती है। इस स्थान में रवि होने पर दाहिनी तथा चन्द्रमा होने पर बायीं आँख फूटती है ।[१०]

(३) मंगल एवं शनि के साथ चन्द्रमा अष्टम स्थान में हो तो पित्त-श्लेष्मा (मोतियाबिन्द) के प्रभाव से दाहिना नेत्र नष्ट हो जाता है ।[११]

(४) मंगल एवं शनि के साथ चन्द्रमा षष्ठ स्थान में हो तो उक्त विकार से बायां नेत्र नष्ट हो जाता है ।[१०]

(५) शनि के साथ चन्द्रमा ८ वें स्थान में हो तो वातश्लेष्मा के विकार से दाहिना नेत्र नष्ट हो जाता है ।[१२]

(६) शनि के साथ चन्द्रमा १२ वें स्थान में हो तो उस विकार से बायाँ नेत्र नष्ट हो जाता है ।[१३]

१-४. जातक तत्त्वः प्रकीर्ण सूत्र २४६-७६ ।

५. जातकालंकारः अ० २ श्लो० ३ ।

६. जातकालंकार : अ० २ श्लो० ३ ।

७-८. भावप्रकाशः अ० ३ श्लो० ३ ।

९-१३. सारावली : अ० १० श्लो० ५८-५९, ६३-६६ ।

(७) तीन पापग्रहों के साथ चन्द्रमा शुक्र की राशि में हो तथा उस पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो दोनों आँखें फूट जाती हैं।[१]

(८) लग्नेश एवं द्वितीयेश त्रिक स्थान में हों तो आँखें फूट जाती हैं।[२]

(९) सूर्य एवं चन्द्रमा सिंह लग्न में हों तथा उन पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो तो आँखें फूट जाती हैं।[३]

(१०) द्वादश भाव में स्थित मंगल बांयीं आँख को फोड़ता है।[४]

(११) द्वितीय स्थान में स्थित शनि दाहिनी आँख को फोड़ता है।[५]

(१२) द्वितीयेश, षष्ठेश एवं दशमेश शुक्र के साथ लग्न में हो तो राजकोप या राजदण्ड से आँख फूट जाती है।[६]

(१३) शुक्र एवं मंगल नीच नवांश में पाप ग्रहों के साथ हो तो राजकोप से आँख फूट जाती है।[७]

(१४) दशम एवं षष्ठ स्थान के नवांशेश लग्नेश के साथ त्रिक स्थान में हो तो राजदण्ड से आँखें फूट जाती हैं।[८]

(१५) पंचमेश एवं षष्ठेश के साथ शुक्र लग्न में हो तो राजाज्ञा से आँखें फोड़ दी जाती हैं।[९]

(१६) षष्ठेश एवं दशमेश लग्न में शुक्र एवं द्वितीयेश के साथ हों, तो राजाज्ञा से आँखें फोड़ दी जाती है।[१०]

कानापन एवं उसके योग

दोनों में से किसी एक आँख का फूटना कानापन कहलाता है। यह जन्मजात भी होता है तथा जन्म के बाद भी। जन्मजात काणत्व के योग पिछले अध्याय में बतलाये जा चुके हैं। यहाँ हम जन्म के बाद काना होने के योगों का विचार करेंगे।

नेत्र के प्रतिनिधि ग्रह एवं भाव पर मंगल एवं अन्य पाप ग्रहों के प्रभाववश काणत्व योग बनता है। जातक ग्रन्थों में आँखें फूटने के योगों के साथ-साथ कानेपन के योग भी बतलाये गये हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) द्वादश भाव में क्षीण चन्द्रमा हो तथा उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो बाँये नेत्र से काना होता है।[११]

---

१. दैवज्ञाभरण: द्वितीयभाव विवेचन श्लो० २९।
२-६. जातकतत्व: प्रकीर्णतत्व सू० २६६—७०।
७-८. जातकतत्व: प्रकीर्णतत्व सू० २७१—२।
९. जातकपारिजात: अ० ११ श्लो० ९६।
१०. सर्वार्थ चिन्तामणि: अ० ३ श्लो० ११७।
११. वृहज्जातक: अ० ४ श्लो० २०।

(२) द्वादश भाव में सूर्य हो और उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो दाहिने नेत्र से काना होता है।[1]

(३) लग्न में स्थित मंगल या चन्द्रमा को गुरु एवं शुक्र देखते हों तो मनुष्य काना होता है।[2]

(४) सिंह राशि में सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो तथा उस पर मंगल की दृष्टि हो तो मनुष्य काना होता है।[3]

(५) कर्क राशि में सप्तम में सूर्य हो तथा उस पर मंगल की दृष्टि हो तो मनुष्य काना होता है।[4]

(६) चन्द्रमा एवं शुक्र दोनों १२ वें स्थान में हो।[5]

(७) चन्द्रमा एवं शुक्र दोनों ७ वें स्थान में हो।[6]

पति एवं पत्नी दोनों के काना होने का योग

जिस स्त्री या पुरुष की कुण्डली में निम्नलिखित योग हों वे पति-पत्नी दोनों ही काने होते हैं। यह बहुचर्चित योग इस प्रकार है—

(१) सूर्य एवं चन्द्रमा में से कोई एक षष्ठभाव में तथा दूसरा द्वादश भाव में स्थित हो तथा उन पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति तथा उसकी पत्नी दोनों काने होते हैं। यदि यह योग स्त्री की कुण्डली में हो तो वह स्वयं तथा उसका पति दोनों काने होते हैं।[7]

रतौंधी एवं उसके योग

इस रोग में मनुष्य को रात में दिखलाई नहीं पड़ता है। सूर्य को छोड़कर अन्य नेत्र कारक ग्रह (चन्द्रमा एवं शुक्र) दुःस्थानों में हो या उन पर पापग्रहों का प्रभाव हो तो रतौंधी का योग बनता है। इस रोग के योग इस प्रकार हैं :—

(१) चन्द्रमा के साथ शुक्र षष्ठ, अष्टम या व्यय स्थान में स्थित हो।[8]

(२) शुक्र, चन्द्रमा एवं द्वितीयेश एक साथ हों तथा उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो।[9]

(३) शुक्र, चन्द्रमा एवं द्वितीयेश ये तीनों लग्न में हों।[10]

---

१. बृहज्जातक: अ० ४ श्लो० २०।

२-३. जातकतत्व: प्रकीर्णतत्व सू० २७४-७५।

४-६. जातकतत्व: प्रकीर्णतत्व सू० ७६-७८

७. जातकतत्व: प्रकीर्णतत्व सू० ७८।

८. जातकालंकार: अ० २ श्लो०। जातकतत्व: प्रकीर्णतत्व सू० २६४।

९. जातकपारिजात: अ० ११ श्लो० ६४।

१०. तत्रैव अ० ६ श्लो० ५९।

भेंगापन आदि के योग

भेंगापन, ऐंचाताना, चिमधा, भेंडापन, आँख में फुली आदि भी एक प्रकार के नेत्र विकार ही हैं। इस प्रकार के रोगों के ग्रहयोग इस प्रकार हैं—

(१) सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों वक्रीग्रह की राशि में हों तथा उन पर पाप ग्रह की दृष्टि हो तो जातक भेंगा हाता है।[१]

(२) सूर्य एवं चन्द्रमा वक्री ग्रह की राशि में त्रिक स्थान में हों तो जातक भेंगा होता है।[२]

(३) पाप ग्रह के साथ सूर्य १२ वें स्थान या त्रिकोण में हो तो जातक ऐंचाताना होता है।[३]

(४) द्वितीय या द्वादश स्थान में पापग्रह के साथ शुक्र हो तो जातक चिमधा (अधखुली आँखों वाला) होता है।[४]

(५) लग्न में सूर्य एवं चन्द्रमा हो तथा इन पर शुभ एवं पाप दोनों ग्रहों की दृष्टि हो तो जातक बुद-बुद लोचन (पलक पीटने वाला) होता है।[५]

(६) कर्क लग्न में सूर्य हो तो जातक बुद-बुद लोचन होता है।[६]

(७) लग्न में स्थित सूर्य एवं चन्द्रमा को मंगल एवं बुध देखते हों तो आँख में फूली होती है।[७]

विविध नेत्र रोगों के योग

दृष्टि का कमजोर होना, आँखों में दर्द होना, पानी बहना, आँखें दुखनी आना अनेक प्रकार के नेत्र रोग हैं। निश्चय निम्नलिखित ग्रह योगों के आधार पर करना चाहिये

(१ षष्ठेश वक्री ग्रह की राशि में हो तो आँखें दुखती हैं।[८]

(२) लग्नेश मंगल या बुध की राशि में हो तथा उस पर मंगल या बुध की दृष्टि हो तो नेत्र में पीड़ा होती है।[९]

(३) अष्टमेश एवं लग्नेश षष्ठस्थान में हो तो बायें नेत्र में रोग होता है।[१०]

(४) षष्ठ या अष्टम स्थान में शुक्र हो तो दाहिने नेत्र में रोग होता है।[११]

---

१. जातकतत्व: प्रकीर्णतत्व सू० २२५।

२. ४. जातकत्व: प्रकीर्णतत्व सू० २२६-२८।

५. वृहज्जातकत्व: अ० ४ श्लो० २०।

६. जातक पारिजात: अ० ६ श्लो० ५३।

७. सारावली: अ० ८ श्लो० ५४।

८. ९. जातकतत्व: प्रकीर्णतत्व सू० २२९-३०।

१०-११. जातकतत्व: प्रकीर्णतत्व, सू० २३१-४१।

(५) धनेश पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तथा लग्नेश पाप ग्रहों के साथ हो तो दृष्टि कमजोर हो जाती है।[१]

(६) शनि, मंगल या गुलिक के साथ द्वितीयेश हो तो आँखों में दर्द होता है।[२]

(७) द्वितीय स्थान में पाप ग्रह हों तथा उन पर शनि का दृष्टि हो तो नेत्र रोग से दृष्टि नष्ट हो जाती है।[३]

(८) द्वितीय भाव के नवांश का स्वामी पाप ग्रह की राशि में हो तो किसी रोग से दृष्टि नष्ट हो जाती है।[४]

(९) लग्न या अष्टम स्थान में स्थित शुक्र पर क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो तो रोने से नेत्र रोग होता है।[५]

(१०) लग्न में शयनावस्था का मंगल हो तो नेत्र रोग होता है।[६]

(११) द्वितीयेश एवं शुक्र साथ-साथ हो तो नेत्र रोग होता है।[७]

(१२) शुक्र से ६, ८ या १२ वें स्थान में द्वितीयेश हो तो नेत्र रोग होता है।[८]

(१३) त्रिकोण में सूर्य हो तथा उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो तो ज्योति नष्ट हो जाती है।[९]

(१४) लग्न में सूर्य हो तो दृष्टि कमजोर हो जाती है।[१०]

(१५) अष्टम स्थान में सूर्य हो तो दृष्टि कमजोर हो जाती है।[११]

(१६) सूर्य-शुक्र एवं मंगल तीनों एक साथ हो तो नेत्र रोग होता है।[१२]

(१७) चन्द्रमा एवं मंगल त्रिक स्थान में हों तो गिर जाने से नेत्र में चोट लग जाती है।[१३]

(१८) गुरु एवं चन्द्रमा त्रिकस्थानों में हों तो जलने या धुएँ से आँखें खराब हो जाती है।[१४]

(१९) द्वितीय या द्वादश स्थान में शनि मंगल से युत या दृष्ट सूर्य एवं चन्द्रमा हो तो नेत्र रोग होता है।[१५]

(२०) द्वितीयेश शनि, मंगल एवं गुलिक के साथ हो तो नेत्र रोग होता है।[१६]

(२१) द्वितीय स्थान में अनेक पापग्रह हों तथा उस पर शनि की दृष्टि हो तो नेत्र रोग होता है।[१७]

१-९. जातकतत्व : प्रकीर्णतत्व, सू० २३१-४१।
१०-११. वृहज्जातक : अ० २० श्लो० ११३।
१२. सारावली : अ० १६ श्लो० ८।
१३-१४ जातकत्व : प्रकीर्णतत्व सू० २४५-४६।
१५. फलदीपिका अ० १४ श्लो० १०।
१६-१७. जातक पारिजातः अ० ११ श्लो० ६८।

(२२) शनि, मंगल, चन्द्रमा एवं सूर्य में बलवान होकर क्रमशः द्वितीय, षष्ठ, अष्टम एवं व्यय स्थान में हो तो वायुविकार से नेत्र रोग होता है।[१]

(२३) द्वितीयेश त्रिक स्थान में हो तथा उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो वृद्धावस्था के कारण नेत्र रोग होता है।[२]

(२४) द्वितीयेश या व्ययेश सूर्य हो और उस पर शनि एवं गुलिक की दृष्टि हो तो कफ एवं पित्त के विकार से नेत्र रोग होता है।[३]

कर्णरोग

कर्णरोग प्रधानतया दो प्रकार के होते हैं—१ जन्मजात, २—आगन्तुक। जन्म से ही बहिरा होना जन्मजात कर्ण रोग है इसका विचार पिछले अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ आगन्तुक कर्णरोगों का विचार किया जा रहा है। जन्म के बाद बहिरा होना, कम सुनाई देना, कान फटना, कान में दर्द होना या मवाद पड़ना आदि सब आगन्तुक कर्ण रोग होते हैं।

जातक ग्रंथों में उक्त सभी प्रकार के कर्णरोगों का विचार किया गया है। कान का प्रमुख प्रतिनिधि ग्रह शनि होता है। तथा बुध एवं शुक्र उसके सहायक ग्रह माने गये हैं। कुण्डली में तृतीय एवं एकादश भाव दोनों कानों के प्रतिनिधित्व करते हैं। तथा पंचम एवं नवम भाव उसके सहायक होते हैं। कुछ आचार्य द्वितीय भाव से ही आँख, कान, एवं गले का विचार करते हैं। इस प्रकार शनि बुध एवं शुक्र इन तीनों ग्रहों तथा द्वितीय, तृतीय, पंचम, नवम एवं एकादश भावों एवं उनके स्वामियों पर पाप प्रभाव से, उक्त ग्रह एवं उक्त भावों के स्वामियों के दुःस्थान में स्थित होने से अथवा इन सबके पापान्वित या निर्बल होने से कर्ण रोग होते हैं।

नेत्र रोगों का विचार करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि आजकल जिस प्रकार मन्ददृष्टि वाला व्यक्ति चश्मा लगाकर अपने सभी काम कर लेता है, उसी प्रकार कम या ऊँचा सुनने वाला व्यक्ति सुनने की मशीन (Hear Aid) लगाकर सब बातें सुन सकता है। प्राचीन काल में इस प्रकार के साधनों के न होने से उनका विचार नहीं किया गया। किन्तु प्राचीन काल के महर्षियों एवं मनीषियों ने उपचार या साधन द्वारा उक्त रोगों के दूर हो जाने का उल्लेख किया है। उसी के आधार पर कर्णरोगों के साध्य या असाध्य होने का निर्णय करना चाहिए। यदि कर्णरोग कारक ग्रहों पर किसी शुभ ग्रह की दृष्टि हो[४] तो ये रोग चिकित्सा, उपचार या मशीन आदि के उपयोग से साध्य हो जाते हैं।

१-३. गदावली: अ० १ श्लो० ५ एवं ४।

४. देखिए—(क) बृहज्जातक अ० ४ श्लो० २०।

(ख) सारावली अ० ६ श्लो० ६०।

(ग) जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ८५।

बहिरापन एवं उसके योग

कानों से सुनाई पड़ने की शक्ति का नष्ट हो जाना बहिरापन कहलाता है। कान के रोगों में बहिरापन मुख्य है। यह जन्मजात भी होता है और जन्म के बाद भी। जन्मजात बधिरता का विचार पिछले अध्याय में किया जा चुका है। अतः यहाँ जन्म के बाद होने वाली बधिरता का विचार किया जायेगा।

जातक ग्रन्थों में बधिरता के सूचक अनेक योग बतलाये गये हैं। यहाँ हम उन ग्रह योगों को प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनमें उत्पन्न व्यक्ति जन्म के बाद बधिर हो जाता है—

(१) तृतीयेश पापग्रह एवं किसी शुष्क ग्रह (सूर्य, मंगल या शनि) के साथ हो।[१]
(२) तृतीयेश शुष्क ग्रह के साथ अपने शत्रु की राशि में हो।[२]
(३) शनि से चतुर्थ में बुध हो तथा षष्ठेश त्रिक स्थान में हो।[३]
(४) पूर्ण चन्द्रमा एवं शुक्र अपने शत्रु के साथ हो।[४]
(५) षष्ठस्थान में बुध हो, दशम में शुक्र हो तथा रात्रि में जन्म हो।[५]
(६) बुध एवं षष्ठेश पर पापग्रहों की दृष्टि हो।[६]
(७) तृतीय, एकादश एवं त्रिकोण स्थानों में पापग्रह हो तथा उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।[७]
(८) षष्ठेश त्रिकस्थान में हो तथा उस पर शनि की दृष्टि हो।[८]

कम सुनाई देने के योग

कम सुनाई देना भी एक प्रकार का रोग है। यह किसी रोग के प्रभाववश या वृद्धावस्था के कारण होता है। ज्योतिष शास्त्र में इसके भी कुछ योग बतलाये गये हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) बुध के साथ शुक्र द्वादश स्थान में हो तो बांये कान से कम सुनाई देता है।[९]
(२) नवम, एकादश, तृतीय एवं पंचम भाव में पापग्रह हो तथा उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।[१०]
(३) द्वितीयेश एवं मंगल—ये दोनों लग्न में हों।[११]
(४) मेष, वृष एवं कर्क राशियों को छोड़कर किसी भी अन्य राशि में लग्न में चन्द्रमा हो[१२]।

१-२. दैवज्ञाभरणः ११ प्रकाश—श्लो० ४।
३-८. जातकतत्वः प्रकीर्णतत्व सू० २७६-८५।
९. जातकतत्वः प्रकीर्णतत्व सू० २८२।
१०. बृहज्जातकः अ० २३ श्लो० ११
११. जातकपारिजात अ० ११ श्लो० ६७।
१२. सारावली अ० ३० श्लो० १४।

कान कटने के योग

कुछ लोगों के कान लड़ाई-झगड़े या दुर्घटना में कट जाते हैं। कान कटने की यह घटना उन लोगों के जीवन में घटती है, जिनकी कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो—

(१) सूर्य, शनि एवं चन्द्रमा तृतीय, पंचम, सप्तम या नवम स्थान में हो और उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।[१]

(२) चन्द्रमा से सप्तम में शनि हो तथा शुक्र एवं सूर्य दोनों लग्न में हों।[२]

(३) नीच राशि में राहु के साथ शुक्र हो।[३]

(४) कारकांश में केतु हो तथा उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो।[४]

कान में दर्द, मवाद पड़ना, बहना आदि के योग

कान में दर्द होना, मवाद पड़ना, सड़ जाना एवं बहना आदि कर्णरोग कहलाते हैं। इन सब कर्ण रोगों का विचार मुख्यतया तृतीय भाव एवं तृतीयेश ग्रह पर पाप प्रभाव से किया जाता है। कुछ आचार्यों ने इन रोगों का विचार द्वितीय एवं एकादश भाव से भी किया है।

जिस व्यक्ति की कुन्डली में अधोलिखित योगों में से कोई एक योग हो, उसके कान में कोई न कोई बीमारी होती है—

(१) मंगल एवं गुलिक तृतीय भाव में हो तो कान में दर्द होता है।[५]

(२) तृतीय स्थान में पापग्रह हो तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो कान में दर्द होता हैं।[६]

(३) तृतीयेश क्रूर ग्रहों की षष्ठ्यंश में हो तो कान सड़ जाता है।[७]

(४) तृतीय भाव में शनि एवं गुलिक हो तो कान में मवाद पड़ जाता है।[८]

(५) लग्न में धनेश एवं मंगल हो।[९]

(६) तृतीयेश की राशि का स्वामी जिस राशि तथा नवांश में हो उसका स्वामी केन्द्र में हो और वह पाप ग्रह से दृष्ट या युत हो।[१०]

(७) द्वितीय या द्वादश स्थान में शुक्र या मंगल हो।[११]

(८) लाभेश पापग्रहों से दृष्ट एवं युक्त हो।[१२]

(९) तृतीय भाव में गुलिक के षष्ठ्यंश में मंगल हो।[१३]

१-३. जातकतत्वः प्रकीर्णतत्व सू० २८६-८८।

४. जैमिनीयसूत्र अ० १ पा० २ सू० ३२।

५-७. जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ६६-६७।

८-१३. गदावलीः प्रकरण २ श्लोक १७-२०।

नासा रोग एवं उसके योग—

नक्की चलना, पीनस एवं नाक कटना आदि सब नासा रोग कहलाते हैं। रोग में चन्द्रमा एवं शुक्र जैसे जलीय ग्रह के होने से तथा लग्न या लग्नेश पर पापग्रहों का प्रभाव होने से नासा रोग होते हैं। ये रोग प्रायः प्राणघातक नहीं होते। अतः इन्हे क्षुद्र रोग माना गया है। फलित ज्योतिष के ग्रंथों में क्षुद्र-रोग होने के कारण इन रोगों की यत्र-तत्र चर्चा की गयी है।

जिस व्यक्ति की कुण्डली में अधोलिखित योगों में से कोई योग हो उसे किसी प्रकार का नासा-रोग होता है—

(१) मंगल, शुक्र एवं शनि ये तीनों एक स्थान में हों तो जातक की नक्की चलती है।[१]

(२) षष्ठ स्थान में चन्द्रमा, अष्टम में शनि द्वादश में पापग्रह हो तथा लग्नेश पापग्रह के नवांश में हो तो पीनस रोग होता है।[२]

(३) षष्ठ स्थान में शुक्र तथा लग्न में मंगल हो तो नाक कट जाती है।[३]

मुखरोग

जिह्वारोग, मूकत्व, हकलाहट, तुतलाहट, आदि वाग्विकार, दन्तरोग, तालु रोग एवं मुख से दुर्गन्धि आना—ये सब मुख रोग कहलाते हैं।

द्वितीय भाव मुखरोगों का प्रतिनिधि भाव है तथा बुध इन रोगों का प्रतिनिधि ग्रह है। लग्न एवं षष्ठ भाव सहायक भाव होते हैं तथा गुरु सहायक ग्रह माना गया है। अतः द्वितीय षष्ठ एवं लग्न-इन तीनों भावों, इनके स्वामियों तथा बुध एवं गुरु से उक्त रोगों का विचार किया जाता है। उक्त भावों पर पाप ग्रहों का प्रभाव, उक्त भावों के स्वामी तथा बुध गुरु का दुःस्थान में बैठना, पापग्रहों से दृष्टयुत होना या निर्बल होना—विविध प्रकार के मुख रोगों का सूचक होता है।

जिह्वारोग के योग

जीभ में छोल होना या जीभ का कट जाना आदि जिह्वा रोग कहे जाते हैं। इन रोगों का विचार मुख्य रूप से बुध एवं द्वितीयेश से किया जाता है। जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो, उसे जिह्वा रोग होते हैं—

---

१. वीरसिंहावलोक-नासारोगाधिकार पृ० २५६।
२. देखिए—(क) सर्वार्थ चिन्तामणि अ० ५ श्लोक ४१।
(ख) जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ९६।
(ग) गदावली प्रकरण १ श्लोक १६।
३. जातकतत्वः प्रकीर्णतत्व—सू० २८९।

(१) बुध षष्ठ भाव का स्वामी हो तो जीभ पर छाले हो जाते हैं।[1]

(२) द्वितीयेश एवं राहु त्रिकस्थान में हो तो उसकी दशा में बुध की अन्तर्दशा आने पर जीभ कट जाती है या जिह्वा रोग होता है।[2]

(३) राहु की आक्रान्त राशि के स्वामी के साथ द्वितीयेश त्रिक स्थान में हो तो उसकी महादशा में बुध की अन्तर्दशा आने पर जीभ कटती है या जिह्वा रोग होता है[3]।

मूकत्व एवं उसके योग

मूकत्व दो प्रकार का होता है—१. जन्मजात एवं २. आगन्तुक। जन्म से ही गूँगा होना जन्मजात मूकत्व कहलाता है तथा जन्म के बाद किसी बीमारी या अन्य कारण से गूँगा होना आगन्तुक मूकत्व कहा जाता है। जन्मजात-मूकत्व के योगों का विचार पिछले अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ हम आगन्तुक मूकत्व का विचार करेंगे।

कुण्डली में द्वितीय भाव वाणी का प्रतिनिधि भाव होता है तथा बुध एवं गुरु वाणी के प्रतिनिधि ग्रह माने गये हैं। षष्ठ भाव रोग का भाव तथा लग्न स्वास्थ्य का प्रतिनिधित्व करता है। अतः लग्न एवं द्वितीय भाव पर पाप ग्रहों का प्रभाव, द्वितीयेश बुध एवं गुरु पर पापप्रभाव, इनका दुःस्थान में बैठना, पापग्रहों से युत दृष्ट होना एवं निर्बल होना आदि सब बातें मूकत्व की द्योतक मानी गयी हैं।

जातक ग्रन्थों में गूंगापन के अनेक योग बतलाये गये हैं। जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो, वह गूंगा होता है—

(१) द्वितीयेश गुरु के साथ त्रिक स्थान में हो।[4]

(२) द्वितीयेश एवं गुरु अष्टम स्थान में हो।[5]

(३) कर्क, वृश्चिक या मीन राशि में स्थित बुध को अमावस्या का चन्द्रमा देखता हो।[6]

(४) षष्ठेश एवं बुध लग्न में हों।[7]

(५) षष्ठेश एवं गुरु लग्न में हों।[8]

(६) कर्क, वृश्चिक, या मीन राशि में स्थित बुध पर चन्द्रमा की दृष्टि हो, चतुर्थ में सूर्य हो तथा षष्ठस्थान में पापग्रह हो।[9]

(७) शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा मंगल के साथ लग्न में हो।[10]

---

१. जातक तत्वः प्रकीर्णतत्व सू० ३१४।

२-३. (क) जातक पारिजात अ० ११ श्लो० ७४।
(ख) गदावली प्रकरण २ श्लो० ८।

४. सर्वार्थ चिन्तामणि अ० ३ श्लो० ३०।

५. जातक पारिजात अ० ११ श्लो० ७६।

६-१०. जातक तत्व : प्रकीर्ण सू० २६३—६८।

(८) द्वितीयेश चतुर्थेश के साथ त्रिक् स्थान में हो।[१]

हकलाहट के योग

बोलते समय कुछ शब्द पर अटक जाना हकलाहट कहलाता है। यह रोग द्वितीयेश एवं बुध के निर्बल होने तथा द्वितीय भाव पर पाप ग्रहों का प्रभाव होने से होता है। जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित कोई एक योग हो वह हकलाता है—

(१) द्वितीयेश निर्बल होकर क्रूर ग्रह के नवांश में हो।[२]

(२) द्वितीय भाव में पाप ग्रह या पापग्रहों का नवांश हो तथा उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो।[३]

(३) नवमेश शुक्र हो।[४]

(४) निर्बल बुध द्वितीय स्थान में हो तथा उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।[५]

(५) द्वितीयेश निर्बल एवं पापग्रहों से दृष्ट हो।[६]

तुतलाहट के योग

शब्दों का अस्पष्ट उच्चारण तुतलाहट कहलाता है। यह रोग बुध, चन्द्रमा एवं द्वितीय भाव पर शनि का प्रभाव होने के कारण होता है। इस रोग के योग इस प्रकार हैं।

(१) सप्तमेश से द्वितीय स्थान में केतु हो।[७]

(२) बुध शनि की राशि में हो तथा उस पर शनि की दृष्टि हो।[८]

(३) चन्द्रमा शनि के साथ हो।[९]

दन्तरोगों के योग

पाइरिया, दाँतों में दर्द, कीड़ा लगना तथा दांतों का टूट जाना आदि दन्तरोग कहलाते हैं। जातक ग्रन्थों में इन रोगों के सूचक निम्नलिखित ग्रह योग बतलाये गये हैं—

(१) षष्ठ भाव में राहु या केतु हो तो दांतों में पीड़ा होती है।[१०]

(२) लग्न में मेष, वृष या धनु राशि हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो पाइरिया होता है।[११]

(३) व्यय स्थान में चन्द्रमा, त्रिकोण में शनि तथा सप्तम या अष्टम में सूर्य हो।[१२]

---

१. दैवज्ञाभरण प्र० १० श्लो० ६३।

२. जातक तत्व : प्रकीर्ण—सू० ३१७।

३-४. जातकतत्व प्रकीर्ण—सू० ३१८—१९।

५-६. सर्वार्थ चिन्तामणि अ० ३ श्लो० १५१—२।

७-९. जातकतत्व प्रकीर्ण सू० ३१५,१६ एवं २०।

१०. जातकालंकार अ० १ श्लो० २०।

११. जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ४५।

१२. जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ८४।

(४) व्यय स्थान में शुक्र, त्रिकोण में शनि तथा सप्तम में सूर्य हो।[1]

(५) द्वितीयेश राहु के साथ त्रिक स्थान में हो तो उसकी दशा—अन्तर्दशा में दन्तरोग होता है।[2]

(६) लग्न में गुरु एवं राहु हों।[3]

(७) सप्तम स्थान में पापग्रह हों तथा उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।[4]

(८) सप्तम स्थान में चन्द्रमा, शनि एवं सूर्य हों तो दाँत टूट जाते हैं।[5]

(९) धनेश एवं षष्ठेश पाप ग्रहों के साथ हो[6]।

(१०) राहु लग्न या पंचम स्थान में हो।[7]

(११) शुक्र एवं शनि अष्टम में, पाप ग्रह षष्ठ में तथा षष्ठेश सप्तम में हो।[8]

(१२) षष्ठेश मंगल की राशि में, लग्नेश एवं मंगल लग्न में हो और उन पर शनि की दृष्टि हो।[9]

तालुरोग

फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में बुध एवं द्वितीयेश से तालु का विचार किया जाता है। इसका प्रतिनिधि भाव द्वितीय भाव माना गया है। अतः बुध एवं द्वितीयेश का रोग स्थान में बैठना, पापग्रहों से प्रभावित होना या द्वितीय स्थान पर पापग्रहों का प्रभाव होने से तालु रोग होते हैं। जातक ग्रन्थों में इस रोग के सूचक निम्नलिखित दो योग मिलते हैं। जिसकी कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो उसे तालु रोग होते हैं—

(१) द्वितीयेश एवं बुध षष्ठ स्थान में राहु या केतु के साथ हों।[10]

(२) द्वितीयेश एवं बुध षष्ठ स्थान में हो और वे राहु या केतु की आक्रान्त राशि के स्वामी के साथ हों।[11]

अन्य मुख रोगों के योग

जिह्वा दन्त, तालु एवं वाणी सम्बन्धी विकारों के अलावा मुख में छाले होना, सूजन आना, बदबू आना आदि मुख के अन्य रोग होते हैं। मुख का विचार द्वितीय भाव, द्वितीयेश एवं बुध से किया जाता है। अतः यदि द्वितीयेश या बुध त्रिक्स्थान में हो, लग्न में हो, पापग्रहों से युत या दृष्ट हो, द्वितीय भाव में पापग्रह हो तो मुख रोग होता है। छाले, घाव आदि का प्रतिनिधि ग्रह मंगल होता है। यदि मंगल का द्वितीयेश, बुध या द्वितीय भाव पर प्रभाव हो तो मुख में छाले होते हैं। गन्ध के प्रतिनिधि ग्रह चन्द्रमा एवं

---

१. जातक पारिजात अ० ११ श्लो० ७४।

२. जातक तत्वः षष्ठ विवेक सू० ६१।

३-७. तत्रैवः प्रकीर्ण० सू० ३२२-२६।

८-९. गदावली प्र० १ श्लो० १२।

१०-११. देखिए—(क) सर्वार्थचिन्तामणि अ० ३ श्लोक ११६।
(ख) दैवज्ञाभरण प्र० १० श्लोक ३५।

शुक्र होते हैं। यदि ये लग्न में हों तथा द्वितीयेश या बुध दुःस्थान में हो तो मुँह में वदबू आने का योग वनता है। जातक ग्रन्थों में विविध मुख रोगों के निम्नलिखित योग वतलाये गये हैं—

(१) लग्नेश एवं मंगल बुध की राशि में हों तथा उनपर बुध की दृष्टि हो तो मुँह में छाले होते हैं।[१]

(२) षष्ठस्थान में राहु या केतु हो तो मुख रोग होता है।[२]

(३) द्वितीय त्रिक् स्थान में हो तथा पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो मुख रोग होता है।[३]

(४) द्वितीय स्थान में पापग्रह हो तो मुख रोग होता है।[४]

(५) मंगल की राशि में बुध के साथ लग्नेश हो तो मुँह में छाले होते है।[५]

(६) द्वितीय स्थान में सूर्य एवं मंगल हों तो मुँह में छाले होते हैं।[६]

(७) गुरु या शुक्र षष्ठेश होकर लग्न में हो तथा उस पर क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो तो मुँह में सूजन आ जाती है।[७]

(८) लग्न में मेष राशि में चन्द्रमा हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो मुँह से वदबू आती है।[८]

(९) मेष लग्न में चन्द्रमा एवं शुक्र हो तथा पष्ठ स्थान में बुध हो तो मुँह से दुर्गन्धि आती है।[९]

(१०) मेष या कर्क राशि में शुक्र हो तो मुख से दुर्गन्धि आती है।[१०]

(११) लग्न में चन्द्रमा हो तथा बुध षष्ठेश हो तो मुख से वदबू आती है।[११]

कण्ठरोग

गलगण्ड, गण्डमाला एवं गले के अन्य विकारों को कण्ठरोग कहते हैं। ये रोग प्रायः सूर्य की दशा में शुक्र के अन्तर में या शुक्र की दशा में सूर्य के अन्तर में होते हैं। इन रोगों का विचार मुख्यतया तृतीय भाव से होता है। तृतीय स्थान में पापग्रह होने पर, तृतीयेश के पापग्रहों के साथ होने पर ये रोग होते हैं। योग इस प्रकार हैं :—

१-२. दैवज्ञाभरण प्र० १० श्लो० ८-९।
३-४. दैवज्ञाभरण प्र० १० श्लो० ९-१०।
५-६. जातकतत्व : षष्ठविवेक सू० ८७-८८।
७-८. जातकालंकार अ० २ श्लो० २९ एवं ५१।
९-११. जातकतत्वः प्रकीर्ण सू० २९०-९२।
१२. देखिए सारावली : अ० ४२ श्लो० १६ एवं ४२।

गलगण्ड एवं गण्डमाला के योग

निम्नलिखित योगों में उत्पन्न व्यक्ति को गलगण्ड या गण्डमाला होता है—

(१) सूर्य की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा हो ।[1]

(२) शुक्र की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा हो ।[2]

(३) सूर्य के साथ लग्नेश त्रिक् स्थान में हो ।[3]

(४) सूर्य एवं मंगल षष्ठ या द्वादश स्थान में हो तथा उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो ।[4]

(५) चन्द्रमा के साथ लग्नेश त्रिक् स्थान में हो तो जलज गण्ड होता है ।[5]

(६) लग्नेश, षष्ठेश एवं चन्द्रमा—ये तीनों त्रिक स्थान में हों तो जलज गण्ड होता हैं ।[6]

(७) लग्न में मकर का नवांश हो और उस पर पाप-ग्रहों की दृष्टि हो तो गले में गांठ होती है ।[7]

गले के अन्य रोगों के योग

अधोलिखित योगों में से किसी भी एक योग में उत्पन्न व्यक्ति के गले में रोग होता है—

(१) तृतीय भाव में नीच राशिगत, शत्रुराशिगत या अस्तंगत ग्रह हो तथा उसे पाप ग्रह देखता हो ।[8]

(२) तृतीय भाव में पापग्रह हो तथा वह गुलिक आदि के साथ हो ।[9]

(३) केन्द्र या त्रिकोण में राहु या केतु हो ।[10]

(४) तृतीयेश बुध के साथ हो ।[11]

(५) चन्द्रमा चतुर्थ भाव में चतुर्थभाव के नवांश के स्वामी एवं पापग्रह के साथ हो तो कण्ठ में रोग होता है ।[12]

---

१. सारावली अ० ४२ श्लो० १६ ।

२. तत्रैवः अ० ४२ श्लो० ४२ ।

३. जातकालंकार : अ० २ श्लो० २३ ।

४. जातकतत्वः षष्ठविवेक सू० ३७ ।

५. जातकालंकार अ० २ श्लो० २४ ।

६-७. जातकतत्व षष्ठविवेक सू० ४१-४२ ।

८-११. देखिए—(क) जातकपारिजात अ० ६ श्लो० ६५, ६६, ७४ तथा अ० १२ श्लो० ४२ ।
(ख) सर्वार्थ चिन्तामणि अ० ४ श्लो० ४४, ४५, ४७ ।
(ग) दैवज्ञाभरण प्रकाश ११ श्लो० १८, १९ ।

१२. देखिए—(क) जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ८२ ।
(ख) ज्ञातकतत्व—षष्ठविवेक सू० ८४ ।

गले के रोग से मृत्यु का योग

जातक ग्रन्थों में[१] अष्टम स्थान को आयु का स्थान माना गया है। यदि इस स्थान में नीच राशि गत गुरु स्थित हो तो गले के रोग से या गला घुट जाने से मृत्यु होती है।[२]

हस्त रोग

लूलापन, हाथ कटना एवं हाथ में पीड़ा होना आदि हस्त रोग कहलाते हैं। इन रोगों का विचार जातक ग्रन्थों में ग्रहयोगों के आधार पर किया गया है।

लूलापन एवं उसके योग

हाथ में हथेली का टेढ़ा-मेढ़ा होना, न होना या कट जाना लूलापन कहलाता है। यह रोग जन्मजात भी होता है तथा जन्म के बाद में भी जन्मजात लूलेपन के योगों का विचार पिछले अध्याय में सहज रोगों का विचार करते समय किया जा चुका है। यहाँ हम जन्म के बाद होने वाले लूलेपन के योगों का विचार करना चाहते हैं। जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो, वह लूला होता है—

(१) नवम भाव में शनि एवं तृतीय में गुरु हो।[३]

(२) अष्टम स्थान में शनि एवं द्वादश में गुरु हो।[४]

(३) राहु, शनि एवं बुध—ये तीनों दशम स्थान में हों।[५]

हाथ कटने के योग

जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो, उसके हाथ कट जाते हैं—

(१) तृतीय या नवम भाव में शनि एवं गुरु हो।[६]

(२) अष्टम या द्वादश स्थान में सूर्य हो।[७]

(३) मंगल के साथ चन्द्रमा सप्तम या अष्टम में हो।[८]

(४) गुरु के साथ चन्द्रमा सप्तम या अष्टम में हो।[९]

(५) षष्ठ स्थान में राहु के भोग्यांश में शनि एवं मंगल हो।[१०]

(६) षष्ठ स्थान में, शत्रु राशि में शुक्र के साथ शनि हो।[११]

---

१. लघुपाराशरी अ० ३ श्लो० १।

२. सर्वार्थ चिन्तामणि अ० ६ श्लो० ५०।

३-५. जातक पारिजात अ० ५ श्लो० ६३।

६-९. सर्वार्थ चिन्तामणि अ० ५—षष्ठभावविचार श्लो० १५।

१०-११. जातक तत्व : प्रथम विवेक सू० ३२८-२९।

हाथ में पीड़ा होने के योग

जातक ग्रन्थों में हाथ में पीड़ा होने का विचार सूर्य, चन्द्रमा एवं शनि से किया गया है। फलितग्रन्थों[१] में बतलाया गया है कि यदि सूर्य, चन्द्र एवं शनि, षष्ठ, अष्टम या द्वादश स्थान में हों, तो हाथ मे पीड़ा होती है।

हृदय रोग के योग

चतुर्थ भाव से हृदय का विचार किया जाता है। अतः चतुर्थ भाव एवं चतुर्थेश पर पाप प्रभाववश हृदय रोग होता है। यह रोग बहुधा मन एवं मस्तिष्क पर दबाव के कारण होता है। प्रायः देखा जाता है कि आवेग, उद्वेग या संवेग की उग्रतावश दिल का दौरा पड़ जाता है। ज्योतिष शास्त्र में मन का विचार चतुर्थ भाव से तथा मस्तिष्क का विचार पंचम भाव से होता है। अतः वैद्यनाथ प्रभृति कुछ आचार्यों ने चतुर्थ एवं पंचम इन दोनों भावों पर पापग्रहों के प्रभाव को इस रोग का कारण माना है।[२] जातक ग्रन्थों में इस रोग के अनेक योग बतलाये गये हैं। जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो तो उसे यह रोग होता है—

(१) चतुर्थ स्थान में पाप ग्रह हों तथा चतुर्थेश पापग्रहों के साथ हो।[३]

(२) चतुर्थ स्थान में पापग्रह हों तथा चतुर्थेश दो पापग्रहों के मध्य में हो।[४]

(३) चतुर्थेश जिस नवांश में हो उसका स्वामी क्रूर षष्ठ्यंश में हो तथा उस पर क्रूर ग्रह की दृष्टि हो।[५]

(४) चतुर्थेश अष्टमेश के साथ अष्टम स्थान में हो।[६]

(५) नीच राशिगत, शत्रुराशिगत या अस्तंगत चतुर्थेश अष्टम स्थान में हो।[७]

(६) चतुर्थ स्थान में शनि हो तथा सूर्य एवं षष्ठेश पापग्रहों के साथ हों।[८]

(७) सूर्य, मंगल एवं गुरु चतुर्थ स्थान में हो।[९]

(८) चतुर्थ एवं पंचम स्थान में पाप ग्रह हों।[१०]

(९) चतुर्थ एवं पंचम स्थान में क्रूर षष्ठ्यंश हो तथा शुभग्रहों से दृष्टयुत न हो।[११]

(१०) चतुर्थ स्थान में शनि हो।[१२]

(११) कुम्भ में सूर्य हो।[१३]

---

१. देखिए—(क) जातकालंकारः अ० ३ श्लो० २७-२८।
(ख) जातक तत्वः प्रथम विवेक सू० ३३०।

२. देखिए—जातकपारिजात अ० १३ श्लो० ६९।

३-७. सर्वार्थ चिन्तामणि अ० ५ श्लो० ६५-६७।

८-९. जातकालंकार अ० ३ श्लो० ३५-३६।

१०-११. जातक पारिजात अ० १३ श्लो० ६९।

१२. सारावली अ० ३० श्लो० ७७।

१३. तत्रैव, अ० २३ श्लो० ६४।

हृदयशूल

हृदय में तीव्र दर्द या असह्य वेदना को हृदयशूल कहते हैं। इसका विचार चतुर्थ भाव, चतुर्थेश एवं सूर्य से किया जाता है। इस रोग के योग इस प्रकार हैं :—

(१) चतुर्थ में स्थित राहु पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तथा लग्नेश निर्बल हो।[१]

(२) चतुर्थेश की राशि तथा नवांश का स्वामी कूर षष्ठ्यंश में हो और पापग्रहों से दृष्ट हो।[२]

(३) पाप ग्रहों के साथ सूर्य वृश्चिक राशि में हो।[३]

(४) षष्ठेश सूर्य पापक्रान्त हो तथा शुभग्रह षष्ठ एवं व्ययस्थान में हो।[४]

(५) द्वादश स्थान में राहु हो तो गैस या वायु से हृदय में दर्द होता है।[५]

हृत्कम्प

दिल में होने वाली घबड़ाहट या बेचैनी को हृत्कम्प कहते हैं। यदि इसकी समुचित चिकित्सा न की जाय तो यह हृदय को रुग्ण कर देता है। इस रोग के योग इस प्रकार हैं —

(१) चतुर्थ स्थान में शुभ ग्रह हों।[६]

(२) दिन में जन्म हो तथा नष्ट मंगल को गुरु देखता हो।[७]

(३) शुभ ग्रह कूराक्रान्त हों तथा षष्ठेश पापयुक्त हो।[८]

(४) सूर्य वृश्चिक राशि में हो।[९]

उदर रोग

उदर में होने वाले रोगों को उदर रोग कहते हैं। अरुचि, मन्दाग्नि, अजीर्ण, अतिसार, संग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, कृमि, जलोदर, एवं उदर शूल आदि सब रोग उदर रोग कहलाते हैं। फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में इन सभी उदर रोगों का विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

उदर विकार का प्रतिनिधि ग्रह चन्द्रमा होता है। यदि यह सिंह राशि में हो, लग्न या षष्ठ स्थान में हो तो जातक को उदर रोग होता है। इस रोग के योग इस प्रकार हैं—

(१) सिंह राशि में चन्द्रमा हो।[१०]

---

१. तत्रैव, अ० ६ श्लो० ९०।

२-३. गदावली अ० २ श्लो० २५—२६।

४. गदावली अ० २ श्लो० २६।

५. भावप्रकाश अ० २ श्लो० १२।

६. बृहद्यवन जातक : पृ० ५० श्लो० २।

७-९. गदावली अ० २ श्लो० २७।

१०. देखिए—(क) बृहज्जातक अ० १७ श्लो० ५।

(ख) सारावली अ० २३ श्लो० ३०।

(२) षष्ठ स्थान में चन्द्रमा हो।[१]

(३) सप्तम स्थान में राहु या केतु हो।[२]

(४) अष्टम स्थान में शनि तथा लग्न में चन्द्रमा हो।[३]

(५) लग्न में विषम राशि में षष्ठेश हो, विषम राशि में ही लग्नेश हो तथा उन दोनों पर शनि की दृष्टि हो।[४]

(६) षष्ठ स्थान में पापग्रह, अष्टम स्थान में शनि एवं शुक्र तथा सप्तम स्थान में षष्ठेश हो।[५]

(७) पंचम स्थान में वक्री ग्रह तथा षष्ठ स्थान में लग्नेश एवं चतुर्थेश हो।[६]

(८) षष्ठ एवं अष्टम भाव में पापग्रह तथा सप्तम स्थान में पापग्रह के साथ षष्ठेश हो।[७]

अरुचि, अजीर्ण एवं मन्दाग्नि के योग

अरुचि, अजीर्ण एवं मन्दाग्नि जैसे रोग पाचन प्रक्रिया में गड़बड़ी के द्योतक होते हैं। इन रोगों के योग इस प्रकार हैं—

(१) तृतीय भाव में गुरु हो तो अरुचि हो जाती है।[८]

(२) षष्ठ स्थान में गुरु हो तो अरुचि हो जाती है।[९]

(३) लग्न में मंगल हो तथा षष्ठेश निर्बल हो तो अजीर्ण होता है।।[१०]

(४) लग्न शनि से दृष्ट या युत हो तथा निर्बल अष्टमेश पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो मन्दाग्नि होती है।[११]

(५) षष्ठ या अष्टम स्थान में शुक्र के साथ चन्द्रमा से और उसपर पापग्रह की दृष्टि हो तो मन्दाग्नि होती है।[१२]

(६) लग्न में पापग्रह तथा अष्टम में शनि हो तो मन्दाग्नि होती है।[१३]

(७) लग्न में राहु तथा अष्टम में शनि हो तो भी मन्दाग्नि होती है।[१४]

अजीर्ण रोग से मृत्यु के योग

जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो, उसकी मृत्यु अजीर्ण रोग से होती है—

१. सारावली अ० ३० श्लो० १९।

२. जातक तत्व–षष्ठ विवेक सू० ५९–६०।

३. जातक तत्व—षष्ठ विवेक सू० ५९–६०।

४-७. गदावली अ० २ श्लो० २८-२९।

८-९. सारावली अ० ३०, श्लो० ५२।५५।

१०. जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ९०।

११-१४. गदावली अ० २ श्लो० २९-३०।

(१) लग्नेश एवं अष्टमेश गुरु के साथ हो ।[१]
(२) लग्नेश एवं गुरु षष्ठ स्थान में हो ।[२]
(३) लग्नेश, चतुर्थेश एवं गुरु एक साथ हों ।[३]
(४) लग्नेश, चतुर्थेश एवं द्वितीयेश एक साथ हो ।[४]
(५) लग्नेश, चतुर्थेश एवं अष्टमेश एक साथ हों ।

अतिसार के योग

पेचिश या अतिसार में बार बार दस्त आते हैं । यह रोग मनुष्य को कमजोर कर देता है । इस रोग के योग इस प्रकार हैं :—

(१) शनि की राशि में बुध हो तथा उसपर सूर्य की दृष्टि हो ।[५]
(२) सप्तम स्थान में शुक्र हो ।[६]
(३) लग्न में राहु एवं बुध हों तथा सप्तम स्थान में शनि एवं मंगल हो ।[७]
(४) षष्ठ स्थान में शुक्र हो तथा षष्ठेश पापग्रहों से दृष्ट-युत हो ।[८]

संग्रहणी के योग

इस रोग में पतले एवं दस्त गाढ़े बार बार होते हैं तथा अपक्व अन्न एवं आम निकलता है । इस रोग के योग इस प्रकार हैं :—

(१) कारकांश से पंचम में केतु हो ।[९]
(२) द्वितीय स्थान में शनि हो ।[१०]
(३) द्वितीय स्थान में राहु हो ।[११]

गुल्म रोग के योग

पेट में वायु-गोला उठने को गुल्म कहते हैं । इस रोग के योग इस प्रकार हैं—

(१) दो पाप ग्रहों के मध्य में चन्द्रमा हो तथा सप्तम स्थान में शनि हो ।[१२]
(२) सप्तम स्थान में शनि हो ।[१३]

१-४. सार्वार्थ चिन्तामणि अ० ७ श्लो० २८-२९ ।
५. सारावली अ० २६ श्लो० ६१ ।
६ जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ९५ ।
७. जातकतत्व—षष्ठविवेक सू० १०४ ।
८. दैवज्ञाभरण—१४।३१ ।
९. देखिए—(क) जातक तत्व–षष्ठ विवेक सू० १०२ ।
(ख) गदावली अ० ३ श्लो० २२ ।
१०-११. देखिए–(१) जातक तत्व षष्ठ विवेक सू० १०२-३ ।
(२) गदावली अ० ३ श्लो० २२ ।
१२. सारावली अ० ३४ श्लो० ७४ ।
१३. जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ९५ ।

(३) कर्क, वृश्चिक या कुम्भ के नवांश में शनि के साथ चन्द्रमा हो।[१]
(४) लग्न में स्थित सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो।[२]
(५) षष्ठेश निर्बल हो तथा लग्न में मंगल हो।[३]
(६) षष्ठ स्थान में शनि हो तथा षष्ठेश पापग्रहों से दृष्ट युत हो।[४]
(७) लग्न स्थान में शनि हो तथा षष्ठ या अष्टम स्थान में पापग्रह के साथ क्षीण चन्द्रमा हो।[५]
(८) निर्बल पापग्रह पंचम में तथा निर्बल पंचमेश षष्ठ स्थान में हो।[६]
(९) व्ययेश षष्ठस्थान में तथा षष्ठेश व्यय स्थान में हो तो १५ या ३०वें वर्ष में गुल्म रोग होता है।[७]
(१०) मकर या कुम्भ राशि में लग्न में क्षीण चन्द्रमा हो तो वातजन्य गुल्म होता है।[८]
(११) शनि की राशि में षष्ठ या अष्टम स्थान में क्षीण चन्द्रमा हो तो वातजन्य गुल्म होता है।[९]

प्लीहा रोग के योग

जिगर या तिल्ली के बढ़ने को प्लीहा रोग कहते हैं। इस रोग के योग इस प्रकार हैं—

(१) षष्ठेश चन्द्रमा पर पापग्रहों की दृष्टि हो तथा शुभप्रद न देखते हो।[१०]
(२) लग्न में शनि हो।[११]
(३) षष्ठेश चन्द्रमा पापग्रहों के साथ हो।[१२]
(४) लग्नेश अस्त हो, उस पर क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो तथा शुक्रग्रह न देखते हों।[१३]
(५) चन्द्रमा जिस राशि में हो उसका स्वामी तथा षष्ठेश—इन दोनों पर क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो।[१४]
(६) लग्नेश या सप्तमेश चन्द्रमा पर केवल क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो।[१५]
(७) शनि एवं मंगल के मध्य में चन्द्रमा हो तथा मकर राशि में सूर्य हो।[१६]
(८) चन्द्रमा एवं शनि पंचम स्थान में हो।[१७]

---

१. जातक तत्व—षष्ठ विवेक सू० १०१।
२. जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ६१।
३. सर्वार्थ चिन्तामणि अ० ५ श्लो० ४२।
४. दैवज्ञाभरण प्र० १४ श्लो० ३२।
५-६. गदावली अ० ३ श्लो० २९-३०।
७-९. गदावली अ० ३ श्लो० २९-३०।
१०-११. जातकालंकार अ० २ श्लो० ४३।
१२-१४. जातक तत्व—षष्ठ विवेक—सू० १४५—४७।
१५-१७. जातक तत्व—षष्ठ विवेक—सू० १४८—५०।

(९) चन्द्रमा दो पाप ग्रहों के मध्य में हो तथा सप्तम स्थान में शनि हो।[१]

(१०) कृष्ण पक्ष की रात्रि में जन्म हो तथा लग्न, चतुर्थ या सप्तम स्थान में शनि हो।[२]

कृमिरोग के योग

पेट में कीड़े पड़ने को कृमिरोग कहते हैं। इस रोग का विचार मुख्यतया सूर्य एवं चन्द्रमा से किया जाता है। इस रोग के योग इस प्रकार हैं—

(१) अष्टम स्थान में क्षीण चन्द्रमा हो।[३]

(२) शत्रुराशितग सूर्य की दशा में यह रोग होता है।[४]

जलोदर रोग के योग

पेट में पानी भर कर नगाड़े की भाँति फूल जाने को जलोदर या जलन्धर रोग कहते हैं। यह रोग अधोलिखित ग्रहयोगों के कारण होता है—

(१) कर्क राशि में शनि तथा मेष राशि में चन्द्रमा हो।[५]

(२) लग्न में राहु तथा लाभ स्थान में सूर्य एवं चन्द्रमा हो तो १९ वें वर्ष में जलोदर रोग होता है।[६]

(३) कर्क-राशि में शनि तथा मकर राशि में चन्द्रमा हो।[७]

उदर शूल के योग

पेट में दर्द होने को उदरशूल कहते हैं। यह रोग निम्नलिखित योगों के कारण होता है—

(१) षष्ठ स्थान में गुरु हो तथा षष्ठेश पापग्रहों से युत-दृष्ट हो।[८]

(२) षष्ठ एवं द्वादश भाव में शनि एवं मंगल हों।[९]

(३) सिंह राशि में स्थित चन्द्रमा पापग्रहों से युत-दृष्ट हो।[१०]

(४) लाभेश तृतीय भाव में हो।[११]

(५) केन्द्र या त्रिकोण स्थान में सिंह राशि में शुक्र हो तथा तृतीय भाव में गुरु हो।[१२]

---

१. दैवज्ञाभरण प्र० १४ श्लो० २७।

२. गदावली अ० ३ श्लो० २८।

३. सारावली अ० ३० श्लो २१।

४. तत्रैव अ० ४१ श्लो ५८।

५-६. गदावली अ० ३ श्लो० २४।

७. जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ९७।

८. दैवज्ञाभरण प्र० १४ श्लो० ३१।

९-१२. जातक तत्व—षष्ठ विवेक सू० १३३-३६।

(६) शत्रु राशि या नीच राशि में लग्नेश हो, चतुर्थ स्थान में मंगल हो तथा शनि पर पापग्रहों की दृष्टि हो।[1]

नाभि रोग के योग

नाभि में दर्द होना, नाभि का टेढ़ा होना या अपने स्थान से खिसक जाना आदि को नाभि रोग कहते हैं। ये रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण होते हैं—

(१) लग्नेश एवं चन्द्रमा दोनों षष्ठ स्थान में हों।[2]

(२) लग्नेश, चन्द्रमा एवं षष्ठेश तीनों साथ-साथ हों।[3]

(३) षष्ठेश तृतीय स्थान में हो।[4]

कुक्षि रोग के योग

कुक्षि या पसलियों में दर्द होना, गाँठ पड़ जाना आदि को कुक्षि रोग कहते हैं। ये रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण होते हैं—

(१) लग्न में पाप ग्रह हो तथा अष्टम में शनि हो।[5]

(२) लग्न में राहु तथा अष्ट में शनि हो।[6]

(३) षष्ठ स्थान में गुरु हो तथा धनु या मीन राशि में चन्द्रमा हो तो १९ या २२ वें वर्ष में कुक्षि रोग होता है।[7]

कुबड़ेपन के योग

कमर या पीठ में कूब निकलने को कुबड़ापन कहते हैं। फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में कुबड़ेपन के सूचक निम्नलिखित योग बतालाये गये हैं—

(१) लग्न में कर्क राशि में स्थित चन्द्रमा पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो।[8]

(२) चतुर्थ स्थान में मंगल की राशि में लग्नेश हो तथा वह वृश्चिक के नवांश में हो।[9]

---

१. जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ९१।

२-३. दैवज्ञाभरण प्र० १४ श्लो० २८।

४. गदावली अ० ३ श्लो० ३४।

५-६. तत्रैव अ० २ श्लो० ३०।

७. गदावली अ० २ श्लो० ३१।

८. देखिए—(क) वृहज्जातक अ० ४ श्लो० १८।
(ख) सारावली अ० ८ श्लो० ५९।
(ग) जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ४९।

९. जातकतत्व—प्रकीर्ण सू० ३३१।

गुर्दे के रोग

गुर्दे में दर्द, सूजन, पथरी एवं अन्य बीमारियों को गुर्दे के रोग कहते हैं। इसके अलावा मूत्रकृच्छ्र भी गुर्दे की खराबी से होता है। ये रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण होते हैं—

(१) धनु या मीन राशि में बुध हो तथा उस पर रवि की दृष्टि हो तो पथरी होती है।[१]

(२) चन्द्रमा जलचर राशि में हो, उस राशि का स्वामी षष्ठ स्थान में हो और उस पर जलीय ग्रहों की दृष्टि हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।[२]

(३) पाप ग्रह षष्ठ या सप्तम में हो।[३]

(४) क्रूर षष्ठ्यंश में, षष्ठ, सप्तम या अष्टम स्थान में अनेक पापग्रह हों।[४]

(५) सप्तम स्थान में जलीय ग्रह हो तथा सप्तमेश भी जलीय ग्रह हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।[५]

(६) पंचम स्थान में पापग्रह होने पर मूत्रकृच्छ्र होता है।[६]

(७) सप्तम स्थान में जलीय राशि हो, लग्न में जलग्रह हो या उस पर बलवान जलीय ग्रह की दृष्टि हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।[७]

(८) सप्तम स्थान में जलीय राशि में शनि, सूर्य, मङ्गल एवं राहु हों तो मूत्रकृच्छ्र होता है।[८]

(९) षष्ठेश या सप्तमेश व्ययेश के साथ हो और उस पर शनि की दृष्टि हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।[९]

(१०) सप्तम स्थान में अनेक पापग्रह हों तथा सप्तमेश षष्ठ स्थान में हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।[१०]

(११) अष्टम स्थान में बुध हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।[११]

(१२) सप्तम स्थान में पापग्रहों से युत दृष्ट मंगल हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।

(१३) सप्तम स्थान में शनि हो और उस पर राहु की दृष्टि हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।[१३]

---

१. सारावली अ० २५ श्लो० ५५।
२. जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ८७।
३. जातक तत्व—षष्ठविवेक सू० ११५।
४. सर्वार्थ चिन्तामणि अ० ६ श्लो० ११२।
५-१०. दैवज्ञाभरण प्र० १५ श्लो० ८-१२।
११. दैवज्ञाभरण प्र० १६ श्लो० ११।
१२-१३. गदावली अ० १ श्लो० ३२-३३।

प्रमेह आदि मूत्राशय के रोग

वस्ति या मूत्राशय के रोगों में प्रमेह या मधुमेह प्रमुख है। इस रोग में पेशाव में शक्कर की मात्रा बढ़ जाती है। यह रोग शरीर को क्षीण कर देता है। यह रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण होता है—

(१) धनु या मीन राशि में स्थित बुध पर सूर्य की दृष्टि हो।[१]
(२) शनि, सूर्य एवं शुक्र–ये तीनों पंचम स्थान में हों।[२]
(३) लग्न में सूर्य तथा सप्तम में मंगल हो।[३]
(४) दशम स्थान में स्थित मंगल शनि से युत या दृष्ट हो।[४]
(५) षष्ठ स्थान में मंगल हो तथा षष्ठेश पाप ग्रह के साथ हो।[५]
(६) अष्टम भाव पर मंगल की दृष्टि हो तो मूत्राशय में रोग होता है।[६]

उपदंश, शूक आदि लिङ्ग रोग

लिंग में घाव होने को उपदंश तथा सूजन आने को शूक्र कहते हैं। ये रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण होते हैं—

(१) शुक्र की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा या चन्द्रमा की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा हो।[७]
(२) षष्ठेश मंगल के साथ हो।[८]
(३) लग्नेश मंगल के साथ षष्ठ स्थान में हो।[९]
(४) बुध एवं राहु के साथ षष्ठेश लग्न में हो तो लिंग कट जाता है।[१०]
(५) कर्क या वृश्चिक राशि में पापग्रहों के साथ चन्द्रमा हो।[११]
(६) अष्टम स्थान में पाप ग्रह हो।[१२]
(७) गुरु द्वादश स्थान में हो।[१३]
(८) षष्ठेश एवं बुध दोनों मंगल के साथ हों।[१४]

---

१. सारावली अ० २६ श्लो० ५५।
२-४. जातकतत्व: षष्ठविवेक सू० १०७-९।
५. दैवज्ञाभरण—प्र० १४ श्लो० २६।
६. वृहद्यवन जातक पृ० ९६ श्लो० ३।
७. सारावली अ० ४२ श्लो० ४३।
८. जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ७५।
९. तत्रैव अ० १३ श्लो० ७१
१०. जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ७५।
११-१४. जातकतत्व—षष्ठविवेक सू० ६८-७१।

(९) षष्ठेश एवं मंगल एक साथ हों तथा इन्हें शुभ ग्रह न देखता हो।[१]
(१०) लग्नेश के साथ मंगल षष्ठ स्थान में हो।[२]

गुप्त रोग के योग

जननेन्द्रिय के रोगों को गुप्त रोग कहते हैं। ये रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभाववश होते हैं—

(१) अष्टम स्थान में धनु राशि हो।[३]
(२) द्वादश स्थान में गुरु हो और उसे शुभ ग्रह न देखता हो।[४]
(३) कर्क, वृश्चिक या कुम्भ के नवांश में शनि के साथ चन्द्रमा हो।[५]
(४) अष्टमेश की राशि में पापग्रह के साथ चन्द्रमा हो तथा अष्टमेश पर राहु की दृष्टि हो।[६]
(५) अष्टम स्थान में तीन या चार पाप ग्रह हों।[७]
(६) अष्टम स्थान में पाप ग्रह हों तथा उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो।[८]
(७) अष्टम स्थान में नीच राशि गत ग्रह हो।[९]

वीर्य रोग

स्वप्नदोष, शीघ्रपतन एवं धातुक्षय आदि को वीर्यरोग कहते हैं। ये रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभाववश होते हैं—

(१) शनि, मंगल एवं सूर्य क्रमशः अष्टम, षष्ठ एवं द्वितीय स्थान में हो तो स्वप्नदोष होता है।[१०]
(२) राहु, शुक्र या शनि उच्चराशि में हो, कर्क में सूर्य तथा मेष में चन्द्रमा हो तो शीघ्रपतन होता है।
(३) लग्न में चन्द्रमा हो तथा गुरु एवं शनि पंचम में हो तो शीघ्रपतन होता है।[१२]
(४) कन्या लग्न पर बुध एवं शनि की दृष्टि हो तथा शनि की राशि में शुक्र हो तो शीघ्रपतन होता है।[१३]
(५) लग्न में विषम राशि में शुक्र हो तो वीर्य विकार होता है।[१४]
(६) चतुर्थस्थान में चन्द्रमा एवं शनि हो तो वीर्य विकार होता है।[१५]

१-२. गदावली अ० १ श्लो० ३८।
३. बृहद्यवन जातक पृ० ९० श्लो० ९।
४-६. जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ८१, ८७।
७-८. दैवज्ञाभरण प्र० १६ श्लो० १२-१३।
९. जातकतत्व–षष्ठविवेक सू० ६३।
१०-११. तत्रैव सू० १४८–५०।
१२-१५. तत्रैव सू० १२३–३६।

(७) सप्तम स्थान में स्थित शुक्र पर लग्नेश की दृष्टि हो तो वीर्य विकार होता है।[१]

(८) शुक्र की राशि में चन्द्रमा हो तो वीर्य विकार होता है।[२]

नपुंसकता के योग

पुरुष में सन्तानोत्पादन की अक्षमता को नपुंसकता कहते हैं। नपुंसकता जन्मजात तथा आगन्तुक दोनों प्रकार की होती है। जन्मजात नपुंसकता के योगों का विचार पिछले अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ हम जन्म के बाद नपुंसकदायक ग्रह योगों का विचार कर रहे हैं। निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभाववश मनुष्य नपुंसक होता है–

(१) शुक्र के साथ शनि दशम स्थान में हो।[३]

(२) शुक्र से षष्ठ या व्यय स्थान में शनि हो।[४]

(३) सूर्य, बुध एवं शनि एक साथ हों।[५]

(४) सिंह राशि में स्थित बुध पर मंगल की दृष्टि हो।[६]

(५) मकर राशि में शुक्र हो[७]

(६) पापग्रह सप्तमेश होकर नवम स्थान में हो।[८]

(७) नवमेश अष्टम स्थान में हो।[९]

(८) व्ययेश लग्न में हो।[१०]

(९) कारकांश में केतु हो और उस पर बुध एवं शनि की दृष्टि हो।[११]

(१०) अष्टमस्थान में शुक्र एवं शनि हो तथा उन पर शुभग्रह की दृष्टि न हो।[१२]

(११) षष्ठ या द्वादश स्थान में नीच राशि गत शनि हो।[१३]

(१२) मिथुन, कन्या, मकर या कुम्भ राशि में लग्न में बुध हो और उस समय पर शनि की दृष्टि हो।[१४]

(१३) शुक्र के साथ शनि तृतीय या लाभ स्थान में हो।[१५]

(१४) शुक्र से १२ वें स्थान में शत्रुराशि में शनि हो।[१६]

(१५) सप्तमेश चर राशि में हो और उसको नपुंसक (बुध या शनि) ग्रह देखता हो।[१७]

(१६) षष्ठेश लग्न में, बुध की राशि में तथा लग्नेश भी बुध की राशि में हो तो इस योग में उत्पन्न पुरुष तथा उसकी पत्नी दोनों नपुंसक होते हैं।[१८]

१.-२. तत्रैव सू० १२३–३६।

३-४. जातकालंकार अ० ३ श्लो० ४८।

५.८. सारावली १६।१२, २५।५१ एवं २८।८०।

६.११. बृहद्यवनजातक पृ० ८२ श्लो ०६, पृ०१०५ श्लो०८ तथा पृ०१४१ श्लो० १.

१२.१४. जातकतत्व–प्रकीर्ण, सू० १४५-४७।

१४-१७. दैवज्ञाभरण प्र० ६ श्लो० २३-२६।

१८. सर्वार्थ चिन्तामणि अ० २ श्लो० ५४।

(१७) षष्ठेश एवं बुध दोनों राहु के साथ हों तथा लग्नेश से सम्बन्ध रखते हों।[१]

वन्ध्यात्व के योग

स्त्री में प्रजनन का अभाव वन्ध्यात्व कहलाता है। पुरुष की कुंडली में जो योग नपुंसकता के सूचक होते हैं। वहीं योग स्त्री की कुण्डली में बांझपन के सूचक माने गये हैं। उन योगों के अलावा स्त्री की कुण्डली में निम्नलिखित योग होने पर भी वह वन्ध्या होती है—

(१) अष्टम स्थान में बुध हो।[२]

(२) अष्टम स्थान में सूर्य एवं शनि दोनों हों।[३]

(३) लग्न में चन्द्रमा एवं शुक्र यदि शनि या मंगल के साथ हों तथा पंचम स्थान पापग्रहों दृष्ट या युत हो।[४]

(४) अष्टम स्थान में कर्क या सिंह राशि में सूर्य एवं चन्द्रमा हो।[५]

(५) अष्टम स्थान में मिथुन, कर्क या कन्या राशि में चन्द्रमा एवं बुध हो तो स्त्री काक वन्ध्या होती है।[६]

(६) लग्न में मेष, वृश्चिक, मकर या कुम्भ राशि में चन्द्रमा एवं शुक्र हो तथा उन पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।[७]

स्त्रीरोग

मासिकधर्म में गडबड़ी, प्रदर, योनि में व्रण एवं सूजन तथा योनि कन्द आदि रोगों को स्त्रीरोग कहते हैं। ये रोग निम्नलिखित ग्रह योगों के कारण होते हैं—

(१) सप्तम भाव में मंगल का नवांश हो तथा उस पर शनि की दृष्टि हो।[८]

(२) आश्लेषा, कृत्तिका या शतभिषा नक्षत्र में, रवि, शनि या मंगलवार में तथा द्वितीया, सप्तमी या द्वादशी में जन्म हो।[९]

(३ लग्न में एक शुभ तथा एक पाप ग्रह हो तथा षष्ठ स्थान में दो पाप ग्रह हों[१०]

(४) सप्तमेश पापग्रह की राशि में पाप ग्रह के साथ हो।[११]

(५) वृश्चिक में शुक्र हो।[१२]

---

१. जातक पारिजात, अ० १३ श्लो० ७१।

२-३. जातक तत्व, स्त्रीजातक-सू० ६८-६९।

४-७. वृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ८१ श्लो० ३४,३८-३९।

८. तत्रैव श्लो० ३५।

९-१०. वृहत्पाराशरहोराशास्त्र अ० ८१ श्लो० ४३-४४।

११. दैवज्ञाभरण प्र० १५ श्लो० १६।

१२. वीरसिंहावलोक-स्त्री रोगाधिकार सू० २७४।

गर्भपात के योग

स्त्री की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग होने पर गर्भपात होता है।

(१) पंचम भाव में पापग्रह हों तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो।[१]

(२) पंचम भाव के नवांश पर जितने पाप ग्रहों की दृष्टि हो उतने बार गर्भपात होता है।[२]

गर्भपात कब होगा?

गर्भाधान से लेकर १० महीनों के स्वामी शुक्र, मंगल, गुरु, सूर्य, चन्द्र, शनि, बुध; लग्नेश, चन्द्र एवं सूर्य होते हैं। गर्भाधान कुण्डली उक्त ग्रहों में से जो ग्रह निर्वल, स्तंग एवं पापाक्रान्त हो उस ग्रह के महीने गर्भपात होता है।[३]

वृषणरोग एवं अण्डवृद्धि के योग

अण्डकोषों के रोग को वृषण रोग कहते हैं। अण्डकोषों में पानी भर जाना या उनका बढ़ जाना अण्डवृद्धि कहलाता है। ये रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभाववश होते हैं :—

(१) मंगल, शनि एवं राहु षष्ठ स्थान में हो तो वृषण रोग होता है।[४]

(२) लग्न में गुरु एवं राहु दोनों हो तो वृषण रोग होता है।[५]

(३) शनि या मंगल के साथ राहु लग्न में हो तो अण्डवृद्धि होती है।[६]

(४) लग्नेश राहु के साथ अष्टम स्थान में हो तो अण्डवृद्धि होती है।[७]

(५) लग्नेश गुलिक के साथ अष्टम स्थान में हो तो अण्डवृद्धि होती है।[८]

(६) लग्न में राहु त्रिकोण में गुलिक तथा अष्टम में मंगल एवं शनि हो तो अण्डवृद्धि होती है।[९]

(७) लग्नेश से आक्रांत नवांश का स्वामी राहु, मंगल या गुलिक के साथ हो तो अण्डवृद्धि होती है।[१०]

(८) राहु एवं मंगल एक साथ हों तो अण्डवृद्धि होती है।[११]

(९) राहु एवं शनि एक साथ हों तो अण्डवृद्धि होती है।[१२]

(१०) कारकांश में स्थित बुध पर केवल बुध की दृष्टि हो तो अण्डवृद्धि होती है।[१३]

१-२. जातकतत्व-पंचम विवेक सू० ८३-८४।

३. बृहज्जातक अ० ४ श्लो० १६।

४-५. दैवज्ञाभरण प्र० १५ श्लो० ४।

६-१०. जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ६०-६१।

११-१२. तत्रैव, अ० ११ श्लो० ३६।

१३. जैमिनीय सूत्र अ० १ पा० सू० ३१।

(११) अष्टम स्थान में शुक्र एवं मंगल हो तो वात कोप से अण्डवृद्धि होती है।[१]

(१२) मंगल की राशि में शुक्र एवं मंगल हों तो वातकोप से अण्डवृद्धि होती है।[२]

(१३) मंगल की राशि में स्थित चन्द्रमा एवं शुक्र को गुरु एवं शनि देखते हों तो फोते में पानी भर जाता है।[३]

(१४) अष्टमेश के नवांशेश के साथ राहु हो तो अण्डवृद्धि होती है।[४]

(१५) अष्टम भावगत नवांश की राशि में शुक्र, मंगल एवं चन्द्रमा हो तो अण्ड-वृद्धि होती है।[५]

(१६) लग्न एवं अष्टम स्थान में बलवान पापग्रह हो तो ब्रह्मूत्र रोग से अण्ड वृद्धि होती है।[६]

गुदा रोग

गुदा के रोगों में अर्श एवं भगन्दर प्रमुख हैं। इनके अलावा गुदा में घाव होना, सूजन आना आदि भी गुदा सम्बन्धी रोग होते हैं। जातक ग्रन्थों में इन सब योगों का विस्तार से विचार किया गया है—

अर्श रोग के योग

बवासीर को अर्श रोग कहते हैं। यह रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण होता है—

(१) व्यय स्थान में स्थित शनि पर पापग्रह की दृष्टि हो।[७]

(२) लग्न में शनि तथा सप्तम स्थान में मंगल हो।[८]

(३) सप्तम स्थान में पापग्रह के साथ अष्टमेश हो।[९]

(४) वृश्चिक राशि में सप्तम स्थान में शनि हो तथा नवम स्थान में मंगल हो।[१०]

(५) व्यय स्थान में शनि हो तथा सप्तम स्थान में लग्नेश एवं मंगल हो।[११]

(६) व्यय स्थान में स्थित शनि पर लग्नेश एवं मंगल की दृष्टि हो।[१२]

(७) सप्तम में मंगल तथा लग्न में शनि हो।[१३]

(८) लग्नेश एवं मंगल एक साथ हो।[१४]

(९) लग्न में वृश्चिक राशि में मंगल हो और उस पर गुरु या शुक्र की दृष्टि न हो।[१५]

१-२. देखिए—(क) दैवज्ञाभरण प्र० १५ श्लो० ५-७।
(ख) जातकतत्व प्रकीर्ण सू० ३३४-३५।

३. देखिए—(क) दैवज्ञाभरण प्र० १५ श्लो० ५-७।
(ख) जातकतत्व प्रकीर्ण सू० ३३६।

४-६. गदावली अ० १ श्लो० ४०।

७-१२. जातकतत्व—षष्ठविवेक सू० १३८-४३।

१३-१५. गदावली अ० २ श्लो० ३२-३३।

(१०) जन्म से पूर्व पूर्णिमा या अमावस्या के अवसान में जो लग्न हो उसमें जन्म हो और उसमें चन्द्रमा या सूर्य मंगल के साथ हो।[१]

भगन्दर के योग

गुदा के पास गाँठ, जलन होने को भगन्दर कहते हैं। यह रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण होता है—

(१) अष्टम स्थान में शनि हो।[२]

(२) कर्क राशि में स्थित सूर्य को मंगल देखता हो।[३]

(३) द्वितीय भाव पर सूर्य की दृष्टि हो।[४]

(४) द्वितीय भाव पर मंगल की दृष्टि हो।[५]

(५) अष्टम स्थान में धनु राशि हो।[६]

(६ अष्टम स्थान में केतु हो।[७]

(७) अष्टम स्थान को सूर्य देखता हो।[८]

गुदा के अन्य रोगों के योग

गुदा मार्ग में घाव, सूजन आदि होना कांच निकलना आदि गुदा के अन्य रोग होते हैं। ये रोग निम्नलिखित ग्रह योगों के प्रभाववश होते हैं –

(१) अष्टम स्थान में पाप ग्रह के साथ षष्ठेश हो।[९]

(२) लग्नेश मंगल एवं बुध एक साथ केन्द्र त्रिकोण के अलावा अन्य भाव में हों।[१०]

(३) लग्नेश, मंगल एवं बुध की षष्ठ भाव पर दृष्टि हो।[११]

(४) मंगल या बुध की राशि में स्थित लग्नेश को उसका शत्रु देखता हो।[१२]

(५) मंगल, बुध एवं लग्नेश सिंह राशि में चतुर्थ या द्वादश स्थान में हो।[१३]

पैर के रोग

घुटनों में दर्द, पङ्गुता एवं फीलपाँव आदि को पैरों के रोग कहते हैं। फलित-ज्योतिष के ग्रन्थों में शनि को पैरों का प्रतिनिधि, द्वादश भाव को पैरों का प्रतिनिधि भाव तथा षष्ठ को रोग का प्रतिनिधि भाव माना गया है। जब इन पर पाप ग्रहों का प्रभाव होता है, तो पैरों के रोग होते हैं।

---

१. गदावली अ० २ श्लो० ३४।

२. सारावली अ० ३० श्लो० ८१।

३. तत्रैव अ० २२ श्लो० २९।

४. बृहद्यवनजातक पृ० २३ श्लो० १।

५-८. तत्रैव पृ० २४ श्लो० ३, पृ० ९० श्लो० ६, पृ० ९३ श्लो० ६ तथा पृ० ९६ श्लो० १।

९. जातक पारिजात अ० १३ श्लो० ७७।

१०-११. तत्रैव अ० ६ श्लो० ७१।

१२-१३. जातकतत्व—षष्ठ विवेक सू० ६६-६७।

घुटने में दर्द के योग

जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित ग्रह योगों में से कोई एक योग हो, उसके घुटनों में दर्द होता है—

(१) पूर्ण चन्द्रमा एवं मंगल षष्ठ स्थान में हों।[१]

(२) शनि, चन्द्रमा एवं मंगल द्वादश भाव में हों।[२]

पङ्गुता के योग

लँगड़ेपन को पङ्गुता कहते हैं। यह रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभावश होता है—

(१) मेष, कर्क, वृश्चिक, मकर या मीन राशि में पंचम या नवम स्थान में पापग्रह के साथ चन्द्रमा एवं शनि हो।[३]

(२) षष्ठ स्थान में सूर्य, मंगल एवं शनि हो।[४]

(३) व्यय भाव में शनि एवं षष्ठेश हो तथा उन पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।[५]

(४) पापग्रह के साथ अष्टमेश एवं नवमेश चतुर्थ भाव में हो।[६]

(५) कर्कराशि में स्थित चन्द्रमा एवं शनि पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो।[७]

(६) शनि एवं शुक्र एक साथ हों तथा उन पर शुभग्रह की दृष्टि न हो।[८]

(७) सप्तमेश शनि किसी पापग्रह के साथ हो।[९]

फीलपाँव एवं अन्य पैर के रोगों के योग

फीलपाँव या श्लीपद रोग में व्यक्ति का पैर हाथी के पैर के समान फूल जाता है। यह रोग निम्नलिखित ग्रह योग के कारण होता है—

(१) मंगल, बुध एवं शुक्र एक साथ हों तो फीलपांव होता है।[१०]

(२) षष्ठ स्थान में शनि हो तो पैर में रोग होता है।[११]

(३) षष्ठ स्थान में शनि एवं शुक्र दोनों होने से पैरों में रोग होता है।[१२]

(४) व्यय भाव में पापग्रह से युत दृष्ट लग्नेश हो तो मनुष्य वैशाखी के सहारे से चलता है।[१३]

१-२. जातकतत्व-प्रकीर्ण सू० ३३८-३९।

३-७. जातकतत्व—प्रकीर्ण सू० ३४०-४४।

८-९. तत्रैव—प्रकीर्ण सू० ३४५-४६।

१०. वीर सिंहावलोक-श्लीपद रोगाधिकार पृ० १९५।

११-१२. गदावली अ० २ श्लो० ४३।

१३. जातक तत्व—प्रकीर्ण सू० ५२।

अध्याय-६

वात-पित्तादि विकार से उत्पन्न रोग

पिछले अध्याय में शरीर के विविध अंगों में उत्पन्न होने वाले रोगों के योगों का विचार किया गया। अब इस अध्याय में वात, पित्त एवं कफ के विकार से उत्पन्न होने वाले रोगों का विचार किया जायेगा।

आमवात, शूल, सन्धिशूल, पक्षाघात, रक्तपित्त, दाह, तृष्णा, छर्दि, कफ, खांसी, श्वास, क्षय, ज्वर, पाण्डु, सूखा, शोफ, स्थौल्य, मूर्च्छा, मिरगी, फोड़ा, फुन्सी, घाव, दाद, खाज खुजली एवं कुष्ठ आदि रोग वात, पित्त एवं कफ इन तीन विकारों से उत्पन्न होते हैं। यद्यपि पिछले अध्याय में चर्चित रोगों की उत्पत्ति भी वात, पित्त या कफ विकार से ही होता है, तथापि उक्त रोग शरीर के किसी एक निश्चित अंग में होते हैं। अतः फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में उन्हें अंगों के रोग कहा गया है तथा आमवात शूल आदि रोग शरीर के किसी एक निश्चित अंग में न होकर कहीं भी हो सकते हैं। अतः इन्हें अंगों के रोगों से भिन्न माना गया है तथा वातपित्तादि के रोग कहा गया है। जातक ग्रन्थों में इन रोगों का विस्तार-पूर्वक विचार किया गया है तथा इन रोगों की सूचना देने वाले ग्रहयोगों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

वात-रोग—

वायुविकार से उत्पन्न समस्त रोगों को वातरोग कहा जाता है। इनमें आमवात, शूल एवं पक्षाघात प्रमुख हैं। जातक ग्रन्थों में इन रोगों का विचार करने के लिए अनेक योग बतलाये गये हैं, जिनके आधार पर यह निर्णय किया जा सकता है कि अमुक योग में उत्पन्न व्यक्ति को आमवात, शूल, पक्षाघात या अन्य कोई वातरोग होगा।

आमवात के योग—

इस रोग में शरीर के जोड़ों में दर्द तथा सूजन रहती है। इस रोग का विचार मुख्यतया गुरु से किया जाता है। जब गुरु अनिष्ट स्थान में होता है तब यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोग के सूचक ग्रहयोग निम्नलिखित हैं—

(१) गुरु त्रिक्‌स्थान में हो।[1]

---

१. वीरसिंहावलोक—आमवाताधिकार पृ० १३८

(२) गुरु एवं लग्नेश दोनों त्रिक् स्थान में हों।[1]

शूलरोग के योग

शरीर के किसी अंग में तीव्रतर दर्द होने को शूल कहते हैं। सिरशूल, हृदयशूल एवं उदर शूल का शरीर के एक निश्चित अंग से सम्बन्ध होने के कारण उनका विचार पिछले अध्याय में किया गया था। यहाँ उन ग्रहों को लिखा जा रहा है, जो शरीर के किसी भी अंग में शूल (दर्द) होने के सूचक माने गये हैं। शूलरोग के सूचक ग्रह योग इस प्रकार हैं :—

(१) कर्क राशि में स्थित चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि हो।[2]
(२) सूर्य की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा हो।[3]
(३) लग्नेश शत्रु या नीचराशि में हो, मंगल चतुर्थ भाव में हो तथा शनि पर पापग्रहों की दृष्टि हो।[4]
(४) सूर्य, चन्द्रमा एवं मंगल एक साथ हों।[5]
(५) षष्ठ या द्वादश भाव में शनि एवं मंगल हों।[6]
(६) सिंह राशि में पापाक्रान्त चन्द्रमा हो[7]
(७) लाभेश तृतीय भाव में हो।[8]
(८) केन्द्र या त्रिकोण स्थान में सिंह राशि में शुक्र हो तथा तृतीय भाव में गुरु हो।[9]
(९) नीच या शत्रु राशि में द्वादश स्थान में स्थित सूर्य पर पापग्रह की दृष्टि हो।[10]

सन्धिशूल के योग

इस रोग में मुख्यतया शरीर के जोड़ों में दर्द रहता है। यह रोग निम्नलिखित ग्रह-योगों के प्रभावश होता है—

(१) रात्रि का जन्म हो तथा पंचम भाव में पापाक्रान्त सूर्य हो।[11]
(२) रात्रि का जन्म हो तथा दग्ध चन्द्रमा को केन्द्रगत शनि देखता हो।[12]
(३) दग्ध चन्द्रमा का शनि से ईसराफ योग हो।[13]
(४) दिन का जन्म हो तथा दग्ध चन्द्रमा को मंगल देखता हो।[14]

---

१. देखिए—(क) जातकतत्व—षष्ठविवेक सू० २०३।
(ख) गदावली अ० ३ श्लो० १६।
२. सारावली अ० २३ श्लो० २५।
३. तत्रैव, अ० ४२ श्लो० १६।
४-५. जातक पारिजात अ०६ श्लो० ९१-९२।
६-९. जातकतत्व—षष्ठविवेक सू० १३३-३६।
१०. दैवज्ञाभरण प्र० १६ श्लो० १०।
११-१४. गदावली अ० ३ श्लो० ३७-३८।

(५) लग्न एवं सप्तम में जो नवांश राशि हों, उनमें पापग्रह हों और उन पापग्रहों के अन्तराल में केन्द्रगत चन्द्रमा हो।[१]

(६) व्यय एवं षष्ठ भाव में सूर्य एवं चन्द्रमा हो।[२]

पक्षाघात के योग

पक्षाघात को लकवा कहते हैं। इस रोग में शरीर का एक भाग संज्ञाहीन शून्य, निश्चेष्ट तथा निष्क्रिय हो जाता है। यह रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण होता है–

(१) शनि के साथ चन्द्रमा का ईसराफ[३] योग हो।[४]

(२) शनि के साथ क्षीण चन्द्रमा का ईसराफ योग हो।[५]

(३) चन्द्रमा अस्तंगत हो।[६]

(४) षष्ठेश पापाक्रान्त हो, गुरु से दृष्ट न हो तथा षष्ठभाव में पाप ग्रह हो।[७]

अन्य वात रोगों के योग

आमवात, शूल, सन्धिशूल एवं पक्षाघात के अलावा अनेक वात रोग माने गये हैं। किन्तु ये रोग आमवात आदि जैसे असाध्य नहीं होते। वायुकोप से उत्पन्न रोग शरीर में आलस्य, अनिद्रा, हल्का-हल्का दर्द, कम्पन एवं अंगसुप्तता पैदा करते हैं। इन रोगों के योग इस प्रकार हैं :—

(१) कर्क राशि में स्थित सूर्य पर शनि की दृष्टि हो।[८]

(२) पापग्रह के साथ चन्द्रमा षष्ठ स्थान में हो तथा पापग्रह की दृष्टि हो।[९]

(३) सप्तम स्थान में पापग्रह के साथ बुध हो तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो।[१०]

(४) धनेश एवं गुरु दुर्बल हो।[११]

(५) नीचराशि में शनि के साथ षष्ठेश हो।[१२]

(६) लग्न में गुरु तथा सप्तम भाव में शनि हो।[१३]

(७) त्रिकोण या सप्तम स्थान में मंगल हो तथा लग्न में शनि हो।[१४]

(८) क्षीण चन्द्रमा एवं शनि व्ययभाव में हों।[१५]

१-२. गदावली अ० ३ श्लोक० ३७-३८।

३. शीघ्रगति ग्रह मन्दगति ग्रह से एक अंश भी आगे हो तो इस योग को ईसराफ योग कहते हैं।

४-७. गदावली अ० ३ श्लो० ४२-४३।

८. सारावली अ० २२ श्लो० ३३।

९-१०. जातक पारिजात अ० ६, श्लो० ९५।

११. जातक पारिजात अ० ११ श्लो० ७८।

१२-१५. जातक तत्व–षष्ठ विवेक सू० ११०-१३।

(९) लग्न में पापग्रह हों तथा लग्नेश पापग्रह से पीड़ित हो।[१]

(१०) लग्न में लग्नेश तथा षष्ठ स्थान में शनि हो तो ५९वें वर्ष में वात रोग होता है।[२]

(११) धन स्थान में राहु के साथ चन्द्रमा हो तो सन्निपात होता है।[३]

(१२) लग्न, षष्ठ या अष्टम स्थान में स्थित शनि पर मंगल की दृष्टि हो तो वातरक्त दोष होता है।[४]

पित्तरोग

पित्त के कुपित होने के कारण उत्पन्न रोगों को पित्तरोग कहते हैं। इन रोगों में रक्त पित्त, शीत पित्त, दाह एवं तृष्णा प्रमुख हैं। जातक ग्रंथों में उक्त रोगों का निर्णय करने के लिये अनेक योग बतलाये गये हैं। इन योगों के आधार पर यह निर्णय किया जा सकता है कि अमुक व्यक्ति को रक्तपित्त, शीतपित्त, दाह, तृष्णा या अन्य कोई पित्त रोग होगा।

रक्तपित्त के योग

इस रोग में पित्त कुपित होकर रक्तस्राव कराता है। नक्की चलना, टट्टी या पेशाब के साथ खून जाना—इस रोग का लक्षण है। इस रोग में रोगी को ठण्डे स्थान एवं ठण्डी वस्तुओं की इच्छा होती है। गले में खुश्की तथा कभी-कभी उल्टी भी होती है। इस रोग का विचार मुख्य रूप से मंगल से किया जाता है। इस रोग के योग इस प्रकार हैं—

(१) मंगल सप्तम स्थान में हो।[५]

(२) मंगल नीच राशि में हो।[६]

(३) षष्ठ स्थान में पापांशगत मंगल पर पापग्रहों की दृष्टि हो।[७]

(४) चन्द्रमा की दशा में मंगल की अन्तर्दशा हो।[८]

(५) षष्ठ स्थान में मंगल हो तथा षष्ठेश पापग्रहों से युत-दृष्ट हो।[९]

शीत पित्त के योग

ठण्डी हवा के स्पर्श से पित्त के साथ कफ एवं वायु कुपित होने पर पूरे शरीर में छोटे-छोटे दाने निकल आते हैं। शरीर में सूजन, कानों में खुजली, गले में खुश्की तथा शरीर में हल्का ज्वर हो जाता है। इस रोग को उदर्द, शीतपित्त या छपाकी कहते हैं। इस

१-४. गदावली अ० ३ श्लो० ६-७।

५. जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ९४।

६. जातक तत्व—प्रकीर्ण सू० ४७।

७. गदावली अ० ३ श्लो० ३।

८. सारावली अ० ४२ श्लो० १९।

९. सर्वार्थ चिन्तामणि अ० ५ श्लो० ३३।

रोग में पित्त, कफ एवं वात तीनों कुपित होते हैं। अतः इन तीनों के प्रतिनिधि ग्रहों से इस रोग का योग बनता है। इस रोग का योग इस प्रकार है—

(१) सूर्य, शुक्र एवं शनि तीनों एक स्थान में हों तो यह रोग होता है।[१]

कृष्ण पित्त के योग

निम्नलिखित योगों में उत्पन्न व्यक्ति को कृष्ण पित्त नामक रोग होता है।

(१) शनि षष्ठेश हो तथा वह पापग्रहों के साथ चतुर्थ स्थान में हो।[२]

(२) गुरु षष्ठेश हो तथा वह पापग्रहों के साथ चतुर्थ स्थान में हो।[३]

दाहरोग के योग

इस रोग में शरीर में निरन्तर जलन बनी रहती है। गले में खुश्की तथा आँखें लाल हो जाती हैं। यह रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभाववश होता है—

(१) दो पापग्रहों के बीच में चन्द्रमा हो तथा सप्तम भाव में शनेश्चर हो।[४]

(२) लग्न में मंगल तथा सप्तम स्थान में सूर्य हो।[५]

तृष्णा रोग के योग

बार-बार पानी पीने पर भी तृप्ति न होना तथा पुनः ठण्डा पानी पीने की इच्छा होना—इस रोग का मुख्य लक्षण है। इस रोग का विचार चन्द्रमा से होता है। यह रोग निम्नलिखित ग्रहयोग के कारण होता है—

(१) सिंह राशि में स्थित चन्द्रमा पर पापग्रहों की दृष्टि हो।[६]

(२) चन्द्रमा सिंह राशि में हो।[७]

अन्य पित्त रोगों के योग

रक्तपित्त, शीतपित्त, दाह एवं तृष्णा के अलावा अम्लपित्त, पित्तज्वर आदि अनेक पित्तरोग होते हैं। इन रोगों का निर्णय निम्नलिखित ग्रहयोगों से किया जाता है—

(१) षष्ठ स्थान में पापग्रह के साथ सूर्य हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो।[८]

(२) अष्टम स्थान में सूर्य, द्वितीय में पापग्रह तथा मंगल निर्बल हो।[९]

---

१. आदित्य शनि दैत्येज्याः सहैकस्थानमागताः।
जन्मकाले यदा यस्य जायते शीतपित्तवान्॥ वीरसिंहावलोक पृ० २२६।

२-३. भावप्रकाशः अ० ४ श्लोक ४।

४. जातकपारिजातः अ० ६ श्लो० ८९।

५. वीरसिंहावलोक दाहरोगाधिकार पृ० १०४।

६. सारावली अ० २३ श्लो० ३०।

७. वीरसिंहावलोक—तृष्णा रोगाधिकार पृ० ९४।

८-९. जातक पारिजात अ० ६ श्लो० ६८।

(३) लग्नेश एवं बुध त्रिक स्थान में हों।[1]

(४) शुक्र षष्ठेश हो और वह शनि के साथ मेष, सिंह या धनु राशि में हो।[2]

(५) शुक्र को षष्ठेश पूर्ण दृष्टि से तथा शनि चतुर्थ दृष्टि से देखता हो।[3]

(६) लग्न या अष्टम में मंगल के साथ लग्नेश हो और उस पर शुभग्रह की दृष्टि न हो।[4]

(७) लग्न या अष्टम में सूर्य के साथ लग्नेश हो और उस पर शुभग्रह की दृष्टि न हो।[5]

(८) द्वितीय, षष्ठ या अष्टम स्थान में राहु हो तथा लग्न पर मंगल की दृष्टि हो।[6]

(९) मेष लग्न या सिंह लग्न में जन्म हो।[7]

कफ रोग

कफ विकार से उत्पन्न रोगों को कफ रोग कहते हैं। इनमें खांसी, श्वास, श्लेष्मा, क्षय, हिक्का एवं छर्दि रोग प्रमुख हैं। जातक ग्रन्थों में इन रोगों के योगों का भलीभांति विचार किया गया है। इन योगों के आधार पर यह निर्णय किया जा सकता है, कि किस व्यक्ति को खांसी, श्वास, श्लेष्मा, हिक्का, छर्दि या क्षय रोग होगा।

खांसी एवं श्वास के योग

बार बार खांसना एवं दमा फूलने को खांसी एवं श्वास कहते हैं। यह रोग पुराना पड़ने पर दमा या अस्थमा कहलाता है। इस रोग के योग इस प्रकार हैं—

(१) शनि एवं गुलिक छठे भाव में हों, उन पर सूर्य, मंगल एवं राहु की दृष्टि हो तथा वे शुभ ग्रह से दृष्ट-युत न हों।[8]

(२) कर्कराशि में स्थित सूर्य पर शनि की दृष्टि हो।[9]

जुकाम एवं श्लेष्मा रोग

बार बार छींक आने तथा नजला बहने को जुकाम कहते हैं। यह जुकाम जब पुराना पड़ जाता है, तब वह श्लेष्मा कहलाता है। इन रोगों के योग इस प्रकार हैं—

(१) लग्न में पापग्रह के साथ चन्द्रमा हो तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो।[10]

---

१. जातकतत्व—षष्ठविवेक सू० ४३।
२-६. गदावली—अ० ३ श्लो० १-३।
७. यवन जातक—पृ० १ श्लो० १।
८. जातक पारिजात—अ० ६ श्लो० ९६।
९. सारावली—अ० २२ श्लो० ३३।
१०. जातकतत्व—षष्ठविवेक सू० १०६।

(२) षष्ठ भाव में क्रूरषष्ठ्यंश में मंगल एवं बुध हों तथा उन पर चन्द्रमा एवं शुक्र की दृष्टि हो।[१]

(३) वृष, कन्या, तुला या मकर लग्न में जन्म हो।[२]

(४ सूर्य, चन्द्र, मंगल, गुरु, शुक्र एवं शनि ये छः ग्रह एक स्थान में हो।[३]

क्षय रोग के योग

इस रोग में हाथ, पैर एवं बगल में गर्मी, महीन बुखार, छाती में बलगम तथा शरीर में कमजोरी रहती है। शरीर शनैः शनैः क्षीण होता जाता है। निम्नलिखित योगों में उत्पन्न व्यक्ति को क्षय या तपेदिक होता है—

(१) शुक्र एवं लग्नेश दोनों त्रिक स्थान में हों।[४]

(२) कारकांश से चतुर्थ एवं द्वादश स्थान में मंगल एवं राहु हों।[५]

(३) लग्न पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो।[६]

(४) सूर्य एवं चन्द्रमा एक दूसरे के नवांश में हों।[७]

(५ कर्क या सिंह राशि में चन्द्रमा एवं सूर्य हो।[८]

(६) शनि के साथ चन्द्रमा हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो।[९]

(७) कर्क में बुध हो।[१०]

(८) अष्टम में पापग्रह, पंचम में शनि तथा लाभ स्थान में सूर्य हो।[११]

(९ दशम में मंगल एवं शनि हों एवं अष्टम, चतुर्थ या लग्न में सूर्य हो।[१२]

(१०) षष्ठ या अष्टम में चन्द्रमा एवं मंगल हों और उन पर लग्नेश की दृष्टि हो।[१३]

(११) षष्ठ स्थान में जलराशि में पापयुक्त क्षीणचन्द्रमा हो तथा लग्न में पापग्रह हो।[१४]

(१२) केन्द्र में शनि, अष्टम में लग्नेश और षष्ठ में राहु हो तो ३६ वें वर्ष में क्षयरोग होता है।[१५]

हिक्का, स्वरभेद एवं छर्दि आदि अन्य कफ रोग

हिचकी आने को हिक्का तथा गले के बैठ जाने को स्वरभेद कहते हैं। खांसते-खाँसते उल्टी आने को छर्दि, काली खाँसी, कुकर खांसी, कहते हैं। ये समस्त कफरोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभाववश होते हैं—

---

१. जातक पारिजात—अ० ६ श्लो० ६९।

२. बृहद्यवन जातक—पृ २-३, श्लो० ३,६,७ एवं १०।

३. सारावली—अ० १९ श्लो० ४।

४. जातकालंकार—अ० ? श्लो ?।

५. जैमिनीय सूत्र—अ० १ पा० २ सू० ९१।

६. जातकतत्व—षष्ठविवेक सू० ४७।

७-१०. जातकतत्व—षष्ठविवेक सू० ४८-५१।

११-१५. गदावली —अ० ३ श्लो० १९-२०।

(१) चतुर्थ भाव में जो राशि या जिस राशि का नवांश हो उसमें पापयुक्त चन्द्रमा हो।[1]

(२) चतुर्थ स्थान में शनि से पीड़ित चन्द्रमा या सूर्य हो।[2]

(३) शनि एवं सूर्य का योग हो।[3]

(४) षष्ठस्थान में पापांश में मंगल एवं बुध हों तथा उन पर चन्द्रमा एवं शुक्र की दृष्टि हो।[4]

(५) षष्ठ स्थान में स्थित बुध एवं शुक्र को कृष्ण पक्ष का चन्द्रमा देखता हो तो छर्दि रोग होता है।[5]

ज्वर के योग

बुखार आने को ज्वर कहते हैं। इस रोग का प्रमुख प्रतिनिधि ग्रह सूर्य है तथा चन्द्रमा एवं मंगल इसके सहायक ग्रह माने गये हैं। यह रोग निम्नलिखित ग्रह योगों के कारण होता है—

(१) लग्नेश एवं षष्ठेश सूर्य के साथ हो।[6]

(२) राहु, सूर्य एवं मंगल के साथ शनि हो।[7]

(३) षष्ठ स्थान में मंगल तथा अष्टम स्थान में षष्ठेश हो तो छठे या १२ वें वर्ष में ज्वर आता है।[8]

(४) अष्टमेश क्रूर षष्ठ्यंश में राहु या केतु के साथ हो तो चातुर्थिक (चौथिया) ज्वर आता है।[9]

(५) गुरु की दशा में मंगल का अन्तर हो।[10]

(६) शनि की दशा में शनि का ही अन्तर हो।[11]

(७) नीच राशिस्थ सूर्य की दशा हो।[12]

(८) क्षीण चन्द्रमा की दशा हो।[13]

१-४. गदावली—अ० ३ श्लो० ८।

५. रिपुस्थाने यदा स्यातां चान्द्रिशुक्रौ ततो भवेत्।
छर्दिमान्मनुजः कृष्णपक्षचन्द्रावलोकितौ ॥
वीरसिंहावलोक —छर्दिरोगाधिकार—पृ० ६१।

६. भावप्रकाश—अ० ७ श्लो० ४।

७-८. गदावली—अ० ३ श्लो० १७।

९. गदावली —अ० ३ श्लो० १७।

१०-११. जातक पारिजात —अ० १८ श्लो० ११७, १२२।

१२. सारावली —अ० ४२ श्लो० १६।

१३. वीर सिंहावलोक-ज्वररोगाधिकार पृष्ठ २।

(९) केतु की दशा में बुध की अन्तर्दशा हो।[1]
(१०) शनि की महादशा में राहु की अन्तर्दशा हो।[2]

पीलिया के योग—

इस रोग में नाखून, नेत्र एवं शरीर का रंग पीला हो जाता है। टट्टी एवं पेशाब का रंग भी पीला होता है तथा शरीर में खून की कमी हो जाती है। यह रोग निम्नलिखित ग्रह योगों के प्रभाववश होता है—

(१) मंगल के साथ चन्द्रमा षष्ठ स्थान में हो।[3]
(२) अष्टम स्थान में शनि हो।[4]
(३) सिंह राशि के नवांश में चन्द्रमा हो।[5]

कामला रोग के योग—

इस रोग में आँखों में पीलापन तथा शरीर में खून की कमी हो जाती है। यह रोग निम्नलिखित ग्रह योगों के कारण होता है—[6]

(१) षष्ठस्थान में मंगल के साथ चन्द्रमा हो।[7]
(२) शुक्र की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा हो।[8]

सूखारोग के योग—

इस रोग में रोगी का शरीर सूख जाता है। फलितज्योतिष में सूर्य को शुष्क तथा चन्द्रमा को जलीय ग्रह माना गया है। अतः इन दोनों ग्रहों के परस्पर योग से यह रोग होता है। जातक ग्रन्थों में इस रोग के अनेक योग बतलाये गये हैं, उनमें कुछ प्रमुख योग इस प्रकार हैं :—

(१) सूर्य एवं चन्द्रमा सिंह राशि में हों।[9]
(२) सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों कर्क राशि में हों।[10]
(३) सूर्य एवं चन्द्रमा परस्पर एक दूसरे की राशि में हों।[11]
(४) सूर्य कर्क राशि में या कर्क के नवांश में हो।[12]
(५) चन्द्रमा सिंह राशि में या सिंह के नवांश में हो।[13]

---

१ २. वीरसिंहावलोक-ज्वररोगाधिकार पृष्ठ २।
३. जातकपारिजात—अ० ६ श्लो० ९२।
४-५. वीरसिंहावलोक—पाण्डुरोगाधिकार पृ० ५१।
६. जातक पारिजात—अ० ६ श्लो० ९२।
७. वीरसिंहावलोक—कामलारोगाधिकार पृ० ५३।
८-१०. जातकपारिजात—अ० ६० श्लो० ७८।
११. जातकतत्व-षष्ठ विवेक सू० १००।
१२-१३. गदावली—अ० ३ श्लो० २१।

उक्त योगों के अलावा शुष्क ग्रह एवं शुष्क राशियों के प्रभाववश भी इस रोग के योग बनते हैं। फलित ज्योतिष में सूर्य, मंगल एवं शनि को शुष्क ग्रह तथा मेष, वृष, मिथुन, सिंह, कन्या एवं धनु राशि को शुष्क राशियां माना गया है। इन दोनों के प्रभाववश इस रोग के निम्नलिखित योग बनते हैं—

(१) लग्नेश दुर्बल हो तथा वह शुष्क राशि में हो।[१]
(२) लग्न में शुष्क राशि में शुष्क ग्रह हो।[२]
(३) लग्नेश शुष्क ग्रह हो तथा वह शुष्क ग्रहों की राशि में हो।[३]
(४) लग्नेश अष्टम स्थान में शुष्क राशि में हो।[४]
(५) लग्नेश जिस नवांश में हो उसका स्वामी शुष्क ग्रह हो।[५]

शोफ रोग के योग

यह रोग निम्नलिखित ग्रह योगों के प्रभाववश होता है—

(१) कर्क राशि में स्थित सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो।[६]
(२) गुरु षष्ठेश होकर लग्न में हो और उसे पापग्रह देखता हो।[७]
(३) शुक्र षष्ठेश होकर लग्न में हो तथा उसे पापग्रह देखता हो।[८]
(४) नीच राशि में स्थित गुरु की दशा हो।[९]

मिरगी एवं मूर्च्छा के योग—

मिरगी का दौरा पड़ने पर मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है। उसके मुँह से झाग निकलते हैं तथा हाथ-पैर में ऐंठन हो जाती है। इस प्रकार के रोगों के योगों का विचार मानसिक रोगों के प्रकरण में किया जा चुका है।

मूर्च्छा रोग मुख्यतः मंगल के प्रभाववश होता है।[१०] अतः यदि मंगल लग्न या षष्ठस्थान का स्वामी हो, वह पापयुत या पापदृष्ट हो, निर्बल हो या त्रिक आदि अनिष्ट स्थान में हो तो यह रोग होता है।

---

१. देखिए—जातकतत्व—प्रकीर्ण सू० ३४।
२-३. दैवज्ञाभरण पृ० ७३ श्लो० ४६-४८।
४-५. दैवज्ञाभरण—पृ० ७३ श्लो० ४६-४८।
६. देखिए—(क) सारावली—अ० २२ श्लो० ३६।
(ख) जातकाभरण—दृष्टिफलाध्याय श्लो० २१
७-८. गदावली—अ० ३ श्लो० ३४।
९. सारावली—अ० ४१ श्लो० ४४।
१०. मूर्च्छाशोणितदोषाः शाखाच्छेदो व्रणश्चापि।
पित्तसमुत्थैर्दोषैरभिभूतो मानवो भवति॥
—वीरसिंहावलोक-मूर्च्छारोगाधिकार पृ० ६४।

रक्त विकार के योग—

रक्तचाप, रक्तापात एवं रक्ताल्पता आदि अनेक प्रकार के रक्त विकार होते हैं। इन सब रोगों का प्रतिनिधि ग्रह मंगल होता है। अतः यदि मंगल पापग्रहों से दृष्ट-युत हो, निर्बल हो या अनिष्ट स्थान में स्थित हो तो रक्तविकार होते हैं। रक्तविकारवाले रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभाववश होते हैं :—

(१) लग्न, षष्ठ, सप्तम या व्यय भाव में शनि के साथ मंगल हो और उस पर सूर्य की दृष्टि हो।[१]

(२) मंगल नीचराशिगत, अस्तंगत या शत्रुराशि गत हो।[२]

(३) द्वितीय या अष्टम स्थान में गुलिक के साथ मंगल हो।[३]

(४) द्वितीयेश मंगल से दृष्ट या युत हो।[४]

(५) द्वितीय स्थान में स्थित मंगल पर सूर्य की दृष्टि हो।[५]

(६) लग्न में शनि हो तथा षष्ठ या दशम स्थान में स्थित चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि हो।[६]

मेदो रोग के योग—

मांस एवं मेद की अधिक वृद्धि से पेट, स्तन एवं नितम्बों का बढ़ना तथा शरीर का अतिस्थूल होना मेदोरोग कहलाता है। इस रोग का प्रमुख प्रतिनिधि ग्रह गुरु माना गया है। जलीय ग्रह तथा जलीय राशियाँ उसकी सहायक होती हैं। चन्द्रमा एवं शुक्र को जलीय ग्रह तथा कर्क, तुला; वृश्चिक, मकर, कुम्भ एवं मीन राशियों को जलीय राशियाँ कहते हैं।[७] यह रोग निम्नलिखित ग्रह योगों के कारण होता है—

(१) द्वादश स्थान में शुक्र हो।[८]

(२) लग्न में जलीय राशि में गुरु हो।[९]

(३) लग्न में जलीय राशि हो तथा जलीय राशि गत गुरु की लग्न पर दृष्टि हो।[१०]

(४) लग्न में जलीय राशि में शुभ ग्रह हो तथा उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो।[११]

(५) लग्न में जलीय राशि या उसके नवांश में जलीय ग्रह हो।[१२]

वीर्यविकार—

वीर्य का पतलापन, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष एवं वीर्य में शुक्राणुओं का अभाव (नपुंसकता) आदि को वीर्यरोग कहते हैं। इन सब रोगों तथा इनके सूचक योगों का विचार पिछले अध्याय में गुप्त रोगों के प्रसंग में किया जा चुका है।

१-६. देखिए—(क) सर्वार्थ चिन्तामणि–अ० ३ श्लो० १४७-४८।
(ख) गदावली–अ० ३ श्लो० १४ एवं २१।

७. जातकतत्व–प्रकीर्ण सू० ३४।

८. वीरसिंहावलोक–मेदोरोगाधिकार पृ० १७।

९-१२. दैवज्ञाभरण–पृ० ७२ श्लो० ४२-४३।

चर्मविकार—

दाद, खाज, खुजली, फोड़ा, फुन्सी, गण्ड, विसर्प, स्फोट एवं कुष्ठ आदि को चर्म रोग कहते हैं। इन रोगों से कुष्ठ रोग तथा उसके योगों का विचार संचारी (छूत) रोगों के प्रसंग में पिछले अध्याय में किया जा चुका है। अतः यहाँ चर्मरोगों का विचार करते समय हम केवल दाद, खाज, खुजली, फोड़ा-फुन्सी, गण्ड, विसर्प एवं स्फोट के योगों का विचार करेंगे।

दाद, खाज एवं खुजली के योग—

दाद, खाज एवं खुजली—ये चर्मरोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण होते हैं—

(क) द्वितीय भाव में जलीय राशि में शनि के साथ चन्द्रमा हो तो दाद होती है।[1]

(२) द्वितीय भाव में जलचर राशि में चन्द्रमा हो तथा चतुर्थ भाव में सूर्य हो तो दाद होती है।[2]

(३) द्वितीय स्थान में जलचर राशि में स्थित चन्द्रमा पर शनि की दृष्टि हो तो दाद होती है।[3]

(४) लग्न में सूर्य हो तो दाद होती है।[4]

(५) सप्तम स्थान में कर्क, वृश्चिक या मीन राशि में चन्द्रमा हो और वह भूमिभावगत शनि से युक्त हो तो दाद होती है।[5]

(६) सप्तम स्थान में बुध, सूर्य एवं चन्द्रमा हो तथा अन्य ग्रह चतुर्थ स्थान में हो तो १६ वें वर्ष में दाद होती है।[6]

(७) पापग्रह के साथ चन्द्रमा नवम भाव में हो तो खाज होती है।[7]

(८) कारकांश में मिथुन राशि हो तो खुजली होती है।[8]

(९) कारकांश में मकर राशि हो तो खुजली होती है।[9]

(१०) तृतीय भाव में मंगल के साथ बलवान् शनि हो तो खुजली होती है।[10]

(११) सूर्य की दशा में बुध की अन्तर्दशा हो तो दाद, खाज या खुजली होती है।[11]

---

१. भावप्रकाश—४-८

२. जातकालंकार—अ० ३

३-४. जातकतत्व—षष्ठविवेक सू० १५१-५२।

५-६. गदावली —अ० ३ श्लो० ४६।

७. जातकतत्व—षष्ठ विवेक सू० १३७।

८. जैमिनीय सूत्र—१-२-४।

९. तत्रैव १-२-११।

१०. जातक पारिजात—अ० १२ श्लो० ४३।

११. सारावली—अ० ४२ श्लो० १४।

(१२) लग्न में मेष, मकर या जलचर राशि हो तथा उस पर शनि की दृष्टि हो तो खुजली होती है ।[1]

(१३) नवम भाव में पापग्रह के साथ चन्द्रमा हो तथा उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो तो खुजली होती है ।[2]

(१४, जलचर राशि में स्थित चन्द्रमा जलचर राशिगत शनि से दृष्ट या युत हो तो खुजली होती है ।[3]

(१५) नवम स्थान में पापयुक्त चन्द्रमा हो तो खुजली होती है ।[4]

(१६) तृतीय भाव में मंगल के साथ बलवान् शनि हो तो खुजली होती है ।[5]

फोड़ा, फुन्सी, छाले एवं घाव होने के योग—

निम्नलिखित योगों में उत्पन्न होने वाले व्यक्ति के शरीर में फोड़ा, फुन्सी, छाले या घाव होते हैं :—

(१) लग्न, सप्तम या अष्टम भाव में स्थित सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो तो फोड़ा होता है ।[6]

(२) लग्न, षष्ठ, सप्तम या द्वादश भाव में स्थित गुलिक एवं मंगल को सूर्य-देखता हो तो फोड़ा होता है ।[7]

(३) लग्न, द्वितीय, सप्तम या अष्टम स्थान में स्थित मंगल पर सूर्य की दृष्टि हो तो फोड़ा होता है ।[8]

(४) वृश्चिक राशि में स्थित मंगल पर गुरु या शुक्र की दृष्टि न हो तो फुंसियाँ होती हैं ।[9]

(५) सप्तम स्थान में केतु एवं मंगल हो तो फुंसियां होती हैं ।[10]

(६) लग्नेश एवं मंगल त्रिक स्थान में हों तो शरीर में गांठ तथा उसके फूटने से घाव होते हैं ।[11]

(७) षष्ठेश चन्द्रमा के साथ लग्न या अष्टम में हो तो मुंह में छाले होते हैं ।[12]

(८) षष्ठेश मंगल के साथ लग्न या अष्टम में हो तो गले में छाले या घाव होते हैं ।[13]

---

१. दैवज्ञ कल्पद्रुम–पं० गंगाराम मुखोपाध्याय, धौलपुर पृ० १८४

२. दैवज्ञ कल्पद्रुम–पूर्वोद्धृत. पृ० १८४

३. तत्रैव.

४. तत्रैव.

५. तत्रैव.

६-८. जातकतत्व—षष्ठविवेक सू० १६४–६६ ।

९-११. तत्रैव सू० २०-२२ ।

१२-१३. जातकतत्व--षष्ठविवेक सूत्र २८-३४, ३६ ।

(९) षष्ठेश बुध के साथ लग्न या अष्टम में हो तो हृदय या वक्ष पर घाव होता है।[१]

(१०) षष्ठेश गुरु के साथ लग्न या अष्टम में हो तो नाभि के पास घाव होता है।[२]

(११) षष्ठेश शुक्र के साथ लग्न या अष्टम में हो तो आँख में गुहेरी या रोहे होते हैं।[३]

(१२) षष्ठेश शनि के साथ लग्न या अष्टम में हो तो पैरों में छाले या घाव होते हैं।[४]

(१३) षष्ठेश राहु या केतु के साथ लग्न या अष्टम में हो तो होठों पर छाले या घाव होते हैं।[५]

(१४) व्यय स्थान में चन्द्रमा एवं गुरु तथा त्रिक स्थान में बुध हो तो गुदा में घाव होते हैं।[६]

गण्डरोग के योग

शरीर में गांठें होने को गण्ड रोग कहते हैं। यह रोग निम्नलिखित ग्रह योगों के प्रभाववश होता है :

(१) षष्ठ या अष्टम स्थान में मंगल एवं शनि हों तथा उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।[७]

(२) मंगल के साथ लग्नेश त्रिक स्थान में हो।[८]

(३) लग्नेश सूर्य के साथ त्रिक स्थान में हो तो तापगण्ड होता है।[९]

(४) लग्नेश चन्द्रमा के साथ त्रिक स्थान में हो तो जलज गण्ड होता है।[१०]

(५) चन्द्रमा लग्नेश एवं षष्ठेश त्रिक स्थान में हो तो जलज गण्ड होता है।[११]

(६) यदि कारकांश कुण्डली में मकर लग्न हो तो शरीर में गाँठें होती हैं।[१२]

(७) लग्नेश, षष्ठेश या अष्टमेश सूर्य के साथ हो तो जलगण्ड होता है।[१३]

(८) लग्नेश, षष्ठेश या अष्टमेश चन्द्रमा के साथ हो तो जलगण्ड होता है।[१४]

(९) लग्नेश, षष्ठेश या अष्टमेश मंगल के साथ हो तो गांठ या शस्त्र से घाव होता है।[१५]

(१०) लग्नेश, षष्ठेश या अष्टमेश बुध के साथ हो तो पित्तज गण्ड होता है।[१६]

१-६. जातकतत्व—षष्ठविवेक सूत्र २८-३४, ३६।

७. देखिए—(क) जातकतत्व—षष्ठ विवेक सू० ३७

(ख) गदावली—अ० ३ श्लो० ६३।

८-१३. देखिए—(क) जातकतत्व—षष्ठविवेक सू० ३८-४२।

(ख) गदावली—अ० ३ श्लो० ६३-६४।

१४-१७. दैवज्ञाभरण—प्र० १४ श्लो० २०।

विसर्प एवं स्फोट के योग—

त्वचा, मांस एवं रक्त के दूषित होने पर सर्प की तरह चारों ओर फैलने वाला रोग विसर्प कहलाता है। इसे जहरबाद या सेप्टिक भी कहते हैं।

स्फोट रोग में त्वचा, मांस, रक्त एवं अस्थि के दोष से आग से झुलसे हुए व्यक्ति के समान, शरीर पर छाले या चकत्ते पड़ जाते हैं तथा इन छालों या फफोलों की जगह मांस एवं चमड़ी फट जाती है।

इन रोगों के योग इस प्रकार हैं :—

(१) अष्टम स्थान में स्थित सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो तो विसर्प या स्फोट रोग होता है।[१]

(२) लग्न, द्वितीय, सप्तम या अष्टम स्थान में सूर्य हो तथा उस पर मंगल की दृष्टि हो तो स्फोट रोग होता है।[२]

(३) लग्न, द्वितीय, सप्तम या अष्टम में मंगल हो और उस पर सूर्य की दृष्टि हो तो स्फोट रोग होता है।[३]

(४) अष्टमेश तृतीयेश के साथ लग्न में हो तो स्फोट से मृत्यु होती है।[४]

(५) अष्टमेश मंगल के साथ लग्न में हो तो स्फोट से मृत्यु होती है।[५]

स्नायु विकार योग

स्नायुओं में दुर्वलता या दर्द होना स्नायु विकार कहलाता है। यह रोग अष्टम स्थान में शुक्र के होने पर होता है।[६]

विद्रधि, वादी एवं मुक्ति विरोध रोगों के योग

(१) षष्ठ भाव में पापांशक में पापदृष्ट गुरु हो तथा षष्ठेश पापग्रह गे दृष्ट-युत हो तो विद्रधि रोग होता है।[७]

(२) सप्तमस्थान में सूर्य एवं शुक्र हो तथा उन पर पापग्रह की दृष्टि हो तो वादी हो जाती है।[८]

---

१. निधनस्थे दिवानाथे भूसुतेन विलोकिते।
विसर्पस्फोटका रोगा जायन्ते तस्य जन्मिनः ॥ वीरसिंहावलोक-
विसर्पस्फोटाधिकार पृ० २३०।

२-३. सर्वार्थचिन्तामणि—अ० ३ श्लो० १४६।

४-५. दैवज्ञाभरण—प्र० १६ श्लो० ५६।

६. तत्रैव अ० १६ श्लो० ११॥

७. गदावली—अ० ३ श्लो० ३१।

८. तत्रैव श्लो० १६।

(३) चतुर्थ भाव में मंगल हो, लग्न एवं शनि दोनों पर पापग्रह की दृष्टि हो तो मुक्ति विरोध (गले में घुटन) होता है।[1]

(४) अष्टमेश निर्बल हो, लग्न पर पापग्रहों की दृष्टि हो तथा अष्टम भाव शनि से दृष्ट या युत हो तो मुक्ति विरोध होता है।[2]

अनेक रोगों के योग

बहुत से व्यक्तियों को एक साथ अनेक रोग होते हैं। तथा वे साथ-साथ काफी दिनों तक चलते हैं। इस प्रकार एक समय में अनेक रोग होने का विचार तथा उनके योगों की चर्चा जातक ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर मिलती है।

एक समय में एक व्यक्ति को अनेक रोग होने के सूचक कुछ प्रसिद्ध योग इस प्रकार हैं—

(१) अष्टम स्थान में शनि हो तो कुष्ठ एवं भगन्दर आदि रोग होते हैं।[3]

(२) वृष राशि में सूर्य हो तो मुख एवं नेत्र के रोग होते हैं।[4]

(३) कर्क राशि में सूर्य हो तो कफ एवं पित्त विकार होता है।[5]

(४) कर्क राशि में स्थित सूर्य को मंगल देखता हो तो शोफ एवं भगन्दर होता है।[6]

(५) कर्क राशि में स्थित सूर्य को शनि देखता हो तो कफ एवं वायु विकार होता है।[7]

(६) सिंह राशि में स्थित सूर्य को शुक्र देखता हो तो अर्श एवं कुष्ठ होता है।[8]

(७) कर्क राशि में स्थित मंगल पर शनि की दृष्टि हो तो अनेक रोग होते हैं।[9]

(८) धनु या मीन राशि में स्थित बुध पर सूर्य की दृष्टि हो तो शूल, प्रमेह एवं पथरी होती है।[10]

(९) दो पापग्रहों के मध्य में चन्द्रमा हो तथा सप्तम भाव में शनि हो तो श्वास, क्षय, प्लीहा एवं गुल्म रोग होता है।[11]

---

१. गदावली—अ० ३, श्लो० ३८।
२. प्रश्नमार्ग—अ० १२ श्लो० ६३।
३. सारावली—अ० ३० श्लो० ८१।
४. तत्रैव अ० २२ श्लो० १०।
५. तत्रैव अ० २२ श्लो० २६।
६. तत्रैव अ० २२ श्लो० २९।
७. तत्रैव अ० २२ श्लो० ३३।
८-१०. तत्रैव अ० २२ श्लो० ४०, अ० २५ श्लो० ४४, एवं अ० ३६ श्लो० ५५।
११. वृहद्यवनजातक—पृ० १४ श्लो० १४,

(१०) लग्न में सूर्य, राहु, मंगल एवं शनि हो तो रुधिर विकार एवं पाण्डुरोग होते हैं।[१]

(११) लग्न में पापग्रह की राशि में गुरु एवं चन्द्रमा हों तो शिर में चोट, वातशूल एवं मन्दाग्नि होती है।[२]

(१२) दो पापग्रहों के मध्य में चन्द्रमा हो तथा मकर राशि में सूर्य हो तो खाँसी, श्वास, क्षय, प्लीहा, विद्रधि एवं गुल्म रोग होता है।[३]

(१३) षष्ठ स्थान में मंगल के साथ चन्द्रमा हो तो भ्रान्ति एवं पाण्डु आदि रोग होते हैं।[४]

(१४) षष्ठ स्थान में चन्द्रमा, सूर्य एवं मंगल हो तो शूल एवं विसर्प रोग होता है।[५]।

(१५) षष्ठस्थान में गुलिक के साथ शनि हो तथा उस पर सूर्य, मंगल एवं राहु की दृष्टि हो तो खाँसी, श्वास एवं क्षयरोग होते हैं।[६]

(१६) षष्ठेश निर्बल हो या लग्न में मंगल हो तो शिर में पीड़ा, मुखरोग या गुल्म एवं विद्रधि रोग होते हैं।[७]

(१७) षष्ठ स्थान में मंगल हो तथा षष्ठेश पापग्रहों से युत-दृष्ट हो तो शूल एवं प्रमेह रोग होते हैं।[८]

(१८) षष्ठ स्थान में बुध हो तथा षष्ठेश पापग्रहों से युत-दृष्ट हो तो श्लेष्मा एवं वायु विकार होते हैं।[९]

(१९) षष्ठस्थान में शुक्र हो तथा षष्ठेश पापग्रहों से युतदृष्ट हो तो शूल एवं अतिसार आदि रोग होते हैं।[१०]

(२०) चन्द्रमा या राहु व्यय स्थान में हो, शनि त्रिकोण में हो तथा सूर्य सप्तम या अष्टम स्थान में हो तो दन्तरोग एवं नेत्र रोग होते हैं।[११]

(२१) सप्तम स्थान में पापयुक्त सूर्य हो तो वायु विकार, उदर विकार एवं रक्तविकार होता है।[१२]

(२२) लग्न, द्वितीय, सप्तम या अष्टम में सूर्य या मंगल हो तथा सूर्य एवं मंगल की परस्पर दृष्टि हो तो रक्त विकार, दाह एवं चेचक रोग होता है।[१३]

(२३) परिवेश में स्थित चन्द्रमा शनि के साथ हो तथा उसपर मंगल की दृष्टि हो तो मिरगी, क्षय एवं संग्रहणी रोग होता है।[१४]

१-२. वृहद्यवनजातक—पृ० १५ श्लो० १८-१९।

३. वृहज्जातक—अ० २३ श्लो० ८।

४-७. सर्वार्थचिन्तामणि—षष्ठभाव विचार श्लो० २६, ३९ एवं ४२।

८-९. दैवज्ञाभरण—प्र० १४ श्लो० २९ एवं ३१।

११. दैवज्ञाभरण—प्र० १४ श्लो० २९ एवं ३१।

१२. जातकपारिजात—अ० ६ श्लो० ८४।

१३-१४. गदावली—अ० ४ श्लो० ३-११।

(२४) कर्क या सिंह राशि में एक साथ सूर्य एवं चन्द्रमा बैठे हों तो कमजोरी, सूखा एवं क्षय रोग होता है।[१]

(२५) अष्टम स्थान में जिस राशि का नवांश हो उसमें राहु हो तथा नवांशेश पंचम, नवम या अष्टम स्थान में हो तो गठिया एवं प्रमेह आदि रोग होते हैं।[२]

(२६) लग्न में सूर्य हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो तो श्वास, क्षय एवं गुल्म रोग होता है।[३]

(२७) लग्न में शनि हो तथा लग्नेश पापाक्रान्त हो तो प्लीहा तथा अर्श रोग होता है।[४]

(२८) चतुर्थ स्थान में शनि हो तो प्लीहा रोग तथा नेत्र रोग होते हैं।[५]

(२९) षष्ठ स्थान में चन्द्रमा तथा लग्न में शुक्र हो तो मूर्छा, मिरगी एवं उन्माद होता है।[६]

(३०) लग्न में मङ्गल हो तथा षष्ठेश निर्बल हो तो, गुल्म, शूल एवं अजीर्ण रोग होते हैं।[७]

(३१) सप्तम स्थान में सूर्य, मङ्गल एवं शनि हो तो भगन्दर, वातशूल एवं अर्श रोग होते हैं।[८]

(३२) अष्टम स्थान में मङ्गल के साथ चन्द्रमा हो तो भगन्दर, अर्श एवं कुष्ठ रोग होते हैं।[९]

(३३) लग्न में चन्द्रमा तथा सप्तम स्थान में सूर्य एवं मङ्गल हो तो फोड़ा, फुन्सी एवं घाव होते हैं।[१०]

(३४) सप्तम स्थान में मङ्गल हो तथा वह पापग्रह से युक्त दृष्ट हो तो मूत्रकृच्छ्र एवं नपुंसकता होती है।[११]

(३५) अष्टम तथा षष्ठ स्थान में चन्द्रमा एवं शुक्र हों तो मन्दाग्नि एवं उससे अनेक उदर विकार होते हैं।[१२]

(३६) लग्न एवं अष्टम दोनों भावों पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो दाद, खुजली श्वेतकुष्ठ एवं मन्दाग्नि रोग होते हैं।[१३]

(३७) लग्नेश एवं अष्टमेश दोनों राहु या केतु के साथ हों तो सूर्य, जल, चोर, अग्नि आदि का भय होता है।[१४]

(३८) अष्टम स्थान में जलचर राशि में पापग्रह के साथ क्षीण चन्द्रमा हो तो जलोदर एवं क्षय रोग होता।[१५]

१-५. गदावली—अ० ४ श्लो० ३--११।

६-९. गदावली—अ० ४ श्लो० ३-११।

१०-१३. गदावली—अ० ४ श्लो० १२, १६-१८।

१४-१५. तत्रैव श्लो० २० एवं २२।

इन योगों के अलावा जातक ग्रंथों में कुछ ऐसे योग भी बतलाये गये हैं, जिनके प्रभाववश अनेक रोग तो होते हैं, किन्तु कौन-कौन से रोग होते हैं ?—इस बात का वहाँ विवेचन नहीं किया गया। इस प्रकार के योगों में रोग का परिज्ञान योगकारक ग्रहों में से वलवान् ग्रह के आधार पर कर लेना चाहिए। उक्त अनेक रोगदायक ग्रह योग इस प्रकार हैं :—

(१) लग्नेश एवं षष्ठेश एक दूसरे को देखते हों।[१]

(२) लग्न में सूर्य हो, पंचम या षष्ठ भाव में चन्द्रमा हो तथा लग्नेश पापग्रह के साथ हो।[२]

(३) लग्न में सूर्य चन्द्रमा एवं शनि हो।[३]

(४) लग्न, द्वितीय एवं द्वादश में पापग्रह हो।[४]

(५) षष्ठ, सप्तम एवं अष्टम में शुक्र, गुरु एवं चन्द्रमा हो।[५]

(६) लाभेश षष्ठ भाव में हो।[६]

(७) लग्नेश पाप ग्रह के साथ त्रिकस्थान में हो।[७]

(८) षष्ठेश, अष्टमेश एवं व्ययेश (स्वस्थान में) स्वराशि में हो।

(९) लग्न में क्रूर पापग्रह हो तथा लग्नेश निर्बल हो।[९]

(१०) लग्नेश एवं षष्ठेश दोनों लग्न या त्रिकस्थान में हों।[१०]

(११) षष्ठेश पापग्रह के साथ लग्न में हो।[११]

इन योगों में से किस योग पर कौन-कौन से रोग होंगे ?—इसका परिज्ञान योगकारक ग्रहों में से वलवान् ग्रह के आधार पर किया जाता है। अर्थात् उक्त योगों में योगकारक ग्रहों में से जो सूर्य आदि ग्रह सर्वाधिक बलशाली हो उसके अनुसार व्यक्ति को होने वाले अनेक रोगों की जानकारी की जा सकती है, यथा—

योगकारक ग्रहों में सूर्य बलवान् हो तो पित्तविकार, गर्मी, ज्वर, दाह, मूर्च्छा, गिर जाना, मिरगी, हृदयरोग, वस्तिरोग, नेत्ररोग, चर्मरोग, अस्थिस्राव, कुष्ठ आदि रोग तथा अग्नि, शस्त्र, विष, पशु, सर्प, चोर, नृप एवं भूतप्रेतादि से भय होता है।[१२]

१-६. गदावली—अ० ४ श्लो० १-२।

७-९. देखिए—(क) जातकालंकार–भावफलाध्याय श्लो० १।

(ख) भावप्रकाश—अ० ३ श्लो० १।

१०. जातक पारिजात—अ० ११ श्लो० ३३।

११. भाव प्रकाश –अ० ३ श्लो० ५२।

१२. पित्तोष्णज्वरतापदेहपतनापस्मारहृत्क्रोडज,
व्याधीन् वक्ति रविर्हृदार्त्यग्निभयं त्वग्दोषमस्थिस्रवम्।
कुष्ठाग्न्यस्त्रविषार्तिदारतनयव्यापच्चतुष्पाद्भयं,
चोरक्ष्मापतिधर्मदेवफणभृत्भूनेशभूताद्भयम्॥ प्रश्नमार्ग—अ० १२ श्लो० ६७।

योगकारक ग्रहों में यदि चन्द्रमा बलवान् हो, तो निद्रा, आलस्य, कफविकार, अतिसार, फोड़ा-फुन्सी, शीतज्वर, मन्दाग्नि, कामला, मानसिक रोग, रक्तविकार आदि रोग तथा सींग वाले पशु, जलचर जन्तु, बालग्रह, सर्प एवं यक्ष आदि से भय होता है।[1]

योगकारक ग्रहों में यदि मंगल बलवान् हो तो तृष्णा, रक्तविकार, पित्त विकार, ज्वर, कुष्ठ, नेत्र विकार, गुल्म, अपस्मार, गंजा रोग, जड़ता, खुजली आदि रोग, राजा, शत्रु, ब्रह्मराक्षस, गन्धर्व, घोर-ग्रह आदि भय तथा शरीर के ऊपरी हिस्से में रोग होता है।[2]

योगकारक ग्रहों में यदि बुध बलवान् हो तो भ्रान्ति, वाक्‌दोष, नेत्र गला एवं नासिका के रोग, ज्वर, त्रिदोष, विषरोग, चर्मरोग, पाण्डु चेचक आदि रोग, गिरने से चोट तथा गन्धर्व, भूदेव भुवनवासी एवं किन्नरों से पीड़ा होती है।[3]

योगकारक ग्रहों में गुरु बलवान् हो, तो गुल्म आन्त्रज्वर, मूर्च्छा, कफविकार, कर्ण-रोग, प्रमेह तथा ब्राह्मण या देवता के शाप से उत्पन्न रोग तथा किन्नर, यक्ष, देवता, सर्प एवं विद्याधर के कोप से उत्पन्न रोग होते हैं।[4]

---

१. निद्रालस्यकफातिसारपिटकाः शीतज्वरं चन्द्रमाः,
शृङ्‌ग्यब्जाहतिमग्निमान्द्यकृशतायोषिद्व्यथा कामिलाः।
चेतश्शान्तिमसृग्विकारमुदकाद्भीतिं च बालग्रहम्,
दुर्गाकिन्नरधर्मदेवफणभृद्यक्षाच्च पीड़ां वदेत्॥ प्रश्नमार्ग—अ० १२ श्लो० ६८।

२. तृष्णासृक्कोपपित्तज्वरमनलविषास्त्रार्तिकुष्ठाक्षिरोगान्,
गुल्मापस्मारमज्जाविहतिपरुषतापामिकादेहभङ्गान्।
भूपारिस्तेनपीडा सहजसुतसुहृद्वैरयुद्धं विधत्ते,
रक्षो गन्धर्वघोरैर्ग्रहभयमवनीसूनुरूर्ध्वाङ्गरोगम्॥ तत्रैव श्लो० ६९।

३. भ्रान्तिं दुर्वचनं दृगामयगलघ्राणोत्थरोगान् ज्वरं,
पित्तश्लेष्मसमीरजं विषमपि त्वग्दोषपाण्ड्वामयान्।
दुस्स्वप्नं च विचर्चिकां निपतनं पारुष्यबन्धश्रमान्,
गन्धर्वक्षितिहर्म्यवासिमयुभिर्ज्ञो वक्ति पीड़ां खगैः॥ तत्रैव श्लो० ७०।

४. गुल्मान्त्रज्वरशोकमोहकफजश्रोत्रार्तिमोहामयान्,
देवस्थाननिधिप्रपीडनमहीदेवेशशापोद्भवम्।
रोगं किन्नरयक्षदेवफणभृद्विद्याधराद्युद्भवं,
जीवः सूचयति स्वयं बुधगुरुकृष्णापचारोद्भवम्॥ तत्रैव श्लो० ७१।

योग कारक ग्रहों में यदि शुक्र बलवान् हो तो पाण्डु, श्लेष्मा, वातविकार, नेत्र-विकार, (निंद्राटन), थकान, गुप्तरोग, मूत्ररोग, रतिरोग एवं शोफ आदि रोग, शरीर की क्रान्ति का ह्रास तथा योगिनी, यक्षिणी एवं मातृकाओं से भय होता है।[1]

योगकारक ग्रहों में यदि शनि बलवान् हो तो वातविकार, श्लेष्मा, पङ्गुता, आपत्ति (आकस्मिक रोग) आलस्य, थकान, भ्रान्ति, कुक्षिरोग, उष्णता (दाह), अंग-भंगता, हृदयरोग, वृक्ष एवं पत्थर से चोट तथा दुष्टग्रह एवं पिशाच से भय होता है।[2]

योगकारक ग्रहों में यदि राहु बलवान् हो तो देहताप, कुष्ठ, असाध्य रोग, विष विकार एवं पादरोग तथा पिशाच, सर्प एवं शत्रु से भय होता है।[3] योग कारक ग्रहों में केतु बलवान् हो तो वह राहु के रोगों के अलावा प्रेतपीड़ा तथा विषविकार का सूचक होता है।[4]

---

१. पाण्डुश्लेष्मरुत्प्रकोपनयनव्यापत्तितन्द्राश्रमान्,
गुह्यस्यामयमूत्रकृच्छ्रमदनव्यापत्तिशुक्लस्रुतीः।
वासस्त्रीकृषिदेहकान्तिविहतिं शोफामयं योगिनी—
यक्षीमातृगणाद्भयं प्रियसुहृद्भङ्गं सितः सूचयेत्॥ प्रश्नमार्ग श्लो० ७२।

२. वातश्लेष्मविकारपादविहतीरापत्तितन्द्राश्रमान्,
भ्रान्तिं कुक्षिरुगन्तरुष्ण मृतकध्वंसं च पश्वाहतिम्।
भार्यापुत्रविपत्तिमङ्गविहतिं हृत्तापमर्कात्मजो,
वृक्षाश्मक्षतिमाह कश्मलगणैः पीड़ां पिशाचादिभिः॥ तत्रैव श्लो० ७३।

३-४. स्वर्भानुस्तनुतापकुष्ठविषमव्याधीन् विषं कृत्रिमं,
पादार्तिं च पिशाचपन्नगभयं भार्यातनुज्ञापदम्।
ब्रह्मक्षत्रविरोधशत्रुजभयं केतुस्तु संसूचयेद्,
प्रेतोत्थं च गदं विषं त्र············॥ तत्रैव श्लो० ७४।

अध्याय–७

मानसिक रोग

मन एवं मस्तिष्क में विकार के कारण उत्पन्न होने वाले मानसिक रोगों का फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में पर्याप्त विवेचन किया गया है। किन व्यक्तियों को उन्माद, सनक, प्रमाद, अपस्मार, जड़ता, एवं मतिभ्रम आदि मानसिक रोग हो सकते हैं?—इसका निदान मनुष्य की जन्म कुण्डली में उक्त रोगों के ग्रह योगों के आधार पर किया जा सकता है।

उन्माद

मानसिक-रोगों में विक्षिप्तता या उन्माद प्रमुख रोग है। इस रोग में बुद्धि भ्रमित हो जाती है, शारीरिक एवं मानसिक चेष्टाएं असामान्य, वोलचाल असम्बद्ध, अधिकांश काम ऊट-पटांग तथा इच्छाएं तीव्रतर हो जाती हैं।

उन्माद के कारण एवं भेद

प्रश्नमार्ग[१] में उन्माद के कारण एवं उसके भेदों का शास्त्रीय रीति से विवेचन किया गया है। विषम भोजन[२], अपवित्र भोजन,[३], उपवास, भय, वैराग्य, अकारण क्रोध, शत्रुकृत अभिचार, गुरुनिन्दा, यज्ञ आदि कर्मों में त्रुटि एवं दैव निन्दा—इन १० कारणों से उन्माद होता है। सभी प्रकार के उन्मादों में हर्ष, इच्छा, भय या शोक की प्रबलता, स्वास्थ्य एवं प्रकृति के प्रतिकूल आहार अथवा गुरु एवं देवता आदि का कोप प्रमुख कारण होता है।

उक्त कारणों से उत्पन्न उन्माद ५ प्रकार का होता है—१–वातजन्य, २–पित्तजन्य ३–कफजन्य, ४–सन्निपात जन्य एवं ५–आगन्तुक (भय, कोप, शाप या अभिचारजन्य)।

पंचविध उन्माद के लक्षण

यद्यपि रोगों के लक्षणों का विचार करना चिकित्सा शास्त्र की परिधि में आता है। तथापि उन्माद जैसे मानसिक रोग के लक्षणों पर ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थों में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। प्रश्नमार्ग में उक्त पंचविध उन्मादों के लक्षण इस प्रकार बतलाये गये हैं[४]—

---

१. देखिए—प्रश्नमार्ग अ० १२ श्लो० ४४-४५ एवं ३४।

२. असमय में एवं अनिच्छापूर्वक भोजन करना या समय पर एवं इच्छा होने पर भी न खाना।

३. अपवित्र परिवेश में अपथ्य वस्तुएँ खाना।

४. देखिए—प्रश्नमार्ग अ० १२ श्लो० ३५-४०।

हँसना, चिल्लाना, विलखना, गाना, नाचना, रोना, एक स्थान पर न ठहरना, हाथ-पैर आदि अंगों को फेंकना-पटकना, शरीर का लाल एवं कृश होना, कमजोर होने पर भी बल होना तथा अधिक बड़बड़ाना ये सब वातजन्य उन्माद के लक्षण हैं।

व्याकुल, क्रोधित गम्भीर या प्रौढ़ होना, द्रवीभूत होना, जोर-जोर से बोलना या लड़ना, छाया, शीतलवस्तु एवं पानी की इच्छा, अधिक रोप होना तथा पीला एवं गरम शरीर होना ये सब पित्तजन्य उन्माद के लक्षण हैं।

स्त्रियों से बोलने के लिए लालायित होना, नींद में बड़बड़ाना, गुम-शुम रहना, मुंह से लार या झाग निकलना, उल्टी होना, अधिक खाना तथा नाखून एवं आँख की पुतली आदि का सफेद होना—ये सब कफजन्य उन्माद के लक्षण हैं।

वात, पित्त एवं कफजन्य उन्माद के जो लक्षण बतलाये गये हैं, उनका मिला-जुला होना ही सन्निपातजन्य उन्माद का लक्षण है।

गुरु, देवता, राक्षस, राजा, प्रिय व्यक्ति आदि से भय या कोप होना अथवा आशाओं पर तुषारपात होना आगन्तुक उन्माद का लक्षण है।

योगों के आधार पर उन्माद के कारणों का निश्चय

प्रायः सभी मानसिक रोगों में रोग का वास्तविक कारण अव्यक्त होता है तथा जब तक उस कारण की भलीभाँति जानकारी न हो जाय, तब तक उसकी चिकित्सा नहीं की जा सकती है। मानसिक रोगों के कारण की जानकारी में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इन रोगों के वास्तविक कारण का प्रभाव मनुष्य के अवचेतन-मस्तिष्क (अन्तश्चेतना) पर पड़ता है, जिसे साधारणतया नहीं जाना जा सकता। ज्योतिष शास्त्र एक ऐसा शास्त्र है, जो भूत, भविष्य एवं वर्तमान काल में घटित होने वाली घटनाओं का कार्य-कारण सहित विवेचन करता है। इसीलिए इस शास्त्र के आचार्यों ने उन्माद जैसे प्रमुख मानसिक-रोग के कारणों का ज्ञान करने के लिए विविध योगों को बतलाया है।

व्यक्ति की जन्मकुण्डली के योगों[1] के आधार पर उन्माद के कारणों का इस प्रकार निश्चय किया जा सकता है—

(१) यदि चन्द्रमा, शुक्र एवं अष्टमेश अनिष्ट स्थानों में हो तो विषम भोजन या उपवास के कारण उन्माद होता है।

(२) यदि ये तीनों (चन्द्रमा, शुक्र एवं अष्टमेश) गुलिक राहु या केतु के साथ हों तो अपवित्र भोजन से उन्माद होता है

(३) पंचम स्थान में पापग्रह हो तो भय या शोक से उन्माद होता है।

(४) पंचम भाव में मंगल हो तो निराशा, वैराग्य या अकारण क्रोध से उन्माद होता है।

---

१. देखिए—प्रश्नमार्ग अ० १२ श्लो० ४६-४८।

(५) षष्ठ स्थान में पापग्रह हों तो शत्रुकृत अभिचार के उन्माद होता है।

(६) नवम एवं पंचम स्थान में पाप ग्रह हों तो गुरु, देवता, राजा आदि के शाप, कोप या भय से उन्माद होता है।

उन्माद के योग

फलित शास्त्र में विक्षिप्तता या उन्माद के सूचक निम्नलिखित आठ योग[1] प्रमुख हैं—

(१) लग्न में गुरु तथा सप्तम भाव में शनि हो।

(२) लग्न में गुरु तथा सप्तम भाव में मंगल हो।

(३) लग्न में शनि तथा पंचम, सप्तम या नवम स्थान में मंगल हो।

(४) लग्न में क्षीण चन्द्रमा एवं बुध दोनों हो।

(५) क्षीण चन्द्रमा एवं शनि-ये दोनों व्यय भाव में हो।

(६) लग्न, पंचम, नवम या एकादश स्थान में पापग्रहों के साथ क्षीण चन्द्रमा हो।

(७) सप्तम स्थान में पापग्रहों के साथ गुलिक हो।

(८) तृतीय, षष्ठ, अष्टम या व्यय भाव में पापग्रह के साथ बुध हो।

उक्त योगों के अलावा जिस व्यक्ति की जन्मकुण्डली में निम्नलिखित योगों[2] में से कोई एक योग हो वह विक्षिप्त (पागल) हो जाता है।

(१) लग्न में शनि, व्यय स्थान में सूर्य तथा त्रिकोण में चन्द्रमा या मंगल हो।

(२) तृतीयेश नीच राशिगत या अस्तंगत होकर षष्ठस्थान में हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

(३) सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों लग्न या त्रिकोण में हों, गुरु केन्द्र में हो तथा शनि या मंगल की कालहोरा अथवा वार में जन्म हो।

(४) शनि एवं द्वितीयेश–ये दोनों पापग्रहों के साथ हों तो वातजन्य उन्माद होता है।

(५) शनि एवं तृतीयेश —ये दोनों मंगल के साथ हों तो पित्तजन्य उन्माद होता है।

(६) शनि एवं तृतीयेश —ये दोनों क्षीण चन्द्रमा के साथ हों तो कफजन्य उन्माद होता है।

(७) शनि एवं द्वितीयेश —ये दोनों सूर्य के साथ हों तो राजकोप से उन्माद होता है।

(८) मिथुन या कन्या में स्थित सूर्य पर गुरु की दृष्टि हो।[3]

(९) त्रिकोण स्थान में शनि हो।[4]

---

१. देखिए—(१) प्रश्नमार्ग—अ० १२ श्लो० ३१-३२।
(२) गदावली—प्रकरण ३ श्लो० ४४-४५।

२. जातकतत्व-प्रकीर्ण तत्व—सूत्र १५३,५४,६०,५७ —५९।

३-४. सारावली अ० २२ श्लो० २३, तत्रैव अ० ३० श्लो० ७८

सनक एवं उसके योग

पागलपन की उस अवस्था को जिसमें व्यक्ति मारपीट, दंगाफसाद, गाली-गलौज एवं कलह करता रहता है, सनक कहते हैं। इस रोग में व्यक्ति वेकाबू हो जाता है तथा उसे पागल खाने में भरती करना पड़ता है। इस रोग का मुख्य कारण चन्द्रमा पर पापग्रहों का प्रभाव तथा उनकी अनिष्ट स्थानों में स्थिति मानी गयी है। चन्द्रमा के साथ इस रोग का सम्बन्ध होने के कारण जब पूर्णिमा को चन्द्रमा पूर्णकला वाला होता है, तब यह रोग उग्र तथा जब अमावस्या को चन्द्रमा कलारहित होता है, तब यह रोग अपेक्षा कृत शान्त रहता है। जिस व्यक्ति की कुंडली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो वह सनकी होता है—

(१) पापग्रह एवं राहु के साथ चन्द्रमा पाँचवें, ८ वें या १२वें स्थान में हो।[1]

(२) केन्द्र स्थान में सूर्य एवं चन्द्रमा के साथ शनि हो तो शराब एवं अन्य मादक पदार्थों के सेवन से मनुष्य सनकी हो जाता है।[2]

(३) क्षीणचन्द्रमा, राहु एवं मंगल १२वें स्थान में हों।[3]

प्रमाद एवं उसके योग

पागलपन की उस अवस्था को प्रमाद कहते हैं, जिसमें व्यक्ति को अपनी सुध-बुध या होश हवास नहीं रहता। इस रोग में अवधानता समाप्त हो जाती है। इसलिए इस रोग में रोगी अपने आप में नहीं रहता तथा कुछ न कुछ बड़बड़ाता रहता है। वैसे यह रोग उन्माद का ही एक भेद है। इस रोग का विचार द्वितीयेश से किया जाता है। क्योंकि अनवधानतावश बड़बड़ाना द्वितीय भाव का ही गुण है। जब द्वितीयेश पर अधिक पाप ग्रहों का प्रभाव होता है, तब यह रोग होता है। इस रोग के योग निम्नलिखित हैं—[4]

(१) द्वितीयेश, पापग्रह एवं शनि के साथ रोग स्थान में हो तो वातकोप से प्रमाद होता है।

(२) द्वितीयेश पापग्रह एवं सूर्य के साथ रोग स्थान में हो तो राजा स्वामी आदि के कोप से प्रमाद होता है।

(३) द्वितीयेश पापग्रह एवं मंगल के साथ रोग स्थान में हो तो पित्त प्रकोप से प्रमाद होता है।

अपस्मार (मिरगी) रोग

अपस्मार में रोगी का शरीर शिथिल होकर अकस्मात् गिर जाता है और वह मूर्च्छित हो जाता है। मुँह से झाग तथा कठोर आवाज निकलती है। अंग कठोर तथा

१-२. जातक परिजात— अ० ६ श्लोक ८३ एवं ८१।

३. जातक तत्व—मिश्र विवेक—सू० ८३।

४. सर्वार्थचिन्तामणि— अ० ३ श्लोक ११५।

टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं। पुतलियाँ चारों ओर घूमती हैं, दाँत भिच जाते हैं, रंग पीला पड़ जाता है, प्यास से व्याकुलता तथा मुखाकृति विकृत हो जाती है।[1]

अपस्मार की १२ दूतियाँ

१—श्वसना, २-मलिना, ३—निद्रा, ४—जृम्भिका, ५—अनशना, ६—त्रासिनी, ७—मोहिनी, ८—रोदिनी, ९-क्रोधिनी, १०—तापिनी, ११—शोषणी एवं १२—ध्वंसिनी—ये सब अपस्मार की प्रियतमा दूतियाँ हैं। जैसे प्रिया अपने प्रियतम का साथ नहीं छोड़ती उसी प्रकार ये श्वसना आदि दूतियाँ अपस्मार के रोगी का साथ नहीं छोड़ती। अपस्मार के साथ सदैव रहने वाली उक्त दूतियाँ रोगी के शरीर को अपनी क्रीडा-भूमि बना लेती हैं। जिससे रोगी का शरीर उक्त दूतियों के नाम जैसी चेष्टा करता है।[2]

अपस्मार के योग

जिसकी जन्म कुंडली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो उसे अपस्मार (मिरगी) रोग होता है—

(१) अष्टम स्थान में शनि, त्रिकोण में राहु, अनिष्ट स्थान में शनि, सूर्य हों तथा शुभग्रह बलवान् हो।[3]

(२) शनि के साथ चन्द्रमा हो तथा इन दोनों पर मंगल की दृष्टि हो।[4]

(३) अष्टम स्थान में चन्द्रमा एवं राहु हो।[5]

(४) अष्टम स्थान में पापग्रह हो तथा केन्द्र में शुक्र के साथ चन्द्रमा हो।[6]

(५) मंगल के साथ शनि छठें या ८ वें स्थान में हो।[7]

(६) चन्द्रमा, मंगल एवं सूर्य लग्न या अष्टम स्थान में हों और इन पर पापग्रहों की दृष्टि हो।[8]

(७) ग्रहण काल में जन्म हो, शनि एवं मंगल पाँचवें या ८ वें स्थान में हों तथा बृहस्पति केन्द्र एवं त्रिकोण में न हो।[9]

(८) षष्ठ स्थान में चन्द्रमा तथा लग्न में राहु हो।[10]

जड़ता एवं बुद्धिहीनता

जड़ता एवं बुद्धिहीनता भी एक प्रकार के मानसिक रोग हैं। क्योंकि ये दोनों पागलपन के पूर्वरूप होते हैं। इस स्थिति में मनुष्य को उचित-अनुचित या अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं होता। तथा वह पागल एवं मूर्ख जैसी हरकतें करता है।

जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित योगों[11] में से कोई एक योग हो वह जड़ होता है—

---

१. प्रश्नमार्ग—अ० १२ श्लोक ५२।

२. तत्रैव—अ० १२ श्लोक ५३-५५।

३-१०. जातकतत्व—षष्ठविवेक सू० ७३-७९।

११. जातकतत्व—पंचम विवेक सू० २२-२७।

(१) शनि, चन्द्रमा एवं गुलिक केन्द्र में हो।

(२) दिन में जन्म हो, गुलिक एवं सूर्य पर पापग्रहों की दृष्टि हो अथवा शनि के साथ तृतीयेश हो।

(३) राहु के साथ तृतीयेश अनिष्ट स्थान में हो।

(४) पंचम भाव में शनि हो, लग्नेश पर शनि की दृष्टि हो तथा पंचमेश पाप ग्रह के साथ हो।

(५) पंचम भाव में शनि एवं गुलिक हो तथा इन पर पापग्रहों की दृष्टि न हो।

जिस व्यक्ति की कुंडली में अधोलिखित योगों में से कोई एक योग हो वह बुद्धिहीन होता है—

(१) लग्न में चन्द्रमा हो और उस पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो।[१]

(२) पंचमेश क्रूर षष्ठ्यंश में हो।[२]

(३) चन्द्रमा पर सूर्य, मंगल एवं शनि की दृष्टि हो।[३]

(४) लग्न में स्थित चन्द्रमा एवं शनि को मंगल सप्तम दृष्टि से देखता हो।[४]

(५) लग्न में सूर्य एवं चन्द्रमा के मध्य में मंगल हो।[५]

(६) लग्न में स्थित मंगल एवं चन्द्रमा को बुध पूर्ण दृष्टि से देखता हो।[६]

(७) लग्नेश एवं चन्द्रमा—ये दोनों मंगल से पीड़ित हों।[७]

(८) लग्न में चन्द्रमा हो, षष्ठ स्थान में एक राशि तथा एक नवांश में सूर्य एवं शनि हों तथा उन पर पापग्रह की दृष्टि न हो।[८]

अन्य मनोविकार

भ्रम, क्रोध, भय, आलस्य, अविश्वास एवं चंचलता आदि अन्य मनोविकारों का भी जातक ग्रंथों में विचार किया गया है। इन मनोविकारों के योग इस प्रकार हैं:—

(१) चन्द्रमा एवं बुध केन्द्र में हों तथा वे शुभ ग्रह के नवांश में न हों तो मतिभ्रम होता है।[९]

(२) दिन का जन्म हो, बलवान् मंगल दशम या लग्न में हो तो जातक क्रोधी होता है।[१०]

(३) लग्न में या सप्तम भाव में निर्बल मंगल हो तथा उस पर शनि की दृष्टि हो तो जातक क्रोधी होता है।[११]

१-३. जातक तत्व—पंचम विवेक सू० १६-२१।

४. जातकालंकार—अ० ३ श्लोक १०।

५-८. जातकालंकार—अ० ३ श्लोक १०-११।

९. जातक पारिजात—अ० ६ श्लोक ८०।

१०-११. जातकतत्व-प्रकीर्णतत्व ८६-९२।

(४) सप्तम में बलवान् मंगल हो तो जातक क्रोधी होता है।[1]

(५) राशीश हीनबली होकर त्रिकोण में हो तो जातक क्रोधी होता हैं।[2]

(६) लग्नेश अष्टम या व्यय भाव में हो तो जातक क्रोधी होता है।[3]

(७) गुलिक के साथ द्वितीयेश हो, तो जातक क्रोधी होता है।[4]

(८) निर्बल मंगल की लग्न पर दृष्टि हो तो जातक भीरु होता है।[5]

(९) रात्रि में जन्म हो तथा शनि दशम स्थान में हो तो जातक भीरु होता है।[6]

(१०) स्वराशिस्थ मंगल की लग्न पर दृष्टि हो तो जातक भीरु होता है।[7]

(११) कारकांश से तृतीय स्थान में शुभग्रह हो तो जातक भीरु होता है।[8]

(१२) गुरु एवं शनि साथ-साथ हो तो जातक भीरु होता है।[9]

(१३) लग्नेश शनैश्चर के साथ हो तो जातक आलसी होता है।[10]

(१४) लग्नेश निर्बल हो तो मनुष्य आलसी होता है।[11]

(१५) लग्न पर अधिक पापग्रहों की दृष्टि हो तो जातक आलसी होता है।[12]

(१६) कारकांश से नवम में गुरु एवं सूर्य हो तो जातक अविश्वासी होता है।[13]

(१७) लग्न या त्रिकोण में सूर्य एवं चन्द्रमा साथ-साथ हों तो जातक चंचल बुद्धि वाला होता है।[14]

(१८) केन्द्र में गुरु हो तो जातक चंचल चित्त वाला होता है।[15]

(१९) द्वितीय स्थान में स्थित निर्बल बुध पर पापग्रह की दृष्टि हो तो जातक चंचल मनवाला होता है।[16]

१-४. जातकतत्व-प्रकीर्णतत्व सूत्र ८६-९२।

५-६. तत्रैव—सूत्र ८२–८३।

७-८. तत्रैव—सूत्र ८४–८५।

९-१२. तत्रैव—सूत्र २१३–१६।

१३. जैमिनीय सूत्र-अ० १ पाद २ सू० ५१।

१४-१६. जातकतत्व—पंचम विवेक सू० ११–१३।

अध्याय—८

रोगोत्पत्ति का सम्भावित समय

जन्मजात एवं जीवन भर चलने वाले रोगों के प्रारम्भ काल का विचार नहीं किया जाता। इन रोगों का विचार मात्र ग्रह योगों के आधार पर किया जाता है। किन्तु अन्य सभी रोगों के होने की सम्भावना का विचार रोगकारक ग्रह की दशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर-दशा, सूक्ष्मदशा, प्राणदशा, प्रश्नकालीन ग्रहस्थिति एवं गोचरीय ग्रह स्थिति के आधार पर किया जाता है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि दीर्घकालीन रोग बहुधा ग्रहों की महादशा एवं अन्तर्दशा के समय में होते हैं। अल्पकालीन रोग उनकी प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्म दशा एवं प्राणदशाओं में होते हैं। महादशा एवं अन्तर्दशा के दीर्घकालीन समय में रोग कब होगा? इसका निश्चय सम्बन्धित ग्रहों के गोचरीय परिभ्रमण के आधार पर करना चाहिए।

दशाओं में विंशोत्तरी की प्रधानता

जातक शास्त्र में विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी, योगिनी आदि अनेक प्रकार की दशाएँ बतलाई गयी हैं। किन्तु फलादेश करने के लिये प्रधान रूप से विंशोत्तरी दशा का ग्रहण किया गया है। जातक शास्त्र के मर्मज्ञों ने ग्रहों के शुभाशुभ फल का समय जानने के लिये विंशोत्तरी को ही प्रधान माना है। मारकेश का निर्णय भी विंशोत्तरी दशा से ही किया जाता है, जो रोगों के साध्यत्व एवं असाध्यत्व के निर्णय में अहं भूमिका प्रस्तुत करता है। अतः यहाँ हम रोगोत्पति के सम्भावित समय का विचार विंशोत्तरी दशा के अनुसार करेंगे।

विंशोत्तरी दशा

इस दशा में आयु का अधिकतम मान १२० वर्ष मानकर ग्रहों के दशावर्षों का विभाजन किया जाता है। अतः इसे विंशोत्तरी दशा कहते हैं।[१] इसमें सूर्य की दशा ६ वर्ष, चन्द्रमा की दशा १० वर्ष, मंगल की ७ वर्ष, राहु की १८ वर्ष, बृहस्पति की १६ वर्ष, शनि की १९ वर्ष, बुध की १७ वर्ष, केतु की ७ वर्ष तथा शुक्र की दशा २० वर्ष की होती है।[२]

इस दशा का ज्ञान जन्म-नक्षत्र के द्वारा किया जाता है, यथा-कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी या उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में जन्म होने पर सूर्य की दशा, रोहिणी, हस्त या श्रवण नक्षत्र में जन्म होने पर चन्द्रमा की, मृगशिरा, चित्रा या धनिष्ठा नक्षत्र में जन्म होने पर मंगल की, आर्द्रा, स्वाति या शतभिषा नक्षत्र में जन्म होने पर राहु की, पुनर्वसु, विशाखा या पूर्वा-

---

१-२. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्—अ० ४६ श्लोक, २४, १५, १२-१६।

भाद्रपद नक्षत्र में जन्म होने पर गुरु की, पुष्य अनुराधा या उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में जन्म होने पर शनि की, आश्लेषा, ज्येष्ठा या रेवती नक्षत्र में जन्म होने पर केतु की तथा भरणी, पूर्वाफाल्गुनी या पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में जन्म होने पर शुक्र की दशा होती है।[1]

विंशोत्तरीदशा बोधक चक्र

जन्म नक्षत्र	कृ० उ० फा उ० षा०	रो० ह० श्र०	मृ० चि० ध०	आ० स्वा० शत०	पु० वि० पू०	पु० अनु० उ० भा०	आश्ले० ज्ये० रेव०	म० मू० अश्वि०	पू० फा० पू० षा० भर०
ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
दशा वर्ष	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०

दशा साधन की रीति

कृत्तिका नक्षत्र से जन्म नक्षत्र तक गिनकर ९ का भाग देने से एक आदि शेष होने पर सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु एवं शुक्र की दशा होती है, यथा–उदाहरणार्थ मान लीजिए कि किसी व्यक्ति का जन्म मघा नक्षत्र में हुआ। यहां कृत्तिका से मघा तक गणना की तो आठ संख्या हुई। इसमें ९ का भाग दिया तो लब्धि = ० तथा शेष ८ रहा। अब सूर्य आदि से गणना करने पर आठवीं संख्या केतु की हुई। अतः इस व्यक्ति का जन्म केतु की दशा में हुआ।

दशा का स्पष्टीकरण

दशा का स्पष्टीकरण करने के लिए सर्वप्रथम भयात एवं भभोग[2] बना लेना चाहिए। फिर जन्म नक्षत्र के अनुसार जिस ग्रह की दशा हो, उसकी वर्ष संख्या को पलात्मक भयात से गुणा कर पला-भभोग का भाग देने से जो लब्धि आये वह वर्ष और शेष को १२ से गुणाकर पलात्मक भभोग का भाग देने से जो लब्धि आये वह मास तथा शेष को पुनः ३० से गुणा कर पलात्मक भभोग का भाग देने से जो लब्धि आये वह दिन और शेष को ६० से गुणा कर पलात्मक भभोग का भाग देने से जो लब्धि आये वह घटी तथा अन्त में शेष को पुनः ६० से गुणा कर पलात्मक भभोग का भाग देने से जो लब्धि आये वह पल होते हैं। ये वर्ष, मास, दिन, घटी एवं पल दशा के भुक्त वर्षादि कहलाते हैं। इनको दशावर्ष में से घटाने पर दशा

१. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्—अ० ४६, श्लो०, १४, १५, १२-१३।
२. गतर्क्षनाड़ीखरसेषु शुद्धा सूर्योदयादिष्टघटीषु युक्ता।
भयातसंज्ञा भवतीह तस्य निजर्क्षनाड़ीसहितो भभोगः॥

का भोग्य मान आ जाता है[1]। दशा के भोग्यमान में क्रमशः जन्म संवत् एवं स्पष्टसूर्य अथवा जन्म के तारीख, मास एवं सन् को जोड़ने से उस दशा की कलावधि ज्ञात हो जाती है।

अन्तर्दशा

प्रत्येक ग्रह की महादशा में ९ ग्रहों की अन्तर्दशा होती है, जैसे—सूर्य की महादशा में पहली अन्तर्दशा सूर्य की, दूसरी चन्द्रमा की, तीसरी मंगल की, चौथी राहु की, पाँचवीं गुरु की, छठी शनि की, सातवीं बुध की, आठवीं केतु की तथा नौवीं अन्तर्दशा शुक्र की होती है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों की दशा में भी अन्तर्दशाएँ जाननी चाहिए। सारांश यह है कि जिस ग्रह की दशा हो उसमें पहले उसी की अन्तर्दशा होगी फिर उससे आगे सू० चं० मं० रा० के क्रमानुसार अन्य ८ ग्रहों की अन्तर्दशाएँ होती हैं।[2]

अन्तर्दशा साधन की रीति

अन्तर्दशा निकालने का सरल तरीका यह है कि जिस ग्रह की महादशा में जिसकी अन्तर्दशा निकालनी हो, उन दोनों के दशा वर्षों को परस्पर गुणाकर १० से भाग देने से लब्धि मास तथा शेष को ३ से गुणा करने से दिन आते हैं।[3]

अन्तर्दशा निकालने का एक अन्य नियम यह है कि महादशा एवं अन्तर्दशा वाले ग्रहों के वर्षों को परस्पर गुणा करने से जो गुणनफल आये, उसमें इकाई के अंक को तीन से गुणा करने पर दिन तथा इकाई के अंक को छोड़कर शेष अंक मास होते हैं।

उदाहरण

सूर्य की दशा में सब ग्रहों की अन्तर्दशा निकालने के लिए, सूर्य के दशा वर्षों को क्रमशः ग्रहों के दशा वर्ष से गुणा कर १० का भाग देना चाहिए, यथा—

सूर्य की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा = ६ × ६ = ३६ ÷ १०, लब्धि = ३ मास शेष ६ × ३ = = १८ दिन

सूर्य की दशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा = ६ × १० = = ६० ÷ १० = ६ मास

,, ,, मंगल की अन्तर्दशा = ६ × ७ = ४२ ÷ १०, लब्धि = ४ मास शेष = २ × ३ = ६ दिन

इस रीति से प्रत्येक ग्रह की दशा में सभी ग्रहों की अन्तर्दशाएँ ज्ञात की जाती हैं। उक्त गणितीय रीति से प्रत्येक ग्रह की दशा में अन्य ग्रहों की अन्तर्दशा का मान इस प्रकार है।

---

१. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्—अ० ४६ श्लो० १६।
२. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्—अ० ५१ श्लो० २।
३. तत्रैव—श्लो० १।

सूर्यान्तर्दशा चक्र

ग्रह	सूर्य	चंद्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मास	३	६	४	१०	९	११	१०	४	०
दिन	१८	०	६	२४	१८	१२	६	६	०

चन्द्रान्तर्दशा चक्र

ग्रह	चंद्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य
वर्ष	०	०	१	१	१	१	०	१	०
मास	१०	७	६	४	७	५	७	८	६
दिन	०	०	०	०	०	०	०	०	०

भौमान्तर्दशा चक्र

ग्रह	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चंद्र
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	०	०
मास	४	०	११	१	११	४	२	४	७
दिन	२७	१८	६	९	२७	२७	०	६	०

राहुन्तर्दशा चक्र

ग्रह	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चंद्र	मंगल
वर्ष	२	२	२	२	१	३	०	०	१
मास	८	४	१०	६	०	०	१०	६	०
दिन	१२	२४	६	१८	१८	०	२४	०	१८

गुरुन्तर्दशा चक्र

ग्रह	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चंद्र	मंगल	राहु
वर्ष	२	२	२	०	२	०	१	०	२
मास	१	६	३	११	८	९	४	११	४
दिन	१८	१२	६	६	०	१८	०	६	२४

शन्यन्तर्दशा चक्र

ग्रह	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चंद्र	मंगल	राहु	गुरु
वर्ष	३	२	१	३	०	१	१	२	२
मास	०	८	१	२	११	७	१	१०	६
दिन	३	९	९	०	१२	०	९	६	१२

बुधान्तर्दशा चक्र

ग्रह	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चंद्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि
वर्ष	२	०	२	०	१	०	२	२	२
मास	४	११	१०	१०	५	११	६	३	८
दिन	२७	२७	०	६	०	२७	१८	६	९

केत्वन्तर्दशा चक्र

ग्रह	केतु	शुक्र	सूर्य	चंद्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध
वर्ष	०	१	०	०	०	१	०	१	०
मास	४	२	४	७	४	०	११	१	११
दिन	२७	०	६	०	२७	१८	६	९	२७

शुक्रान्तर्दशा चक्र

ग्रह	शुक्र	सूर्य	चंद्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु
वर्ष	३	१	१	१	३	२	३	२	१
मास	४	०	८	२	०	८	२	१०	२
दिन	०	०	०	०	०	०	०	०	०

प्रत्यन्तरदशा एवं उसके साधन की रीति

जिस प्रकार प्रत्येक ग्रह की दशा में ९ ग्रहों की अन्तर्दशाएँ होती हैं, उसी प्रकार प्रत्येक ग्रह की अन्तर्दशा में ९ ग्रहों की प्रत्यन्तर दशाएँ होती हैं। जैसे सूर्य की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा ३ मास १८ दिन रहती है। इस ३ मास १८ दिन के समय में पूर्वोक्त क्रम से सब ग्रहों की प्रत्यन्तरदशा रहती है।

प्रत्यन्तर दशा निकालने का नियम यह है कि दशा के वर्षों की अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा के वर्षों से गुणा कर ४० का भाग देने से जो दिनादि आते हैं, वही प्रत्यन्तर दशा का मान होता है।[1]

उदाहरण—

सूर्य की दशा में चंद्रमा की अन्तर्दशा में सब ग्रहों की प्रत्यन्तर दशा निकालनी है—

सूर्य की दशा वर्ष × चंद्र अन्तर्दशा वर्ष × चं० प्रत्य० वर्ष = ६ × १० × १० = ६०० ÷ ४०
= १५ दिन

= सूर्य की दशा में चंद्रमा की अन्तर्दशा में चंद्रमा के प्रत्यन्तर का मान।

सूर्य द० वर्ष × चं० अन्त० × मंग० प्रत्य० वर्ष = ६ × १० × ७ = ४२० ÷ ४० = १० दिन
३० घटी

= सूर्य दशा में चंद्रमा की अन्तर्दशा में मंगल के प्रत्यन्तर का मान।

१—विस्तृत जानकारी के लिए देखिए—भारतीय कुण्डली विज्ञान भाग १।

इस रीति से प्रत्येक ग्रह की अन्तर्दशा में सभी ग्रहों की प्रत्यन्तर दशाओं के मान निकाले जा सकते हैं।

सूक्ष्मदशा एवं उसके साधन की रीति

जिस प्रकार प्रत्येक ग्रह की अन्तर्दशा में ९ ग्रहों की प्रत्यन्तर दशाएँ होती हैं, उसी प्रकार प्रत्येक ग्रह की प्रत्यन्तर दशा में ९ ग्रहों की सूक्ष्म दशा तथा प्रत्येक ग्रह की सूक्ष्मदशा में ९ ग्रहों की प्राणदशाएँ चलती रहती हैं। जैसे सूर्य की महादशा में, सूर्य की अंतर्दशा में उसी की प्रत्यन्तर दशा ५ दिन एवं २४ घटी रहती है। इस ५ दिन एवं २४ घटी के काल में भी ९ ग्रहों की सूक्ष्म दशाएँ होती हैं।

प्रत्यन्तरदशा मान को ग्रहों की पृथक्-पृथक् दशा वर्ष संख्या से गुणाकर, गुणनफल में १२० का भाग देने से लब्धि प्रत्यन्तर दशा में चलने वाली पृथक्-पृथक् सूक्ष्मदशाओं का मान होता है। उदाहरणार्थ सूर्य की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा में सूर्य की प्रत्यन्तर दशा ५ दिन एवं २४ घटी की होती है। अतः ५ दिन एवं २४ घटी को घट्यात्मक बनाकर, इस ३२४ को सूर्य की दशा वर्ष संख्या=६ से गुणा कर, १२० का भाग देने से लब्धि = १६ घटी, १२ पल—यह सूर्य की प्रत्यन्तर दशा में उसकी सूक्ष्मदशा का मान हुआ। इस प्रकार सूर्य की प्रत्यन्तर दशा में सभी ग्रहों की सूक्ष्म दशा का मान निम्नलिखित होगा—

ग्रह	सूक्ष्मदशा का मान
सूर्य	१६ घटी १२ पल
चन्द्र	२७ घटी ० पल
मंगल	१८ घटी ५४ पल
राहु	४६ घटी ३६ पल
गुरु	४३ घटी १२ पल
शनि	५१ घटी १८ पल
बुध	४५ घटी ५४ पल
केतु	१८ घटी ५४ पल
शुक्र	५४ घटी ० पल

इसी तरह से प्रत्येक ग्रह की प्रत्यन्तर दशा में सब ग्रहों की सूक्ष्म दशा का मान निकाला जा सकता है।

प्राणदशा एवं उसके साधन की रीति

जिस प्रकार प्रत्येक की प्रत्यन्तर दशा में ९ ग्रहों की सूक्ष्म दशाएँ चलती हैं, उसी प्रकार प्रत्येक ग्रह की सूक्ष्म दशा में भी सभी ९ ग्रहों की प्राण दशाएँ चलती हैं। जैसे सूर्य की प्रत्यन्तर दशा में उसकी सूक्ष्मदशा १६ घटी १२ पल या लगभग ६॥ घंटे की सूक्ष्मदशा के समय में भी ९ ग्रहों की प्राणदशाएँ चलती हैं। इस प्राणदशा के द्वारा प्रतिक्षण परिवर्तन-शील सांसारिक घटनाचक्र की यथार्थरूप से जानकारी की जा सकती है।

प्राणदशा का साधन करने के लिए सूक्ष्मदशा के मान को ग्रहों की दशावर्ष संख्या में पृथक्-पृथक् गुणाकर गुणनफल में १२० का भाग देने से लब्धि प्राणदशा का मान होती है।[1] उदारणार्थ सूर्य की प्रत्यन्तर दशा में उसकी सूक्ष्मदशा १६ घटी १२ पल या ९७२ पल की होती है। इस सूक्ष्मदशा में सूर्य की प्राणदशा निकालने के लिए उक्त सूक्ष्मदशा मान = ९७२ पल को, सूर्य की दशावर्ष संख्या = ६ से गुणाकर, १२० का भाग दिया तो लब्धि ४८ पल एवं ३६ विपल सूर्य की प्राणदशा का मान हुआ। इसी प्रकार सूर्य के पूर्वोक्त सूक्ष्मदशा मान को चन्द्रमा आदि की दशा वर्ष संख्या (१०, ७, १८, १६, १९, १७, ७ एवं २०) से पृथक्-पृथक् गुणा कर सर्वत्र १२० का भाग देने से समस्त ग्रहों की प्राणदशा का मान आ जाता है; जो इस प्रकार है—

सूर्य की सूक्ष्मदशा में समस्त ग्रहों की प्राणदशा का मान

ग्रह	सूर्य	चंद्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
घटी	०	१	०	२	२	२	२	०	२
पल	४८	२१	५६	२५	९	३३	१७	५६	४२
विपल	३६	०	४२	४८	३६	५४	४२	४२	०

उक्त रीति से अन्य ग्रहों की सूक्ष्मदशाओं में भी समस्त ग्रहों की प्राणदशा के मान जाने जा सकते हैं।

रोग कब होगा ?

पिछले अध्यायों में विविध रोगों के ग्रहयोग बतलाये गये हैं। उक्त योगों को बनाने वाले ग्रह रोगकारक ग्रह होते हैं। रोगकारक ग्रह रोगों की सूचना देते हैं। जैसा कि द्वितीय. अध्याय में बतलाया जा चुका है—ग्रह रोगों को उत्पन्न नहीं करते अपितु उत्पन्न होने वाले रोगों की सूचना देते हैं। अतः प्रत्येक रोग के ग्रह योग के आधार पर सम्बन्धित रोगकारक ग्रह के द्वारा उस रोग के उत्पति काल का निर्धारण किया जाता है।

रोगोत्पत्ति के सम्भावित समय का निर्धारण दो प्रकार से किया जाता है—१—योग द्वारा तथा २—दशा द्वारा। योग में बतलाये गये वर्ष में रोगोत्पत्ति के काल का निर्धारण दशा फल नियमों की अपेक्षा रखता है।

दशा का फल दो प्रकार का होता है

१. साधारण, तथा

२. विशिष्ट।

ग्रह साधारणतया जो फल देते हैं—वह साधारण फल कहलाता है।

१. बृहत्पाराशर होराशास्त्रम्—अ० ६३ श्लो० १

ग्रह स्थान, स्थिति, बल एवं योग के कारण जो फल देते हैं—वह विशिष्ट फल कहलाता है।[1]

साधारण फल वह है जिसकी अनुभूति मात्र होती है। जब कि विशिष्ट फल जीवन में बिलक्षण घटनाओं को घटित करता है।

रोग जीवन में घटित होने वाली वह विशिष्ट घटना है जो मनुष्य के जीवन में उथल-पुथल मचा सकती है। अतः रोगोत्पत्ति को साधारण फल न मानकर विशिष्ट फल ही मानना चाहिए।

द्वितीय अध्याय में बतलाया जा चुका है कि रोगेश, अष्टमेश, मारकेश, अवरोही, नीच या शत्रु राशिगत, पापयुक्त, पापदृष्ट, नीचांशगत, निर्बल, अनिष्टस्थान में स्थित तथा क्रूर षष्ठ्यंश आदि में स्थित ग्रह रोगकारक होता है। जीवन में जब-जब ऐसे ग्रह की दशा अन्तर्दशा, प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्मदशा एवं प्राणदशा आती है, तब-तब रोग होता है। इस प्रकार हम योग में बतलाये वर्षों के द्वारा तथा उक्त ग्रहों की दशाओं के द्वारा रोगोत्पत्ति के सम्भावित समय का यथार्थ रूप से निर्धारण कर सकते हैं।

योग द्वारा रोगोत्पत्तिकाल का ज्ञान

योगों द्वारा रोगोत्पत्ति काल का ज्ञान तो होता ही है, इनके द्वारा जीवन भर रहने वाले रोगों की भी जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार के कुछ प्रमुख योग इस प्रकार हैं —

(१) षष्ठ भाव एवं षष्ठेश पापयुक्त हो तथा शनि-राहु से युक्त दृष्ट हो तो मनुष्य जीवन भर रोगी रहता है।[2]

(२) षष्ठ भाव में मंगल तथा अष्टम भाव में षष्ठेश हो तो छठे या ८ वें वर्ष में ज्वर होता है।[3]

(३) षष्ठ भाव में गुरु हो तथा चन्द्रमा गुरु की राशि में हो तो १९ वें या २२ वें वर्ष में कुष्ठ रोग होता है।[4]

(४) षष्ठभाव में राहु, केन्द्र में शनि एवं अष्टम भाव में लग्नेश हो तो २६ वें वर्ष में क्षय रोग होता है।[5]

(५) द्वादशेश षष्ठ में तथा षष्ठेश द्वादश में हो तो २९ या ३० वें वर्ष में गुल्म रोग होता है।[6]

(६) शनि के साथ चन्द्रमा षष्ठ स्थान में हो तो ४५ वें वर्ष में रक्तकुष्ठ होता है।[7]

---

१ बृहत्पाराशर होराशास्त्रम्—अ० ४७ श्लो० २।

२-५. बृहत्पाराशर होराशास्त्र—अ० १७ श्लो० १३-१६।

६-७. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्—अ०१७ श्लो०। १८-२८ श्लो० १७।

(७) लग्नेश लग्न में तथा शनि षष्ठभाव में हो तो ४९ वें वर्ष में वात रोग होता है।[1]

(८) अष्टमेश षष्ठभाव में, द्वादशेश लग्न में तथा चन्द्रमा षष्ठेश के साथ हो तो ८ वें वर्ष में पशु से चोट लगती है।[2]

(९) षष्ठ या अष्टमभाव में राहु हो तो जातक को १ या २ वर्ष की आयु में अग्नि-भय होता है।[3]

(१०) षष्ठ या अष्टम में सूर्य हो तथा उसमें १२ वें चन्द्रमा हो तो ५ वें या ९ वें वर्ष में जल से भय होता है।[4]

(११) अष्टमभाव में शनि तथा सप्तमभाव में मंगल हो तो १० वें या ३०वें वर्ष में विस्फोट आदि से चोट लगती है।[5]

(१२) अष्टमेश अपने नवांश में राहु के साथ अष्टम भाव से त्रिकोण में हो तो १८वें या २२ वें वर्ष में गठिया या प्रमेह होता है।[6]

(१३) लग्नेश एवं षष्ठेश दोनों षष्ठ स्थान में हों तो १० वें एवं १९ वें वर्ष में कुत्ते से भय होता है।[7]

दशा के द्वारा रोगोत्पत्ति काल का ज्ञान

रोगेश, अष्टमेश, मारकेश, अवरोही, नीचराशिगत, शत्रुराशिगत, नीचांशगत, निर्बल, पापयुत, पापदृष्ट, अनिष्ट स्थान में स्थित, क्रूरषष्ठ्यंश में स्थित आदि ग्रह रोगकारक होते हैं। जीवन में जब-जब इन ग्रहों की दशा, अन्तरदशा, प्रत्यंतरदशा, सूक्ष्मदशा एवं प्राणदशायें आती हैं, तब-तब मनुष्यों को रोग होते हैं।

किस-किस ग्रह की दशा में कौन-कौन सा रोग हो सकता है? यह जानकारी ग्रहों के वक्ष्यमाण दशाफल के आधार पर कर लेनी चाहिए—

सूर्य की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग—

सामान्यतया सूर्य की दशा में ज्वर, पित्त प्रकोप एवं सिर-दर्द होता है। किन्तु वह किसी कारण से रोगकारक हो तो विविध स्थितियों में विविध रोगों को उत्पन्न करता है। विविध स्थितियों में इसकी दशा में होने वाले रोगों का विवरण इस प्रकार है—[8]

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही सूर्य की दशा में	अग्निपीड़ा, जलना
परमनीचस्थ सूर्य की दशा में	विपत्ति एवं मृत्यु
अतिशत्रु राशिगत सूर्य की दशा में	शारीरिक कष्ट

१-७. वृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्—अ० १७ श्लो० १८-२८। श्लो० १७।

८. विस्तृत जानकारी के लिए देखिए—सर्वार्थचिन्तामणि—अध्याय १३

विविध स्थितियां	उत्पन्न होने वाले रोग
शत्रुराशिगत सूर्य की दशा में	अग्नि एवं चोर से भय
समराशिगत सूर्य की दशा में	लड़ाई में चोट
नीचग्रह से युक्त सूर्य की दशा में	मनोविकार
पापदृष्ट सूर्य की दशा में	कृशता या कमजोरी
नीचांशस्थ सूर्य की दशा में	ज्वर एवं प्रमेह
षष्ठस्थ सूर्य की दशा में	गुल्म, अतिसार, मूत्रकृच्छ्र एवं प्रमेह
अष्टमभावस्थ सूर्य की दशा में	अग्निभय, ज्वर एवं अतिसार।
द्वादशभावस्थ सूर्य की दशा में	विष भय।
द्वितीयभावस्थ सूर्य की दशा में	वाग् विकार।
चतुर्थभावस्थ सूर्य की दशा में	विष या अग्नि से भय।
स्थानबलहीन सूर्य की दशा में	सन्ताप।
क्रूरषष्ठ्यंशगत-सूर्य की दशा में	कोपाधिक्य, सिरदर्द।
सर्पद्रेष्काणयुक्त सूर्य की दशा में	विषभय

चन्द्रमा की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

चन्द्रमा की दशा में सामान्यतया सर्दी, जुकाम, खांसी, मूत्राधिक्य, मानसिक अस्थिरता एवं कामजन्य रोग होते हैं। किन्तु जब यह किसी कारण से रोगकारक हो जाता है, तो विविध रोगों को उत्पन्न करता है। पिछले अध्यायों में जिन-जिन शारीरिक एवं मानसिक रोगों के योगों में चन्द्रमा का वर्णन मिलता है, वे सभी रोग इसकी दशा में होते हैं। विविध स्थितियों में इसकी दशा में उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है[१]—

विविध स्थितियां	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही चन्द्रमा की दशा में	तालाब या जलाशय में गिरना।
नीचांशगत चन्द्रमा की दशा में	मानसिक विकार एवं नेत्र रोग।
अतिशत्रुराशिगत चन्द्रमा की दशा में	कलह एवं उद्वेग।
नीच राशिगत चन्द्रमा की दशा में	अग्निभय।
क्षीणचन्द्रमा की दशा में	उन्माद।
पापयुक्त चन्द्रमा की दशा में	अग्निभय एवं मनोव्यथा।
षष्ठभावगत चन्द्रमा की दशा में	मूत्रकृच्छ्र।
अष्टमभावस्थ चन्द्रमा की दशा में	जलभय या जलोदर।
क्रूरद्रेष्काणयुत चन्द्रमा की दशा में	विविध रोग।

१. देखिए—सर्वार्थचिन्तामणि—अध्याय १३।

मंगल की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

मंगल की दशा में सामान्यतया रक्तविकार, चोट, दुर्घटना, लड़ाई तथा राजा से शारीरिक दण्ड मिलता है। किन्तु जब यह किसी कारणवश रोगकारक हो जाता है तो विविध स्थितियों में अपनी दशा के समय में निम्नलिखित रोगों को उत्पन्न करता है।[1]

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही मंगल की दशा में	अग्नि भय एवं राजदण्ड।
नीचस्थ मंगल की दशा में	चोरपीड़ा, अग्निभय।
शत्रुराशिगत मंगल की दशा में	प्रमाद, मूत्रकृच्छ्र, गुदा नेत्ररोग।
नीचग्रहयुत मंगल की दशा में	मानसिक विकार।
केन्द्रस्थ मंगल की दशा में	विषजन्य रोग।
सप्तमस्थ मंगल की दशा में	मूत्रकृच्छ्र एवं गुदा रोग
द्वितीयभावस्थ मंगल की दशा में	मुख एवं नेत्र के रोग।
पंचमस्थ मंगल की दशा में	जड़ता एवं बुद्धिभ्रम।
अष्टमस्थ मंगल की दशा में	विस्फोट, विसर्प, फोड़ा।
नीचांशगत मंगल की दशा में	राजा से शारीरिक दण्ड।
वक्री मंगल की दशा में	सर्पदंश।

बुध की दशा में होने वाले रोग

बुध की दशा में सामान्यतया ज्वर, चर्मरोग एवं मानसिक अस्थिरता रहती है। किन्तु जब यह किसी कारणवश रोगकारक बन जाता है, तो इसकी दशा में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। इसके रोगकारक बनने के कारण तथा दशाकाल में उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—[2]

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही बुध की दशा में	मानसिक कष्ट, चोरभय।
शत्रुराशिस्थ बुध की दशा में	विपत्ति।
समराशिगत बुध की दशा में	फोड़ा-फुन्सी।
नीचराशिगत बुध की दशा में	मानसिक रोग
पापदृष्ट बुध की दशा में	कृच्छ्र रोग
तृतीयभावस्थ बुध की दशा में	जड़ता एवं गुल्म।
पंचमस्थ बुध की दशा में	चिन्ता, सिरदर्द।
षष्ठ या अष्टमस्थ बुध की दशा में	चर्मरोग, वमन, पाण्डु (पीलिया)।
द्वादशस्थ बुध की दशा में	अंगों में विकलता, अपमृत्यु।

---

१. सर्वार्थ चिन्तामणि—अध्याय १४।
२. तत्रैव—अध्याय १५।

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अस्तंगत बुध की दशा में	मानसिकव्यथा, आँख व कान के रोग।
षष्ठचंशगतबुध की दशा में	चोर, अग्नि एवं राजा से भय।

गुरु की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

गुरु की दशा में सामान्यतया गुल्म, उदरविकार एवं स्थूलता बढ़ जाती है। किन्तु जब यह किसी कारणवश रोगकारक बन जाता है, तो उसकी दशा के समय में निम्नलिखित रोग उत्पन्न होते हैं[1]—

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही गुरु की दशा में	स्वास्थ्य में अनेक गड़बड़ी
अतिनीचांशगत गुरु की दशा में	मानसिक व्यथा।
नीचग्रहयुत गुरु की दशा में	मानसिक रोग।
नीचांशयुत गुरु की दशा में	गुल्म, विचर्चिका।
अस्तंगत गुरु की दशा में	अनेक रोग।
षष्ठस्थ गुरु की दशा में	मेदोरोग, वातरोग, उदररोग।

शुक्र की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

शुक्र की दशा में सामान्यतया, वीर्यरोग, काम रोग एवं स्त्रीजन्य रोगों के होने की सम्भावना रहती है। किन्तु जब यह रोगकारक हो जाता है, तो विविध स्थितियों में अपनी दशा में विविध रोगों को उत्पन्न करता है।[2]

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही शुक्र की दशा में	हृदय शूल।
परम नीचगत शुक्र की दशा में	मानसिक रोग।
अतिशत्रुराशिगत शुक्र की दशा में	गुल्म, संग्रहणी, नेत्ररोग।
समराशिगत शुक्र की दशा में	प्रमेह, गुल्म, नेत्ररोग, गुदारोग।
सप्तमस्थ शुक्र की दशा में	प्रमेह, गुल्म।
षष्ठस्थ शुक्र की दशा में	शस्त्र से चोट।
क्रूरषष्ठ्यंशगत शुक्र की दशा में	चोर एवं अग्निभय।

शनि की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

शनि की दशा में सामान्यतया कृशता, वायु विकार एवं व्यग्रता रहती है। किन्तु जब यह किसी कारणवश रोगकारक हो जाता है, तब यह विविध परिस्थितियों में अपनी दशा में विविध रोग उत्पन्न करता है,[3] यथा—

---

१ देखिए—सर्वार्थचिन्तामणि —अध्याय-१५।

२-३, देखिए —सर्वार्थचिन्तामणि —अध्याय १५।

विविधस्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अतिशत्रुराशिगत शनि की दशा में	चोर एवं राजा से भय।
शत्रुराशि गत शनि की दशा में	कृशता।
समराशिगत शनि की दशा में	क्षय, वातरोग, पित्तरोग।
लग्नस्थ शनि की दशा में	कृशता, सिर-दर्द।
तृतीयस्थ शनि की दशा में	मानसिक रोग।
पंचमस्थ राशिगत शनि की दशा में	जड़ता।
षष्ठस्थ राशिगत शनि की दशा में	वातव्याधि, विषभय।
सप्तमस्थ राशिगत शनि की दशा में	मूत्रकृच्छ्र।
व्ययगत राशिगत सूर्य की दशा में	अग्निभय।
क्रूरद्रेष्काणगत राशिगत शनि की दशा में	चोर,राजा एवं अग्नि से भय।

राहु की दशा में उत्पन्न होनेवाले रोग

राहु की दशा के समय में सामान्यतया उदरविकार, मानसिक उद्वेग तथा छोटी-मोटी बीमारियाँ चलती रहती हैं। इसकी दशा के समय में शत्रुओं के प्रपंच तथा अभिचार, जन्य रोग भी होते हैं। जब यह किसी कारणवश रोगकारक हो जाता है, तब विविध स्थितियों में निम्नलिखित रोगों को उत्पन्न करता है[1]—

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
नीचराशिस्थ राहु की दशा में	विषभय।
लग्नस्थ राहुकी दशा में	विष, अग्नि एवं शस्त्र से भय।
द्वितीयस्थ राहु की दशा में	मानसिक विकार।
चतुर्थ राहु की दशा में	मनोव्यथा।
पंचमस्थ राहु की दशा में	बुद्धि भ्रम।
षष्ठस्थ राहु की दशा में	प्रमेह, गुल्म, क्षय, पित्तप्रकोप एवं चर्म रोग।
सप्तमस्थ राहु की दशा में	सर्पदंश।
अष्टमस्थ राहु की दशा में	दुर्घटना में मृत्यु।
व्ययराशिगत राहु की दशा में	मानसिक रोग।
पापराशिगत राहु की दशा में	प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, क्षय एवं खाँसी।
पापदृष्ट राहु की दशा में	अग्निभय।

केतु की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

केतु की दशा के समय में सामान्यतया, भ्रम, भय एवं मन में चंचलता रहती है। किन्तु जब किसी कारण वश यह रोगकारक बन जाता है, तब विविध परिस्थितियों में अपनी दशा में विविध रोगों को उत्पन्न करता है।[2]

१ देखिए- सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय १६।
२. देखिए—सर्वार्थ चिन्तामणि अध्याय १६।

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
लग्नगत केतु की दशा में	ज्वर, अतिसार, प्रमेह, विस्फोट, हैजा ।
द्वितीयभावगत केतु की दशा में	मानसिक व्यथा ।
तृतीयभावगत केतु की दशा में	मानसिक विकलता ।
पंचमभावगत केतु की दशा में	बुद्धिभ्रम ।
षष्ठभावगत केतु की दशा में	चोर, अग्नि एवं विष से भय ।
सप्तमभावगत केतु की दशा में	मूत्रकृच्छ्र, मानसिक रोग ।
अष्टमभावगत केतु की दशा में	श्वास, खांसी, संग्रहणी, क्षय ।
दशमभावगत केतु की दशा में	मन में जड़ता आदि विकार ।
द्वादशभावगत केतु की दशा में	नेत्रविकार, नेत्रनाश ।
पापदृष्ट केतु की दशा में	ज्वर, अतिसार, प्रमेह, चर्मरोग ।

अन्तर्दशा द्वारा रोगोत्पत्ति काल का निर्णय

जातकशास्त्र के आचार्यों का मत है कि प्रत्येक ग्रह अपनी दशा में अपने सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा में अपना फल देता है।[1] जो ग्रह परस्पर एक दूसरे को देखते हैं, एक दूसरे की राशि में होते हैं या एक साथ किसी भी राशि में होते हैं—आपस में सम्बन्धी कहलाते हैं तथा जो ग्रह आपस में मिलकर कोई योग बनाते हैं या एक जैसे प्रभाव का प्रतिनिधित्व करते हैं—वे सधर्मी कहलाते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किसी भी रोगकारक ग्रह की दशा में जब-जब उसके सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा आती है, तब-तब मनुष्य के शरीर में रोग पैदा होते हैं।[1]

इसके अलावा निम्नलिखित ग्रहों की अन्तर्दशाओं में भी रोग उत्पन्न होते हैं—[2]

(१) षष्ठेश की अन्तर्दशा में।
(२) अष्टमेश की अन्तर्दशा में।
(३) दशाधीश से षष्ठस्थ पापग्रह की अन्तर्दशा में।
(४) दशाधीश से व्ययगत पापग्रह की अन्तर्दशा में।
(५) दशाधीश से अष्टमस्थ पापग्रह की अन्तर्दशा में।
(६) मारकेश ग्रह की अन्तर्दशा में।
(७) अरिष्ट योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा में।
(८) अनिष्ट स्थान में स्थित ग्रहों की अन्तर्दशा में।
(९) पापग्रहों की अन्तर्दशा में।
(१० रोगकारक ग्रहों की अन्तर्दशा में।

---

१. देखिए—सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय १६।
२. देखिए—लघुपाराशरी-दशाफलाध्याय।

किस ग्रह की अन्तर्दशा में कौन सा रोग होगा ?

अन्तर्दशा द्वारा रोगोत्पत्ति के सम्भावित समय का विचार करते हुए फलित ज्योतिष के आचार्यों ने किस ग्रह की अन्तर्दशा में कौन सा रोग होगा ?— इस बात का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है । इस विवेचन के आधार पर जीवन में होने वाले विविध रोगों के सम्भावित समय का यथार्थ रूप से निर्धारण किया जा सकता है ।

सूर्य आदि ग्रहों की दशा में अन्य ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण[1] इस प्रकार है—

१—सूर्य की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोग की तालिका

दशापति	अन्तर्दशापति ग्रह	रोग
सूर्य	नीचस्थ सूर्य	नेत्र रोग
,,	द्वितीयेश सूर्य	हृदय दुर्बलता
,,	सप्तमेश सूर्य	अपमृत्यु
,,	क्षीण या पापयुक्त चन्द्रमा	मनोव्यथा
,,	षष्ठाष्टमव्ययगत चन्द्रमा	जलभय, मानसिकरोग, मूत्रकृच्छ्र
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश चन्द्रमा	अपमृत्यु
,,	त्रिकस्थ मंगल	मानसिक रोग
,,	पापदृष्ट्युत मंगल	चोट
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश मंगल	अपमृत्यु
,,	राहु	सर्पदंश
,,	सूर्य से अष्टम व्यय में स्थित राहु	अतिसार, गुल्म, क्षय
,,	द्वितीय/सप्तम में स्थित राहु	सर्पभय
,,	सूर्य से षष्ठ या अष्टम में स्थित गुरु	देहपीड़ा
,,	सूर्य से अष्टम/व्यय में स्थित शनि	वातशूल, ज्वर, अतिसार
,,	द्वितीयेश/सप्तम शनि	अपमृत्यु
,,	सूर्य से षष्ठ/अष्टम में स्थित बुध	देहपीड़ा
,,	नीचस्थ बुध	मनस्ताप
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश बुध	जड़ता, ज्वर
,,	केतु	देहपीड़ा, मनोव्यथा
,,	सूर्य सेअष्टम/व्यय में स्थित केतु	दन्तरोग, मूत्रकृच्छ्र
,,	सूर्य से षष्ठ/अष्टम/व्यय में स्थित शुक्र	मानसिक क्लेश
,,	रन्ध्रेश/रि:फेश शुक्र	अपमृत्यु

१—विस्तृत जानकारी के लिए देखिए-बृहत्पाराशरहोराशास्त्र अ० ५२-६० ।

२—चन्द्रमा की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर

उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका

दशापति	अन्तर्दशापति ग्रह	रोग
चन्द्रमा	नीचस्थित पापयुत चन्द्रमा	देहालस्य, मनस्ताप
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश चन्द्रमा	देह में जड़ता
,,	अष्टम/व्यय में स्थित पापयुत मंगल	देहकष्ट
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश मंगल	घाव, चोट, अंग भंग
,,	लग्न/त्रिकोण में स्थित राहु	सर्पभय, पशु से चोट
,,	चन्द्रमा से अष्टम/व्यय में स्थित राहु	मनोव्यथा, सर्प भय
,,	द्वितीय/सप्तम में स्थित राहु	देहवाधा, कृशता
,,	षष्ठ/अष्टम में स्थित गुरु	मानसिक तनाव
,,	चन्द्रमा से त्रिकस्थ गुरु	मनोव्यथा
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश गुरु	अपमृत्यु
,,	द्वितीय त्रिक स्थान में स्थित शनि	शस्त्राघात
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश शनि	देहवाधा, वातव्याधि
,,	चन्द्रमा से त्रिक स्थान में स्थित बुध	देहपीड़ा
,,	नीचराशिस्थ बुध	देहकष्ट
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश बुध	ज्वर
,,	केतु	मनोव्यथा
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश शुक्र	अपमृत्यु
,,	उच्चस्वराशि में स्थित सूर्य	आलस्य, ज्वर
,,	चन्द्रमा से अष्टम/व्यय में स्थित सूर्य	सर्पदंश, ज्वर
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश सूर्य	विषमज्वर

३—मंगल की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर

उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
मंगल	अष्टम/व्यय में स्थित मंगल	मूत्रकृच्छ्र
,,	पापयुत/पापदृष्ट मंगल	व्रण
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश मंगल	देह में जड़ता, मानषिक रोग ;
,,	अष्टम/द्वादश में स्थित राहु	सर्पदंश

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
मंगल	पापयुत/पापदृष्ट राहु	वात एवं पित्तरोग
,,	सप्तम में स्थित राहु	अपमृत्यु
,,	त्रिकस्थ/नीचस्थ/निर्बल गुरु	पित्तरोग. प्रेतपीड़ा
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश गुरु	अपमृत्यु
,,	अष्टम/व्यय में स्थित शनि	मनोव्यथा
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश शनि	मानसिक रोग
,,	मंगल से केन्द्र/त्रिकोण/एकादश में स्थित शनि	मूत्रकृच्छ्र
,,	मंगल में अष्टम/व्यय में स्थित शनि	वातव्याधि, शूल
,,	षष्ठ/व्यय में स्थित अस्तंगत बुध	हृदयरोग
,,	मंगल के साथ स्थित बुध	अनेक रोग
,,	मंगल से त्रिक में स्थित बुध	दस्युओं से चोट
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश बुध	भयंकर रोग
,,	मंगल से त्रिक स्थान में स्थित केतु	दंतरोग, ज्वर, अतिसार, कुष्ठ
,,	मंगल से द्वितीय/सप्तम स्थित केतु	महाव्याधि
,,	मंगल से त्रिकस्थान में स्थित शुक्र	देहपीड़ा
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश शुक्र	दीर्घकालीन रोग
,,	मंगल से त्रिकस्थान में स्थित सूर्य	मानसिक रोग, ज्वर, अतिसार
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश सूर्य	सर्पभय, ज्वर
,,	मंगल गे त्रिकस्थान में स्थित चन्द्र	युद्ध में चोट
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश चन्द्र	अपमृत्यु

४. राहु की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
राहु	अष्टम/द्वादश स्थान में स्थित राहु	चोर से चोट
,,	पापयुत/पापदृष्ट राहु	चोट
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश के साथ स्थित या सप्तम स्थान में स्थित राहु	सदैव रोग, महाकष्ट
,,	त्रिकस्थान/नीचराशि में स्थित या अस्तंगत गुरु	हृदय रोग

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
राहु	राहु से ६, ८ वें स्थान में स्थित गुरु	देहपीड़ा
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश गुरु	अपमृत्यु
,,	षष्ठ/व्यय में स्थित नीच/शत्रुराशिस्थ शनि	राजदण्ड, मानसिक रोग
,,	राहु से ६, ८ या १२ वें में स्थित पापयुत शनि	हृदयरोग, गुल्म रोग
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश शनि	अपमृत्यु
,,	त्रिकस्थान में स्थित तथा शनि से दृष्ट बुध	राजा, चोर एवं सर्प से भय
,,	राहु से ६, ८ या १२ वें में स्थित पापयुत बुध	राजा, चोर एवं सर्प से भय
,,	राहु से ६, ८ या १२ वें स्थित पापयुत बुध	सर्पभय
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश बुध	अपमृत्यु
,,	केतु	वातज्वर
,,	अष्टमेश के साथ स्थित केतु	जड़ता, मानसिक व्यथा
,,	अष्टम/व्यय में स्थित निर्बल केतु	सर्पदंश, मानसिक रोग
,,	द्वितीय/सप्तम में स्थित केतु	दीर्घकालीन रोग
,,	त्रिकस्थान/शत्रुराशि/नीचराशि में पापयुत शुक्र	शूल
,,	राहु से ६, ८ या १२ वें स्थित पापयुत शुक्र	मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, रुधिरातिसार
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश शुक्र	अपमृत्यु
,,	राहु से ६, ८ या १२ वें में नीचस्थ सूर्य	ज्वर, अतिसार
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश सूर्य	महारोग
,,	राहु से ६, ८ या १२ वें में स्थित निर्बल चन्द्र	घाव, चोट, फोड़ा
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश चन्द्र	अपमृत्यु
,,	राहु से ६, ८ या १२ वें में स्थित पापयुत मंगल	सर्पभय, व्रणभय, देहपीड़ा
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश मंगल	आलस्य, कमजोरी

५. गुरु की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
गुरु	त्रिकस्थान में नीचनवांश में स्थित गुरु	महादुःख, लम्बी बीमारी
,,	सप्तमेश गुरु	शारीरिक कष्ट
,,	त्रिकस्थान में नीच/अस्तंगत शनि	मानसिक रोग, ज्वर, व्रण
,,	गुरु से ६, ८ या १२ वें में स्थित शनि	शरीर में दर्द
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश शनि	अपमृत्यु
,,	मंगल से दृष्ट बुध	ज्वर, व्रण, दाह, नेत्ररोग
,,	त्रिकस्थान में पापयुक्त बुध	अकस्मिक मृत्यु
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश बुध	मृत्युतुल्य कष्ट
,,	गुरु से ६, ८ या १२ वें में स्थित पापयुक्त केतु	मानसिक रोग
,,	द्वितीय/सप्तम में स्थित केतु	शारीरिक कष्ट
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश शुक्र	लम्बी बीमारी
,,	गुरु से ६, ८ या १२वें में स्थित सूर्य	सिरदर्द, ज्वर
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश सूर्य	शरीर में दर्द
,,	गुरु से ६, ८ या १२वें में स्थित पापयुत चन्द्र	चोर से पीड़ा
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश चन्द्र	देहपीड़ा
,,	गुरुसे ८ या १२ वें में स्थित पापयुत दृष्ट मंगल	अनेक रोग, नेत्र रोग
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश मंगल	जड़ता
,,	गुरु से ६, ८ या १२वें में स्थित पापयुत राहु	व्रण, क्षुद्ररोग, मूर्च्छा
,,	द्वितीय/सप्तम में स्थित राहु	देहपीड़ा

६. शनि की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
शनि	अष्टम/व्यय में अस्तंगत/पापयुत शनि	व्याकुलता, भय
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश शनि	देहपीड़ा
,,	शनि से अष्टम/व्यय में स्थित केतु	शीतज्वर, अतिसार, व्रण
,,	द्वितीय / सप्तम में स्थित केतु	शीतला
,,	त्रिकस्थ नीचगत/अस्तंगत शुक्र	मानसिक रोग

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
शनि	शनि से ६, ८ या १२ वें में स्थित शुक्र	नेत्ररोग, ज्वर, दंतरोग, हृदय-रोग, गुप्तरोग, पेड़ से गिरना
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश शुक्र	महाक्लेश
,,	शनि से १, ८ या १२ वें स्थित सूर्य	हृदयरोग, मानसिकरोग, ज्वर,
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश सूर्य	देहपीड़ा
,,	क्षीण, पापयुत/दृष्ट, नीच क्रूर राशि में स्थित चन्द्र	महाकष्ट
,,	शनि से ८ या १२ में स्थित निर्बल चन्द्र	आलस्य
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश चन्द्र	कमजोरी
,,	अष्टम/व्यय में स्थित नीच/अस्तंगत-मंगल	व्रण, शस्त्राघात, ग्रन्थि
,,	सप्तमेश/अष्टमेश मंगल	अनेक कष्ट
,,	राहु	मानसिक रोग
,,	द्वितीय/सप्तम में स्थित राहु	देहपीड़ा
,,	त्रिकस्थान में नीचगत पापयुत गुरु	कुष्ठ
,,	शनि से ६, ८ या १२ में स्थित पापयुत गुरु	मानसिक रोग
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश गुरु	देहबाधा

७—बुध की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
बुध	त्रिक में स्थित नीच/अस्तंगत पापयुतदृष्ट बुध	शूल
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश बुध	वातशूल
,,	बुध से ८ या ११ में स्थित केतु	वाहन से गिरना, वृश्चिकदंश
,,	द्वितीय/सप्तम में स्थित केतु	शरीर में जड़ता, लकवा
,,	बुध से ६, ८, १२ में स्थित वलहीन शुक्र	हृदयरोग, ज्वर, अतिसार
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश शुक्र	अपमृत्यु
,,	बुध से १, ६, १२ में स्थित पापयुत सूर्य	शस्त्राघात, सिरदर्द, मनोव्यथा

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
बुध	द्वितीयेश/सप्तमेश सूर्य	अपमृत्यु
,,	नीच या शत्रुराशिगत चन्द्रमा	देहबाधा
,,	बुध से ६, ८, १२ में स्थित पापयुत चन्द्रमा	चोर, एवं अग्नि से भय
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश चन्द्रमा	देहबाधा
,,	अष्टम/व्यय में स्थित नीचस्थ मंगल	शस्त्राघात, व्रण, ताप, ज्वर, ग्रंथि
,,	बुध से ६, ८, १२ में स्थित पापयुत मंगल	नृपाग्निचोर भय
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश मंगल	अपमृत्यु
,,	लग्न, अष्टम या व्यय में स्थित राहु	हृदयरोग
,,	द्वितीय/सप्तम में स्थित राहु	अपमृत्यु
,,	त्रिकस्थ, नीच/अस्तंगत पापदृष्ट गुरु	चोरभय, देहपीड़ा
,,	बुध से ६, ८, १२ में स्थित निर्बल गुरु	अङ्गताप, व्याकुलता
,,	द्वितीय/सप्तम में स्थित गुरु	शरीर में दर्द
,,	बुध से ८ या १२ में स्थित शनि	बुद्धिनाश, मानसिक रोग
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश शनि	अपमृत्यु

८—केतु की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
केतु	अष्टम/व्यय में स्थित नीच/अस्तंगत ग्रहों से युत केतु	हृदय रोग
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश से सम्बन्धित केतु	रोग भय
,,	केतु से ६, ८, १२ में स्थित पापयुत शुक्र	नेत्ररोग, व्रण, हृदयरोग
,,	अष्टम/व्यय में स्थित पापयुत सूर्य	सर्प, विष या रोगभय, गर्मी, ज्वर
,,	केतु से ८, १२, में स्थित पापयुत सूर्य	मानसिक कष्ट
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश सूर्य	अपमृत्यु
,,	षष्ठ/व्यय में स्थित नीच क्षीण चन्द्रमा	मानसिक ताप, मनोव्यथा, जड़ता
,,	केतु से ६, १२ में स्थित निर्बल चन्द्रमा	व्याकुलता
,,	अष्टमेश चन्द्रमा	अपमृत्यु

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
केतु	केतु से २, ८, १२ में स्थित मंगल	प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश मंगल	ताप, ज्वर, विषभय अपमृत्यु
,,	अष्टम/व्यय में स्थित पापयुतदृष्ट राहु	बहुमूत्र, शीतज्वर, प्रमेह, शूल
,,	द्वितीय/सप्तम में स्थित राहु	महारोग
,,	केतु से ६, ८,१२ में स्थित नीचस्थ गुरु	सर्पभय, व्रण
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश गुरु	अपमृत्यु
,,	शनि	मनोव्यथा
,,	अष्टम/व्यय में स्थित शनि	आलस्य
,,	केतु से ६, ८, १२ में स्थित पापयुत शनि	देह सन्ताप, मानसिकताप
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश शनि	मृत्युतुल्य कष्ट
,,	त्रिकस्थान में पापयुतदृष्ट बुध	मनोव्यथा
,,	केतु से ६, ८, १२ में बलहीन बुध	राजदंड से देहपीड़ा
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश बुध	अपमृत्यु

९—शुक्र की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
शुक्र	त्रिकस्थान में स्थित पापयुतदृष्ट शुक्र	चोरभय
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश शुक्र	मृत्युभय
,,	षष्ठ/अष्टम में नीचराशि/पापवर्ग में स्थित सूर्य	ताप, मानसिक रोग, नानारोग भय
,,	सप्तमेश सूर्य	देहपीड़ा
,,	शुक्र से ६, ८, १२ में नीच/अस्तंगत चन्द्र	मनस्ताप
,,	शुक्र से ६, ८, १२ में मंगल	शीतज्वर
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश मंगल	देहपीड़ा
,,	उपचयस्थान में स्थित राहु	ज्वर, अजीर्ण, मनोव्यथा
,,	द्वितीयस्थ/सप्तमस्थ राहु	आलस्य
,,	शुक्र से ६, ८, १२, में पापयुत गुरु	चोर से पीड़ा, मनोव्यथा, नानारोग

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
शुक्र	द्वितीयेश/सप्तमेश गुरु	शारीरिक कष्ट
,,	नीचस्थ शनि	शारीरिक क्लेश, आलस्य
,,	शुक्र से ८, १२ में स्थित शनि	अनेक रोग
,,	द्वितीयेश/सप्तमेश शनि	देहपीड़ा
,,	शुक्रसे ६, ८, १२ में निर्बल पापयुत दृष्टबुध	शीत वात ज्वर
,,	सप्तमेश बुध	शारीरिक पीड़ा
,,	शुक्रसे ८, ११ में पापयुत केतु	व्रण, सिरदर्द, मनोव्यथा, प्रमेह
,,	द्वितीय/सप्तम में स्थित केतु	शरीर पीड़ा

किस ग्रह की प्रत्यन्तर दशा में कौन सा रोग होगा ?

प्रत्येक ग्रह की अन्तर्दशा में सभी ९ ग्रहों की प्रत्यन्तर दशाएँ चलती रहती हैं। प्रत्यन्तर दशाओं में सबसे छोटी दशा सूर्य की होती है, और ५ दिन २४ घटी रहती है सबसे बड़ी दशा शुक्र की होती है, और ६ माह २० दिन रहती है। इस प्रकार प्रत्यंतर दशा द्वारा ५ दिन से ६ माह २० दिन तक के योग मान वाले विविध कालखण्डों में घटित होने वाली घटनाओं की जानकारी की जा सकती है।

सूर्य आदि ग्रहों की अन्तर्दशा में विभिन्न ग्रहों की प्रत्यन्तर दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है[1] :—

अन्तर्दशाधीश	प्रत्यन्तरदशाधीश	रोग
सूर्य	सूर्य	शिरोरोग
,,	चन्द्र	उद्वेग, मनोव्यथा
,,	मंगल	शस्त्राघात, अग्निपीड़ा
,,	राहु	श्लेष्मा, शस्त्र भय
,,	शनि	लम्बी बीमारी
,,	केतु	मृत्युभय
चन्द्र	शनि	वात, पित्तजन्यरोग
,,	केतु	अपमृत्यु
मंगल	मंगल	रक्तस्राव, मृत्युभय
,,	शनि	अंगों में विकलता

१. विस्तृत जानकारी के लिए देखिए—बृहत्पाराशर होराशास्त्रम् अ० ६१।

अन्तर्दशाधीश	प्रत्यन्तरदशाधीश	रोग
मंगल	बुध	ज्वर
,,	केतु	आलस्य, शस्त्राघात, सिरदर्द
,,	शुक्र	शस्त्रभय, अतिसार, वमन
राहु	राहु	शस्त्रघात, अनेक रोग
,,	शनि	निरंतर वायुविकार
,,	केतु	वुद्धिनाश
,,	शनि	योगिनी का भय
,,	सूर्य	ज्वर, अपमृत्यु
,,	चन्द्र	उद्वेग, चिंता, शरीर में विकलता
,,	मंगल	भगन्दर, रक्तपित्त
गुरु	केतु	जलभय, अपमृत्यु
,,	मंगल	शस्त्रभय, गुप्तरोग, मन्दाग्नि
,,	राहु	मृत्युभय
शनि	शनि	देहपीड़ा
,,	केतु	मन में चिंता, भय एवं त्रास
,,	सूर्य	ज्वर
,,	मंगल	वातपित्तजन्य रोग
,,	राहु	अपमृत्यु
बुध	केतु	उदररोग, कामला, रक्तपित्त
,,	सूर्य	मानसिक रोग
,,	मंगल	शस्त्रवात
,,	राहु	आकस्मिक रोग
,,	शनि	वात एवं पित्तजन्यरोग
केतु	केतु	आकस्मिक दुर्घटना
,,	शुक्र	नेत्ररोग, सिरदर्द
,,	चन्द्र	मतिभ्रम, आमवात
,,	मंगल	शस्त्रघात, अग्निपीड़ा
,,	राहु	क्षुद्ररोग
,,	शनि	देहपीड़ा
,,	बुध	बुद्धिनाश
शुक्र	सूर्य	वातज्वर, सिरदर्द
,,	मंगल	रक्तपित्त
,,	केतु	अपमृत्युभय

किस ग्रह की सूक्ष्मदशा में कौन सा रोग होगा ?

प्रत्येक ग्रह की प्रत्यन्तर दशा में ९ ग्रहों की सूक्ष्मदशाएँ चलती हैं। इन सूक्ष्मदशाओं में सबसे छोटी दशा का मान १६ घटी १२ पल तथा सबसे बड़ी दशा का मान १ मास ३ दिन ३० घटी होता है। इस प्रकार सूक्ष्मदशा के द्वारा १६ घटी (लगभग ६।। घण्टा) से लेकर ३३ दिन तक के विविध काल खण्डों में घटित होने वाली घटनाओं की जानकारी की जा सकती है।

सूर्य आदि ग्रहों की प्रत्यन्तर दशा में बिभिन्न ग्रहों की सूक्ष्म दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है[1]—

प्रत्यन्तरदशाधीश	सूक्ष्मदशाधीश	रोग
सूर्य	सूर्य	मृत्यु भय
,,	मंगल	रक्तस्राव
,,	शनि	मानसिक वेदना
चन्द्रमा	मंगल	कुक्षि रोग
,,	शनि	राजदण्ड, अंग-भंग
,,	सूर्य	निरंतर क्लेश
मंगल	मंगल	अपस्मार
,,	राहु	अंग में रोग, अग्नि भय
राहु	राहु	मतिभ्रम, शून्यता
,,	गुरु	दीर्घकालीन रोग
,,	बुध	अरुचि
,,	मंगल	अर्श, गुल्म
गुरु	शनि	मनस्ताप
,,	सूर्य	वातपित्तप्रकोप, शूल
,,	चन्द्र	नेत्ररोग, कुक्षि रोग
,,	मंगल	विष प्रयोग
,,	राहु	साँप, बिच्छू से भय
शनि	शनि	वातपीड़ा
,,	केतु	कुष्ठ, सर्वाङ्ग पीड़ा
,,	सूर्य	देहपीड़ा
,,	मंगल	वातपित्तजन्य रोग
बुध	मंगल	अग्निदाह, विषोत्पत्ति, जड़ता

१—देखिए—वृहत्पाराशर होराशास्त्रम् —अध्याय—६२।

प्रत्यन्तरदशाधीश	सूक्ष्मदशाधीश	रोग
बुध	राहु	अग्निभय, सर्पभय
,,	शनि	असाध्य रोग
केतु	मंगल	घोड़े से गिरना, गुल्म, शिरोरोग
शुक्र	सूर्य	हृदय शूल
केतु	राहु	वमन, रक्तविकार, पित्तरोग
शुक्र	मंगल	जड़ता
,,	राहु	अग्नि एवं सर्पभय
,,	केतु	मुख, नेत्र एवं शिर में रोग

किस ग्रह की प्राणदशा में कौन सा रोग होगा ?

प्रत्येक ग्रह की सूक्ष्मदशा में सभी ग्रहों की प्राणदशाएँ चलती रहती हैं। इन प्राण दशाओं में सबसे छोटी दशा का मान ४८ पल ३६ विपल अर्थात् लगभग २० मिनिट तथा सबसे बड़ी दशा का मान ५ दिन ३० घटी होता है। इस प्रकार हम प्राणदशा द्वारा २० मिनिट से लेकर ५ दिन तक के विविध काल खण्डों में घटित होने वाली घटनाओं की जानकारी कर सकते हैं।

सूर्य आदि ग्रहों की सूक्ष्मदशा में विभिन्न ग्रहों की प्राणदशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है[1] :—

सूक्ष्मदशाधीश	प्राणदशाधीश	रोग
सूर्य	सूर्य	चोर एवं अग्नि भय
,,	राहु	विषभय
,,	शनि	मृत्यु
चन्द्र	मंगल	क्षय, कुष्ठ, रक्तस्राव, भूत का आवेश
,,	शनि	मूर्छा, आकस्मिक वेदना
,,	केतु	विषभय, उदररोग
,,	सूर्य	मनोव्यथा
मंगल	मंगल	रक्तपित्त
,,	शनि	अग्निभय
,,	केतु	ऊपर से गिरना, नेत्ररोग
,,	सूर्य	ज्वर, उन्माद
,,	चन्द्र	शीतोष्ण व्याधि (सर्द-गरमी)

१. देखिए—बृहत्पाराशर होराशास्त्रम् अध्याय ६३।

सूक्ष्मदशाधीश	प्राणदशाधीश	रोग
राहु	शनि	शारीरिक कष्ट
,,	सूर्य	अर्श
गुरु	सूर्य	वातपित्तप्रकोप, शूल
,,	चन्द्र	नेत्ररोग
,,	राहु	सर्प एवं बिच्छू का भय
शनि	शनि	ज्वर, कुष्ठ, उदररोग
,,	सूर्य	नेत्ररोग, शिरोरोग
,,	मंगल	गुल्म, अग्नि एवं विषभय
बुध	सूर्य	दाह, ज्वर, उन्माद
बुध	मंगल	कुक्षिरोग, दन्तरोग. नेत्ररोग, अर्श
केतु	केतु	वाहन से गिरना
,,	सूर्य	चोराग्नि भय, मनोव्यथा
,,	मंगल	पित्तप्रकोप, सन्निपात
,,	गुरु	शस्त्रघात,व्रण, हृदयरोग
शुक्र	सूर्य	गरमी
,,	मंगल	ज्वर, चेचक, फोड़ा, खुजली, गाँठ

प्रश्नकालीन ग्रहस्थिति द्वारा रोगारम्भकाल का ज्ञान

प्रश्नशास्त्र में रोगारम्भ काल का गम्भीरता पूर्वक विचार किया गया है। रोग कब होगा ? इसकी ठीक-ठीक भविष्यवाणी करने के लिए प्रश्नशास्त्र के आचार्यों ने कुछ महत्वपूर्ण योग बतलाये हैं, जो इस प्रकार हैं—[1]

(१) प्रश्नलग्न के नक्षत्र से जितने संख्यक नक्षत्र पर प्रश्नकालीन चन्द्रमा हो, चन्द्रमा के उस नक्षत्र से उतनी संख्या वाले अग्रिम नक्षत्र में रोग की शुरुआत होती है।

(२) प्रश्नकालीन स्पष्ट गुलिक (मान्दि) के नवांश या द्वादशांश के नक्षत्र में जब-जब चन्द्रमा आता है तब-तब रोग होता है।

(३) स्पष्टगुलिक एवं स्पष्ट चन्द्रमा के योग नक्षत्र में जब चन्द्रमा आता है, तब रोग होता है।

(४) पृच्छक के विपत्,प्रत्यरि या वध नक्षत्र में चन्द्रमा के आने पर रोग होता है।

(५) आरूढ़राशि से षष्ठेश जितनी संख्या आगे हो, प्रश्नकाल से उतने मास में रोग होता है।

१. देखिए —(१) प्रश्नमार्ग अ० १३ श्लो० १-३ एवं ६।

(६) आरूढ़ लग्न के नक्षत्र से षष्ठेश जितना आगे हो, प्रश्नकालीन सूर्य नक्षत्र से उतनी संख्या वाले अग्रिम नक्षत्र पर जब सूर्य जाता है, तब रोग होता है।

(७) प्रश्नकालीन नक्षत्र से षष्ठेशाश्रित नक्षत्र जितना आगे हो, उस संख्या को षष्ठेश के अयनादिकाल से गुणाकर रोगारम्भ का समय जाना जा सकता है।

(८) प्रश्नकालीन षष्ठेश के भुक्त नवांशों की संख्या को उसके काल (अयन, ऋतु मास, पक्ष, दिन या क्षण) से गुणा कर रोगारम्भ का समय बतलाना चाहिए।

रोग दिन में होगा या रात में ?

प्रश्न कुण्डली में जो ग्रह रोग (षष्ठ) स्थान में स्थित हो वह दिवाबली[1] हो तो दिन में और यदि वह रात्रिबली[2] हो तो रात्रि में रोग का प्रारम्भ होता है। यदि प्रश्न कुण्डली में षष्ठ स्थान में कोई ग्रह न हो तो षष्ठेश द्वारा विचार करना चाहिए। अर्थात् यदि षष्ठेश ग्रह दिवाबली हो तो दिन में तथा वह रात्रिबली हो तो रात्रि में रोग होता है।[3]

किस प्रहर में रोग होगा ?

प्रश्नकर्ता या उसका दूत जिस दिशा में बैठा हो, पूर्व आदि अनुलोम क्रम से गणना कर उस दिशा की संख्या जान लेनी चाहिए। फिर सूर्योदय से गणना कर उतने संख्यक प्रहर में रोगारम्भ बतलाना चाहिए।[4]

गोचरीय ग्रहस्थिति द्वारा रोगारम्भकाल का ज्ञान

गोचरीय क्रम से विविध राशियों में ग्रहों का परिभ्रमण भी मनुष्य के जीवन में घटित होने वाली महत्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी देता है। अतः ज्योतिषशास्त्र में गोचरीय ग्रहस्थितिवश रोगारम्भकाल का विचार किया जाता है। गोचरीय ग्रहस्थितिवश रोगारम्भ का निर्णय निम्नलिखित योगों के द्वारा किया जाता है—

(१) जन्मकुण्डली में षष्ठेश जिस राशि में हो उस राशि में गोचरीय क्रम से जब जब चन्द्रमा पहुँचता है, तब तब रोग होता है।

(२) लग्न, लग्नेश एवं चन्द्रमा की पापग्रहों के साथ जब-जब युति एवं दृष्टि होती है, तब तब रोग होता है।

(३) रोगकारक ग्रह जब-जब अनिष्ट स्थान में आता है, तब-तब रोग होता है।

---

१. सूर्य, गुरु एवं शुक्र दिवाबली होते हैं।

२. चन्द्रमा, मंगल एवं शनि रात्रिबली होते हैं।

३. प्रश्नमार्ग अ० १३ श्लो० ८।

४. तत्रैव श्लो० ६।

(४) रोगकारक ग्रह जब-जब लग्न, लग्नेश एवं चन्द्रमा की युति या दृष्टि द्वारा प्रभावित करता है, तब-तब रोग होता है।

रोगारम्भ-काल का निर्णय

उक्त विवेचन के द्वारा यह कहा जा सकता है कि मनुष्य के जीवन में आने वाली ग्रहों की दशा प्रश्नकालीन ग्रहस्थिति तथा गोचरीय ग्रह स्थिति, उसके जीवन में होने वाले रोगों की महत्वपूर्ण सूचना देती है। महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्मदशा, प्राण-दशा एवं प्रश्नकालीन या गोचरीय ग्रहस्थिति द्वारा जीवन में समय-समय पर होने वाले रोगों की जानकारी दी जा सकती है।

दशा, अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तरदशा द्वारा रोगोत्पत्ति के सम्भावित समय का निर्धा-रण किया जाता है। इन दशाओं का काल स्थूल या अपेक्षाकृत लम्बा होता है। तथा रोगोत्पत्ति के वास्तविक क्षण की जानकारी करने के लिए सूक्ष्मदशा, प्राणदशा एवं गोचरीय ग्रहस्थिति का उपयोग किया जाता है।

———

अध्याय—९

साध्य एवं असाध्य रोग

सामान्यतया रोग दो प्रकार के होते हैं—१. साध्य एवं २. असाध्य। जो रोग चिकित्सा द्वारा ठीक हो जाते हैं, उन्हें साध्य रोग कहते हैं। किन्तु जो रोग चिकित्सा एवं अन्य उपाय करने पर भी ठीक नहीं होते, अपितु जीवन भर चलते हैं, या जिनके कारण रोगी की मृत्यु हो जाती है, वे रोग असाध्य कहलाते हैं।

ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने रोग के साध्यत्व एवं असाध्यत्व का विचार बड़े ही वैज्ञानिकढंग से किया है। उनके मतानुसार रोगों के साध्यत्व या असाध्यत्व का निर्णय करने के लिए सर्वप्रथम रोगी की आयु का निर्णय करना चाहिए[1]। यदि रोगारम्भ के समय रोगी की आयु समाप्त न होती हो तो रोग साध्य होता है, और वह चिकित्सा द्वारा ठीक हो जाता है। किन्तु रोगारम्भ के आसपास ही रोगी की आयु समाप्त हो जाय तो उस समय उत्पन्न होने वाला रोग असाध्य होता है और उससे रोगी की मृत्यु हो जाती है। इसलिए रोग के साध्यत्व एवं असाध्यत्व का निर्णय करने के लिए आयु का विचार करना अति आवश्यक होता है।

आयु एवं उसके भेद

जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के जीवन काल को आयु कहते हैं। ज्योतिषशास्त्र के मनीषियों ने जन्मान्तर में किए गए कर्मों को भोगने के लिए प्राणी के जीवनकाल को उसकी आयु कहा है। यह आयु प्रारब्ध आदि कर्म के प्रभाव से दीर्घ, मध्य या अल्प होती है।[2]

फलितशास्त्र में आयु का निर्णय योग, निसर्गादिभेद एवं दशा के द्वारा किया जाता है। विविध योगों के द्वारा निर्णीत आयु को योगायु तथा दशाओं के द्वारा निर्णीत आयु को दशायु कहते हैं।[3] निसर्गादि आयु का स्पष्टीकरण गणितीय प्रक्रिया द्वारा किया जाता है।

(१) योगायु

योगायु का निर्णय मुख्यतया निम्नलिखित ६ प्रकार के योगों से किया जाता है—

१—सद्योरिष्ट योग

२—अरिष्ट योग

---

१. प्रश्नमार्गः पूर्वोद्धृत अध्याय ६ श्लो० ३।
२. प्रश्नमार्ग, अध्या० ६ श्लो० ४५।
३. तत्रैव श्लो० ५३।

३—अल्पायु योग
४—मध्यायु योग
५—दीर्घायु योग
६—अमितायु योग

सद्योरिष्ठ योगों में अधिकतम १ वर्ष की आयु होती है। अरिष्ट योग होने पर २ वर्ष से १२ वर्ष तक की आयु होती है। अल्पायु योग में अधिकतम २३ वर्ष की, मध्यायु योग में ७० वर्ष तथा दीर्घायु योगों में अधिकतम १०० वर्ष आयु होती है। अमितायु योग होने पर व्यक्ति १०० वर्ष से अधिक जीवित रहता है।[1]

इन ६ प्रकार के योगों में से सद्योरिष्ट योग एवं अरिष्टयोग होने पर ग्रहदशा का विचार नहीं करना चाहिए। इन दोनों प्रकार के योगों के प्रभाववश शुभ या अशुभ किसी भी ग्रहदशा में शिशु की मृत्यु हो जाती है। यहाँ योगों का प्रभाव मुख्य माना गया है। यही कारण है कि वैद्यनाथ आदि आचार्यों ने १२ वर्ष की आयु के बाद ही आयुर्दाय का निर्णय करने पर जोर दिया है।[2] शेष तीनों योगों —(अल्पायु, मध्यायु एवं दीर्घायु योग) में मारकेश आदि की दशा के आधार पर आयु का निर्णय करना चाहिए।[3]

तात्पर्य यह है कि किसी सद्योरिष्टयोग तथा अरिष्टयोग में मृत्युकाल का निर्णय योग या गोचरीय ग्रहस्थिति से हो जाता है। किन्तु अल्पायु, मध्यायु एवं दीर्घायु योगों में ऐसा नहीं होता। अल्पायु योग में १३ से ३२ वर्ष तक मध्यायु योग में ३३ से ७० वर्ष तक तथा दीर्घायु में ७० से १०० वर्ष तक आयु होती है। इन योगों में मृत्यु का निर्णय मारकेशग्रहों की दशा एवं भुक्ति के अनुसार किया जाता है। इस प्रकार मृत्युकाल की जानकारी हो जाने पर व्यक्ति की ठीक-ठीक आयु का ज्ञान हो जाता है। अमितायु योग होने पर आयुर्दाय का विचार नहीं करना चाहिए।[4] क्योंकि इस योग के होने पर मनुष्य की आयु प्रायः १०० वर्ष से अधिक की होती है।

सद्योरिष्टयोग

ज्योतिषशास्त्र के विविध ग्रन्थों में सद्यः अरिष्ट के अनेक योगों का वर्णन मिलता है। इन योगों के होने पर उत्पन्न शिशु की १ वर्ष के भीतर मृत्यु हो जाती है। इन योगों में प्रमुख योग इस प्रकार हैं—

---

१. प्रश्नमार्ग अ० ६ श्लो० ५४-५८।
२. जातकपारिजातः अध्या० ४ श्लो० १-२।
फलदीपिका अध्या०. १३ श्लो० ३।
३. प्रश्नमार्ग अ० ६ श्लो० ५७।
४. तत्रैव श्लो० ५८।

(१) सन्ध्याकाल में चन्द्रमा की होरा में जन्म हो तथा पापग्रह राशियों के अंतिम नवांश में हो, तो जातक की शीघ्र मृत्यु होती है ।[१]

(२) कुण्डली के चारों केन्द्र स्थानों में पापग्रह हो तथा चन्द्रमा भी इनके साथ हो तो शीघ्र मृत्यु होती है ।[२]

( ) चन्द्रमा के पूर्वार्धं में पापग्रह तथा चन्द्र के परार्धं में शुभग्रह हों तो शीघ्र मृत्यु होती है [३]

(४) जन्म लग्न एवं सप्तम स्थान से द्वितीय एवं द्वादश में पापग्रह हो तो शीघ्र मृत्यु होती है ।[४]

(५) लग्न एवं सप्तम में पापग्रह हों तथा चन्द्रमा पापग्रह के साथ हो और उस पर किसी शुभग्रह की दृष्टि न हो तो शीघ्र मृत्यु होती है ।[५]

(६) क्षीण चन्द्रमा द्वादश स्थान में हो, लग्न तथा अष्टम में पापग्रह हों और केन्द्र में शुभग्रह न हो तो शीघ्र मृत्यु होती है ।[६]

(७) शनि, मंगल एवं सूर्य–ये तीनों एक साथ अष्टम स्थान में या षष्ठ स्थान में हों तथा शुभ ग्रहों से दृष्टि युक्त न हों हो शीघ्र मृत्यु होती है ।[७]

(८) जन्म कुण्डली में मंगल चन्द्रमा के या लग्न के नवांश में हो, उस पर गुरु की दृष्टि न हो तथा चन्द्रमा पंचम में हो तो शिशु शीघ्र मर जाता है ।[८]

(९) लग्नेश नीच राशि में हो या अष्टम स्थान में हो तथा शनि भी नीच में हो या सप्तम में हो तो जातक शीघ्र मर जाता है ।[९]

(१०) जन्म के समय सूर्यादि ग्रह बलहीन होकर आपोक्लिम में हो तो उत्पन्न शिशु २ या ६ मास के भीतर मर जाता है ।[१०]

(११) शनि लग्न या सप्तम स्थान में हो, चन्द्रमा वृश्चिक या जलचर राशि में हो तथा शुभग्रह केन्द्र में हो तो जातक की शीघ्र मृत्यु हो जाती है ।[११]

(१२) जिसकी कुण्डली में गुरु मेष, वृश्चिक या मकर राशि में हों तथा प्रातः मध्याह्न या सायंकाल जन्म हो वह १ मास के भीतर मर जाता है ।[१२]

(१३) जन्म कुण्डली में अष्टम स्थान में सूर्य, मंगल एवं शनि हों, तो एक मास के भीतर मर जाता है ।[१३]

१-६. वृहज्जातक— अध्याय ६ श्लो० १–४ ।

७. जातक पारिजात — अध्या० ४ श्लो० २२

जातकाभरण—अरिष्टाध्याय श्लो० ४ ।

८-१३ जातक पारिजात अध्याय ४ श्लो० २५-२७, २९-३१ ।

(१४) जिस नक्षत्र में केतु का उदय हुआ हो उस नक्षत्र में जन्म लेने वाला बालक २ मास के भीतर मर जाता है।[1]

(१५) दो राशियों की सन्धि में जन्म हो और वह पापग्रह से दृष्ट या युत हो तो बालक शीघ्र मर जाता है।[2]

(१६) चन्द्रमा केन्द्र या अष्टम स्थान में मृत्यु भाग में हो तो बालक शीघ्र मर जाता है।[3]

मेषादि राशियों के मृत्यु भाग

राशि	मृत्यु भाग
मेष	२६°
वृष	१२°
मिथुन	१३°
कर्क	२५°
सिंह	२४°
कन्या	११°
तुला	२६°
वृश्चिक	१४°
धनु	१३°
मकर	२५°
कुंभ	५°
मीन	१२°

(१७) जन्म कुण्डली में पापग्रह लग्न तथा अष्टम मे हो बालक तुरंत मर जाता है।[4]

(१८) पापग्रह लग्न एवं सप्तम में हो तो बालक शीघ्र मर जाता है।[5]

(१९) लग्न एवं चन्द्रमा दोनो पापग्रहों के मध्य में हो तो बालक शीघ्र मर जाता है।[6]

(२०) लग्नद्रेष्काण या चन्द्र द्रेष्काण का स्वामी निर्बल होकर त्रिक स्थान में हो, तो वह जिस राशि में हो उस राशि की संख्या तुल्य मास में बालक मर जाता है।[7]

(२१) एक भी पापग्रह षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तथा उस पर अन्य पापग्रह की दृष्टि हो तो जातक एक वर्ष के भीतर मर जाता है।[8]

---

१. जातक पारिजात—अध्याय ४ श्लो० २५-२७, २६-३६।

२-३. फलदीपिका—अध्याय १३ श्लो० ६।

४-७. फलदीपिका—अध्याय १३ श्लो० १२-१३।

८. जातकामरण-अरिष्टाध्याय श्लो० ५।

(२२) जन्म कुण्डली में मेष, वृश्चिक या मकर राशि में दशम स्थान में सूर्य हो और उसे पापग्रह देखता हो तो बालक शीघ्र मर जाता है।[1]

(२३) षष्ठ या अष्टम स्थान में स्थित चन्द्रमा पर किसी पापग्रह की दृष्टि हो तो बालक शीघ्र मर जाता है।[2]

(२४) पापग्रह २।१२ स्थान में ६,८ स्थान में, ८,९ स्थान में या ६,१२ स्थान में हो तो जातक की छठें या आठवें महीने में मृत्यु होती है।[3]

(२५) जन्मकुण्डली में षष्ठ या अष्टम स्थान में शुभ ग्रह हो, उसपर वक्री पापग्रहों की दृष्टि हो और शुभ ग्रह न देखते हों तो जातक की १ मास में मृत्यु हो जाती है।[4]

(२६) लग्नेश छठें या ८ वें स्थान में हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो चौथे महीने में बालक मर जाता है।[5]

(२७) जन्म लग्नेश पापग्रहों के साथ ८वें स्थान में हो तो एक मास में मृत्यु हो जाती है।[6]

(२८) लग्नेश पापग्रहों के साथ ७ वें स्थान में स्थित हो तो बालक की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।[7]

(२९) चन्द्रमा १, ४, ५, ८ या १० वें स्थान में पापग्रहों के साथ हो उसे शुभग्रह न देखते हों तथा कोई शुभ ग्रह केन्द्र में न हो तो जातक शीघ्र मर जाता है।[8]

(३०) क्षीण चन्द्रमा लग्न में हो, पापग्रह केन्द्र में या अष्टम में हों तो बालक शीघ्र मर जाता है।[9]

(३१) कर्क वृष एवं मेष राशि को छोड़कर अन्य राशि में लग्न में क्षीण चन्द्रमा हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो जातक मर जाता है।[10]

(३२) क्षीण चन्द्रमा को राहु देखता हो तथा यह क्रूर ग्रहों के साथ हो तो चंद्रमा जिस राशि में हो उसमें उतने दिनों में बालक मर जाता है।[11]

(३३) लग्न में मंगल बैठा हो और उसे शुभ ग्रह न देखते हों या वह शनि के साथ ६ ठें अथवा ८ वें स्थान में बैठा हो तो शिशु को शीघ्र मार देता है—ऐसा आचार्य मणित्थ का मत है।[12]

(३४) सप्तम स्थान में शनि एवं मंगल दोनों हों तथा उन पर किसी भी शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो बालक शीघ्र मर जाता है।[13]

(३५) लग्न, द्वितीय, तृतीय या सप्तम स्थान में सूर्य एवं शनि के साथ मंगल हो तो बालक की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।[14]

१-८. जातकाभरण- अरिष्टाध्याय श्लो० ९, १३, १५-१६, १८-१९ एवं २१।

९. दैवज्ञाभरण षष्ठप्रकाश श्लो० ७।

१०-१४. दैवज्ञाभरण—षष्ठप्रकाश श्लो० १२, १६, २४, ९६, ३४, ४२ एवं ४४।

(३६) लग्न में शनैश्चर हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो वह १६ दिन के भीतर शिशु को मार देता है।[1]

(३७) लग्न में किसी पापग्रह के साथ शनैश्चर हो तो एक मास में बालक मर जाता है।[2]

(३८) सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ लग्न में राहु हो तथा उसे पापग्रह देखते हों तो बालक जन्म के ७ दिन के भीतर मर जाता है।[3]

(३९) कर्क या सिंह राशि में चन्द्र या सूर्य के साथ राहु हो और उसपर मंगल तथा शनि की दृष्टि हो तो बालक १५ दिन में मर जाता है।

अरिष्ट योग

जिन बच्चों का जन्म अरिष्ट योगों में होता है, वे बच्चे इन योगों के प्रभाववश १२ वर्ष की आयु के भीतर मर जाते हैं। कुछ आचार्यों का यह भी मत है कि योग बच्चे के माता पिता के उन पापों के द्योतक हैं, जिनके प्रभाव से उसकी मृत्यु होनी है।[4] इन योगों को बालारिष्ट योग भी कहते हैं। फलित शास्त्र के प्रायः सभी ग्रन्थों में बालकों के अरिष्टकारक इन योगों का विस्तार से वर्णन किया गया है। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण योग निम्नलिखित हैं :—

(१) जन्म के समय चन्द्रमा छठें या ८ वें स्थान में हो तथा उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो बालक ८ वर्ष के भीतर मर जाता है। यदि उक्त स्थान में स्थित चन्द्रमा पर पाप एवं शुभ दोनों प्रकार के ग्रहों की दृष्टि हो तो बालक ४ वर्ष के भीतर मर जाता है।[5]

(२) जन्म लग्न में क्षीण चन्द्रमा हो तथा केन्द्र (१, ४, ७ एवं १० स्थान) एवं अष्टम स्थान में पाप ग्रह हों तो शिशु की बाल्यावस्था में मृत्यु हो जाती है।[6]

(३) जण्म कुण्डली में दो पापग्रहों के मध्य में स्थित चन्द्रमा केन्द्र या अष्टम स्थान में हो तो भी उत्पन्न बालक बचपने में ही मर जाता है।[7]

(४) राहु से ग्रस्त तथा पापग्रहों के साथ चन्द्रमा लग्न में हो और मंगल अष्टम स्थान में हो तो शिशु अपनी माता के साथ मर जाता है।[8]

(५) जन्म लग्न में सूर्य या चन्द्रमा हो तथा पापग्रह त्रिकोण एवं अष्टम स्थान में हो तो बाल्यावस्था में बालक की मृत्यु हो जाती है।[9]

१-३. दैवज्ञाभरण-षष्ठप्रकाश श्लो० १२, १६, २४, २६, ३४, ४२ एवं ४४।

४. जातक—पारिजात अ० ४ श्लो० २।

फलदीपिका—अध्याय १३ श्लो० ३।

५-६. बृहज्जातक —अध्या० ६ श्लो० ६-७।

७-९. बृहज्जातक —अध्या० ६ श्लो० ९-१०।

(६) शनि १२ वें, चन्द्रमा लग्न में तथा मंगल ८ वें स्थान में हों तो बालक बचपने में मर जाता है।[१]

(७) पापग्रहों के साथ चन्द्रमा लग्न, त्रिकोण, अष्टम या व्यय स्थान में हो तथा इस पर किसी शुभग्रह की दृष्टि न हो तो जातक बचपने में मर जाता है।[२]

(८) वक्री शनि मेष या वृश्चिक राशि में केन्द्र, षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तथा उसे बलवान् मंगल देखता हो तो इस योग में उत्पन्न बालक २ वर्ष तक जीवित रहता है।[३]

(९) गुरु मेष या वृश्चिक राशि में अष्टम स्थान में हो तथा उसे सूर्य, चन्द्रमा, मंगल एवं शनि देखते हों किन्तु शुक्र न देखता हो तो बालक ३ वर्ष में मर जाता है।[४]

(१०) कर्क राशि में षष्ठ या अष्टम स्थान में बुध हो तथा उसको चन्द्रमा देखता हो तो बालक चौथे वर्ष में मर जाता है।[५]

(११) सूर्य, चन्द्र मंगल एवं गुरु एक साथ हों या चन्द्रमा, मंगल, गुरु, एवं शनि एक साथ हों अथवा सूर्य, चन्द्रमा, मंगल एवं शनि एक साथ हों तो ५ वर्ष में बालक की मृत्यु हो जाती है।[६]

(१२) शनि चन्द्रमा के नवांश में हो, उसे चन्द्रमा देखता हो तथा लग्नेश पर चंद्रमा की दृष्टि हो तो बालक ६ वर्ष में मर जाता है।[७]

(१३) यदि जन्मलग्न में निगड, अहि या पाशधर संज्ञक द्रेष्काण हो और उसमें क्रूर ग्रह हो तथा उसे उसका स्वामी ग्रह न देखता हो तो बालक ७ वर्ष में मर जाता है।[८]

(१४ लग्न में सूर्य, मंगल एवं शनि हों, सप्तम स्थान में वृष या तुला राशि में क्षीण चन्द्रमा हो तथा उसे गुरु न देखता हो तो बालक ७ या ८ वर्ष में मर जाता है।[९]

(१५) सूर्य, चन्द्रमा एवं मंगल ५ वें स्थान में हो तो ऐसे योग में उत्पन्न बालक ९ वर्ष में मर जाता है।[१०]

(१६) जन्म कुण्डली में किसी भी भाव में मकर के नवांश में शनि हो और उसे बुध देखता हो तो बालक १० माह में मर जाता है।[११]

(१७) सूर्य के साथ स्थित बुध को शुभ ग्रह देखते हों तो बालक राजकुमार जैसे सुख भोग कर ११ वर्ष में मर जाता है।[१२]

(१८) चन्द्र लग्न का स्वामी होकर सूर्य शनि के साथ अष्टम स्थान में हो तथा उन्हें शुक्र देखता हो तो बालक १२ वर्ष मे मर जाता है।[१३]

१-२. वृहज्जातक—अध्या० ६ श्लो० ९-११।

३-८. जातकपारिजात अध्याय ४ श्लो० ४०-४५।

९-१३. जातकपारिजात—अध्या० ४ श्लो० ४६-४७ तथा ४९-५१।

(१९) लग्नेश या राशीश दुर्बल होकर दुःस्थान में स्थित हो तो राशि की संख्या तुल्य वर्ष में बालक मर जाता है।[१]

(२०) जिस बालक का जन्म दिनमृत्यु[२] दिनरोग[३] या विषघटी[४] में हो वह मर जाता है।[५]

(२१) यदि चन्द्रमा एवं सूर्य के साथ मंगल हो तो बालक ९ वर्ष में मर जाता है।[६]

(२२) कर्क या सिंह राशि में लग्न से षष्ठ, अष्टम या द्वादश स्थान में शुक्र हो और उसे सब ग्रह देखते हों तो बालक ६ वर्ष में मर जाता है।[७]

(२३) जन्मकुंडली में केन्द्र स्थान में स्थित राहु को पापग्रह देखते हों तो बालक १० वें वर्ष में मर जाता है।[८]

(२४) जन्मकुण्डली में ६ ठें या ८ वें स्थान में स्थित चन्द्रमा को शुभ एवं पापग्रह देखते हों तो बालक ४ वर्ष में मर जाता है।[९]

(२५) सूर्य एवं मंगल के साथ चन्द्रमा मिथुन या कन्या राशि में हो और उसे अन्य ग्रह न देखते हों तो बालक ९ वें वर्ष में मर जाता है।[१०]

---

१. फलदीपिका—अध्या० १३ श्लो० १३।

२. **दिन मृत्यु**—हस्त एवं धनिष्ठा के प्रथम चरण में या आर्द्रा एवं विशाखा के द्वितीय चरण में अथवा आश्लेषा एवं उ० भाद्रपद के तृतीय चरण में या भरणी एवं मूल के चतुर्थ चरण में दिन के समय जन्म हो तो दिनमृत्यु योग होता है।

३. **दिनरोग**—आश्लेषा एवं उ० भाद्रपद के प्रथम चरण में, या भरणी एवं मूल के द्वितीय चरण में अथवा उ० फाल्गुनी एवं श्रवण के तृतीय चरण में या स्वाति एवं मृगशिरा के चतुर्थ चरण में दिन के समय जन्म हो तो यह योग 'दिनरोग' कहलाता है।

४. **विषघटी**—

विषघटी चक्र

नक्षत्र	विषघटी	नक्षत्र	विषघटी	नक्षत्र	विषघटी
अश्विनी	५१-५४ घटी	मघा	३१-३४ घटी	मूल	५७-६० घटी
भरणी	२५-२८ घटी	पू०फा०	२१-२४ घटी	पू०षा०	२५-२८ घटी
कृत्तिका	३१-३४ घटी	उ०फा०	१९-२२ घटी	उ०षा०	२१-२४ घटी
रोहिणी	४१-४४ घटी	हस्त	२२-२५ घटी	श्रवण	११-१४ घटी
मृगशीर्ष	१५-१८ घटी	चित्रा	२१-२४ घटी	धनिष्ठा	११-१४ घटी
आर्द्रा	२२-२५ घटी	स्वाति	१५-१८ घटी	शतभिषा	१९-२२ घटी
पुनर्वसु	३१-३४ घटी	विशाखा	१५-१८ घटी	पू०भा०	१७-२० घटी
पुष्य	२१-२४ घटी	अनुराधा	११-१४ घटी	उ०भा०	२५-२८ घटी
आश्लेषा	३३-३६ घटी	ज्येष्ठा	१५-१८ घटी	रेवती	३१-३४ घटी

५. फलदीपिका—अ० १३ श्लो० ८।

६-१०. जातकाभरण—अरिष्टाध्याय श्लो० ४, ६, ११, १४ एवं २०।

(२६) यदि चन्द्रमा सप्तम में हो, अष्टमेश लग्न में हो तथा शनि उसे देखता हो तो बालक ९वें वर्ष में मर जाता है।[1]

(२७) लग्नेश एवं चन्द्रमा अष्टम स्थान में हो तथा उन्हें सब पापग्रह देखते हों तो बालक ३ साल में मर जाता है।[2]

(२८) मंगल की राशि में गुरु हो तथा गुरु की राशि में मंगल हो तो बालक १२वें वर्ष में मर जाता है।[3]

(२९) कर्क राशि में षष्ठ या अष्टम स्थान में बुध हो या उसे बुध देखता हो तो बालक ४ वर्ष में मर जाता है।[4]

(३०) मंगल की राशि में द्वितीय, षष्ठ या अष्टम स्थान में गुरु हो तो बालक छठें वर्ष में मर जाता है।[5]

(३१) कर्क या सिंह राशि में षष्ठ, अष्टम या द्वादश स्थान में शुक्र हो तथा उस पर सब पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो ६ वर्ष में बालक मर जाता है।[6]

(३२) मंगल की राशि में केन्द्र, षष्ठ या अष्टम स्थान में शनि हो और उसे बलवान् मंगल देखता हो तो बालक मात्र २ वर्ष जीता है।[7]

(३३) चतुर्थ स्थान में शनि के साथ सूर्य हो तो बालक ९ वर्ष में मर जाता है।[8]

(३४) लग्न में राहु हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो ५ वर्ष में बालक मर जाता है।[9]

(३५) अष्टम स्थान में राहु हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो बालक दो वर्ष में मर जाता है।[10]

(३६) केन्द्र स्थान में राहु हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो बालक १० वर्ष में मर जाता है।[11]

(३७) सिंह वृश्चिक एवं कुम्भ लग्न में राहु हो तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो बालक ७ वर्ष में मर जाता है।[12]

(३८) चतुर्थ स्थान में राहु तथा केन्द्र में चन्द्रमा हो तो बालक १० वर्ष में मर जाता है।[13]

(३९) केन्द्र में सूर्य तथा क्षीण चन्द्रमा हो और उसे मंगल तथा शनि देखता हो तो बालक २ वर्ष में मर जाता है।[14]

(४०) केन्द्र, षष्ठ या अष्टम स्थान में मंगल की राशि में चन्द्रमा हो तथा उस पर शनि एवं राहु की दृष्टि हो तो बालक २ वर्ष में मर जाता है।[15]

१-९. जातकाभरण—अरिष्टाध्याय श्लो० २० एवं २६, षष्ठ प्रकाश श्लो० १४, २५, २८, ३१, ३३, ३५, ३७, ३९।

१०-१५. जातकाभरण—षष्ठ प्रकाश श्लो० ४०, ४४, ४६, ७८-७९।

अल्पायु योग

जिन योगों के प्रभाव से व्यक्ति की मृत्यु १२ वर्ष से ३२ वर्ष के मध्य हो जाती है, उन्हें फलित शास्त्र में अल्पायु योग कहते हैं। ये योग दो प्रकार के होते हैं। प्रथम प्रकार के योगों में मृत्यु की वर्ष संख्या का उल्लेख रहता है। तथा दूसरे प्रकार के योगों में किसी निश्चित वर्ष का उल्लेख नहीं रहता। इन योगों में मात्र अल्पायु का संकेत मिलता है। ऐसे योगों में उत्पन्न व्यक्तियों को जब मारकेश-ग्रह[१] की दशा अन्तर्दशा आती है तब उनकी मृत्यु हो जाती है। अतः इन योगों में उत्पन्न व्यक्ति की जन्मकुण्डली से अल्पायु योग तथा विंशोत्तरी दशा द्वारा मारकेश ग्रह की दशा अन्तर्दशा का निर्माण कर इनकी आयु या मृत्यु का निर्णय किया जा सकता है।

अल्पायु के योगों का उल्लेख पराशर जैमिनि प्रभृति महर्षियों के आर्ष ग्रन्थों में तथा कल्याण वर्मा, वैद्यनाथ, गुणाकर, मन्त्रेश्वर प्रभृति मनीषी आचार्यों के ग्रन्थों में किया गया है। यहाँ हम उन कुछ महत्त्वपूर्ण योगों का उल्लेख कर रहे हैं, जिनमें उत्पन्न व्यक्ति की आयु अल्प होती है। मारकेश ग्रह का निर्माण क्रमानुसार आगे किया जायेगा।

जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में कोई एक या एकाधिक योग हों उसकी अल्पायु होती है—

(१) लग्नेश एवं अष्टमेश से, जन्म लग्न एवं होरालग्न से तथा शनि एवं चन्द्रमा से आयु का विचार किया जाता है। यदि दोनों स्थिर राशियों में हों अथवा इनमें से कोई एक चर राशि में हो तथा दूसरा द्विस्वभाव राशि में हो तो अल्पायु होती है।[२]

(२) यदि चन्द्रमा लग्न या सप्तम में हो तो चन्द्रमा एवं शनि से ही आयु का विचार करना चाहिए।[३] इस स्थिति में शनि एवं चन्द्रमा दोनों स्थिर राशि में हों या इनमें से एक चरराशि में और दूसरा द्विस्वभाव राशि में हो तो अल्पायु होती है।

(३) तुला के नवांश में शनि हो तथा उसे गुरु देखता हो तो व्यक्ति १३ वें वर्ष में मर जाता है।[४]

(४) कन्या के नवांश में शनि हो और उसे बुध देखता हो तो १४ वें वर्ष में मृत्यु होती हैं।[५]

---

१. देखिए—लघुपाराशरी—आयुर्विचाराध्याय श्लो० १-६।

२. जैमिनि सूत्र—अ० १ पा० सू० १, ४-६।

३. तत्रैव सू० ६।

४-५. जातक—पारिजात अ० ४ श्लो० ५३-५४।

(५) सिंह राशि के नवांश में शनि हो तथा उसे राहु देखता हो तो बालक की १५ वें वर्ष में मृत्यु हो जाती है।[1]

(६) कर्क के नवांश में शनि हो और उसे गुरु देखता हो तो १६ वें वर्ष में मृत्यु होती है।[2]

(७) मिथुन के नवांश में शनि हो तथा उसे लग्नेश देखता हो तो १७ वें वर्ष में मृत्यु होती है।[3]

(८) लग्नेश एवं अष्टमेश दोनों में पापग्रह हों, परस्पर एक दूसरे की राशि में हों या ६ ठे एवं १२ वें स्थान में हों किन्तु गुरु के साथ न हों तो बालक १८ वें वर्ष में मर जाता है।[4]

(९) गुरु के नवांश में शनि हो, उसे राहु देखता हो और लग्नेश उच्च राशि के नवांश में हो तो बालक १९ वें वर्ष में मरता है।[5]

(१०) केन्द्र में पापग्रह हों, उन्हें चन्द्रमा एवं शुभग्रह न देखते हों अथवा चन्द्रमा ६ ठे या ८ वें स्थान में हों तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति २० वर्ष तक जीवन का सुख भोगता है।[6]

(११) कर्क में गुरु के साथ सूर्य हो तथा अष्टमेश केन्द्र में हो तो जातक २२ वर्ष में मरता है।[7]

(१२) लग्न में शत्रुराशि में शनि हो तथा आपोक्लिम (३/६/९/१२) स्थान में शुभ ग्रह हों तो जातक की आयु २६ या २७ वर्ष की होती है।[8]

(१३) अष्टमेश पापग्रह हो, उसे गुरु देखता हो तथा जन्मराशीश अष्टम स्थान में हो और उसे भी पापग्रह देखता हो तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति २८ वें वर्ष में मर जाता है।[9]

(१४) चन्द्रमा एवं शनि में स्थान सम्बन्ध हो, दृष्टि सम्बन्ध हो तथा सूर्य अष्टम स्थान में हो तो व्यक्ति २९ वें वर्ष में मर जाता है।[10]

(१५) जन्म राशीश तथा अष्टमेश के बीच में चन्द्रमा हो तथा गुरु १२ वें स्थान में हो तो २७ वें वर्ष या ३० वें वर्ष में बालक की मृत्यु होती है।[11]

(१६) अष्टमेश केन्द्र में हो तथा लग्नेश निर्बल हो तो ३२ वें वर्ष में व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।[12]

(१७) पापग्रह ६ ठे, ८ वें १२ वें स्थान में हों, लग्नेश निर्बल हो तथा किसी शुभ ग्रह से दृष्टि-युत न हो तो व्यक्ति की अल्पायु होती है।[13]

१-१०. जातक पारिजात —अध्या० ४ श्लो० ५५-६४।

११-१३. जातक पारिजात —अ० ४ श्लो० ६५-६६, ६८-७०।

(१८) अष्टमेश या शनि क्रूरषष्ठ्यंश में हो तथा पापग्रह के साथ हो तो व्यक्ति की अल्पायु होती है ।[१]

(१९) द्वितीय एवं द्वादश स्थान में पापग्रह हों, उन पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो तथा क्रूरषष्ठ्यंश में हो तो व्यक्ति की अल्पायु होती है ।[२]

(२०) लग्नद्रेष्काणराशि एवं चन्द्रद्रेष्काण राशि ये दोनों स्थिर हों अथवा इनमें से एक चर और दूसरी द्विस्वभाव हो तो व्यक्ति की अल्पायु होती है ।[३]

(२१) लग्नेश के नवांश की राशि तथा अष्टमेश के द्वादशांश की राशि ये दोनों स्थिर हों अथवा इनमें से एक चर और दूसरी द्विस्वभाव हो तो व्यक्ति की अल्पायु होती है ।[४]

(२२) लग्नेश के द्वादशांश की राशि तथा अष्टमेश के द्वादशांश की राशि ये दोनों स्थिर हों या इनमें से एक चर तथा दूसरी द्विस्वभाव हो तो जातक की अल्पायु होती है ।[५]

(२३) यदि लग्नेश एवं सब शुभग्रह आपोक्लिम (३, ६, ९ एवं १२) स्थान में हों तो मनुष्य की अल्पायु होती है ।[६]

(२४) जन्म राशि तथा उससे अष्टम स्थान का स्वामी ये दोनों परस्पर शत्रु हों लग्नेश एवं अष्टमेश परस्पर शत्रु हों तथा लग्नेश एवं सूर्य आपस में शत्रु हों तो मनुष्य की अल्पायु होती है ।[७]

(२५) यदि लग्नेश अष्टमेश की अपेक्षा दुर्वल हो, लग्ननवांशेश अपने अष्टमेश की अपेक्षा दुर्वल हो तथा जन्मराशीश अपने अष्टमेश की अपेक्षा दुर्वल हो तो मनुष्य दुर्वल होता है ।[८]

(२६) यदि लग्नेश की अपेक्षा अष्टमेश बलवान हो, वह केन्द्र में हो तथा पापग्रह अष्टम एवं द्वादश स्थान में हो तो मनुष्य की अल्पायु होती है ।[९]

(२७) यदि केन्द्र एवं त्रिकोण में स्थित शुभग्रहों की लग्नेश पर दृष्टि न हो तथा लग्नेश एवं लग्नेशाधिष्ठित राशि के स्वामी पर भी शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो मनुष्य की अल्पायु होती है ।[१०]

(२८) यदि निर्वल अष्टमेश अष्टम में हो या वह केन्द्र में हो तथा लग्नेश भी ... हो तो अल्पायु होती है ।[११]

१-२. जातक पारिजातअ०—४ श्लो० ६५-६६, ६८-७० ।

३-५. फलदीपिकाअ—० १३ श्लो० १४ ।

६-९. फलदीपिका—अध्याय १३ श्लोक १४,१७ ।

१०. उत्तरकालामृत—आयुर्दाय खण्ड श्लो० ७ ।

११. भावचन्द्रिका—श्लो० १३२-३५ ।

(२९) यदि अष्टमेश नीचराशि में हो शनि निर्बल हो तथा पापग्रह लग्न में हो तो अल्पायु होती है ।[1]

(३०) यदि अष्टम में शुभ ग्रह भी हों अष्टमेश बलवान हो तथा लग्नेश निर्बल हो तो अल्पायु होती है ।[2]

(३१) अष्टमेश पापग्रहों के साथ षष्ठ स्थान में हो तथा षष्ठेश एवं लग्नेश एक साथ हो तो मनुष्य की अल्पायु होती है ।[3]

(३२) लग्नेश के साथ व्ययेश एवं अष्टमेश हो, तृतीयेश अष्टम में हो इन दोनों को पापग्रह देखते हों तो मनुष्य की अल्पायु होती है ।[4]

(३३) अष्टमेश पाप ग्रहों के साथ लग्न में हो, लग्नेश पर गुरु की दृष्टि न हो, वह षष्ठ या व्यय स्थान में हो तथा चन्द्रमा त्रिक (६, ८ एवं १२) स्थान में हो तो मनुष्य की अल्पायु होती है ।[5]

(३४) केन्द्र में पाप ग्रह हों, उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तथा लग्नेश बलहीन हो तो अल्पायु होती है ।[6]

(३५) अष्टम स्थान में बलवान् अष्टमेश हो तथा लग्नेश निर्बल हो तो मनुष्य की अल्पायु होती है ।[7]

(३६) षष्ठ, अष्टम एवं व्यय स्थान में पापग्रह हों तथा लग्नेश दुर्बल हो तो मनुष्य की अल्पायु होती है ।[8]

(३७) लग्नेश, अष्टमेश एवं दशमेश—ये तीनों आपोक्लिम (३, ६, ९ एवं १२) स्थान में हो तो मनुष्य की अल्पायु होती है ।[9]

(३८) लग्नेश, दशमेश एवं शनि—ये तीनों अष्टम स्थान में हों तो मनुष्य की अल्पायु होती है ।[10]

(३९) लग्नेश एवं अष्टमेश दोनों छठे या १२ वें स्थान में हो तो मनुष्य की अल्पायु होती है ।[11]

(४०) लग्न में शनि एवं मंगल, अष्टम में चन्द्रमा एवं षष्ठ स्थान में गुरु हो तो अल्पायु होती है ।[12]

मध्यमायु योग

जिन योगों के प्रभाववश मनुष्य की आयु ३३ वर्ष ७० से वर्ष तक की होती है उन्हें फलितशास्त्र में मध्यायुयोग कहते हैं ।[13] ये योग भी दो प्रकार के होते हैं।

१-२. भावचन्द्रिका—श्लो० १३२-३५ ।

३-८. दैवज्ञाभरण—षोडश प्रकाश श्लो० १६-१९; ३४ एवं ४२ ।

९-१२. जातकतत्व—अष्टमविवेक सूत्र २० एवं २२ ।

१३. देखिए—जातक पारिजात-अध्या० ४ श्लो० ८४ ।

प्रथम प्रकार के योगों में आयु या मृत्यु के वर्ष का उल्लेख रहता है। तथा दूसरे प्रकार के योगों में किसी वर्ष विशेष का स्पष्टत: उल्लेख नहीं रहता। इस प्रकार के योगों में मारकेश ग्रहों का विविध निर्णय कर उसकी दशा-अन्तरदशा के अनुसार मृत्यु के वर्ष की जानकारी कर आयु का निर्धारण किया जाता है।

मध्यमायुदायक कुछ महत्वपूर्ण योग इस प्रकार हैं :—

(१) लग्नेश एवं अष्टमेश शनि एवं चन्द्रमा तथा लग्न एवं होरालग्न इन तीनों के द्वारा आयु का निर्णय करना चाहिए। ये दोनों द्विस्वभाव राशि में हों या इनमें से एक चर तथा दूसरा स्थिर राशि में हो तो मध्यमायु होती है।[१]

(२) लग्नेश निर्बल हो गुरु केन्द्र या त्रिकोण में हो तो पापग्रह त्रिक (६, ८ एवं १२) स्थान में हो तो मध्यमायु होती है।[२]

(३) लग्न के द्रेष्काण की राशि तथा चन्द्रमा के द्रेष्काण की राशि- ये दोनों द्विस्वभाव हो और इनमें से एक चर और दूसरी स्थिर हो तो मनुष्य की मध्यमायु होती है।[३]

(४) लग्नेश के नवांश की राशि तथा राशीश के नवांश की राशि-ये दोनों द्विस्वभाव हों या इनमें से एक चर और दूसरी स्थिर हो तो मध्यमायु होती है।[४]

(५) लग्नेश के अन्तर्दशा की राशि तथा अष्टमेश के द्वादशांश की राशि ये दोनों द्विस्वभाव हों या इनमें से एक चर और दूसरी स्थिर हो तो मध्यमायु होता है।[५]

(६) यदि लग्नेश एवं सब शुभ ग्रह पणफर (२, ५, ८ एवं ११)में हों तो मनुष्य की मध्यमायु होती है।[६]

(७) यदि अष्टमेश एवं सब क्रूर ग्रह पणफर में हों तो मनुष्य की मध्यमायु होती है।[७]

(८) यदि जन्म राशीश एवं उससे अष्टमेश परस्पर सम हों, लग्नेश एवं सूर्य परस्पर सम हो तो मनुष्य की मध्यमायुहोती है।[८]

(९) बुध, गुरु एवं शुक्र द्वितीय, तृतीय एवं एकादश भाव में हों तो मनुष्य की मध्यमायु होती है।[९]

---

१. जैमिनी सूत्र—अ० २ पाद १, सूत्र ३, ५-७।

२. जातक पारिजात —अ० ४ श्लोक ८४।

३-८. फलदीपिका —अ० १३ श्लो० १४-१५।

९. उत्तरकालामृत—आयुर्दाय खण्ड श्लो० ६।

(१०) लग्नेश निर्बल हो, गुरु केन्द्र या त्रिकोण में हो तथा पापग्रह त्रिक स्थान में हो तो मनुष्य की मध्यमायु होती है।[1]

(११) दो शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हों तथा बलवान शनि षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तो मनुष्य की मध्यमायु होती है।[2]

(१२) भाग्येश के साथ लग्नेश हो, पंचमेश पर गुरु की दृष्टि हो तथा कर्मेश उच्च-राशि में केन्द्र में हो तो मध्यमायु होती है।[3]

(१३) क्रूरग्रह दशम स्थान में हो दशमेश एवं पंचमेश के साथ शनि लाभस्थान में हो, तो मध्यमायु होती है।[4]

(१४) अष्टमाधिपति केन्द्र में हो, मंगल लग्न में हो तथा गुरु तृतीय, षष्ठ एवं एकादश स्थान में हो तो मध्यमायु होती है।[5]

(१५) मेष या वृश्चिक राशि में लग्न में चन्द्रमा हो वह पापग्रहों से दृष्ट हो और शुभ ग्रह केन्द्र में न हों तो मनुष्य को ३३ वर्ष की आयु होती है।[6]

(१६) लग्न में शत्रुराशि में दो पापग्रहों के मध्य में सूर्य हो तथा उसे शुभग्रह न देखते हों तो मनुष्य की आयु ३६ वर्ष की होती है।[7]

(१७) मिथुन लग्न में दो पापग्रहों के मध्य में लग्नेश हो तथा गुरु चतुर्थ स्थान में हो तो मनुष्य की ३७ वर्ष की आयु होती है।[8]

(१८) लग्नेश पापग्रहों के साथ अष्टम स्थान में हो तथा शुभग्रह केन्द्र में न हों तो ४० वर्ष की आयु होती है।[9]

(१९) मंगल के साथ अष्टमेश लग्न में बैठा हो तो ४२ वर्ष की आयु होती है।[10]

(२०) उच्चराशि का शनि १० वें, गुरु ७ वें तथा राहु लग्न में हो तो ४४ वर्ष की आयु होती है।[11]

(२१) पापग्रह के साथ लग्नेश अष्टम में, पापग्रह के ही साथ अष्टमेश षष्ठ स्थान में हो तथा इस पर शुभग्रह की दृष्टि न हो तो ४५ वर्ष की आयु होती है।[12]

(२२) मेष राशि में पूर्ण चन्द्रमा लग्न में हो तथा उसको शुभग्रह देखते हों तो ४८ वर्ष की आयु होती है।[13]

(२३) लग्न में अकेला शनि हो तथा अष्टम या द्वादश स्थान में चन्द्रमा हो तो ५२ वर्ष की आयु होती है।[14]

(२४) धनु राशि में लग्न में गुरु हो तथा राहु के साथ मंगल अष्टम स्थान में हो तो ५७ वर्ष की आयु होती है।[15]

१-५. दैवज्ञाभरण—षोडश प्रकाश श्लो० २०-२३।

६-८ देखिए—सर्वार्थ चिन्तामणि—अ० १२ श्लो० १।

९-१५. तत्रैव—श्लो० ५-१५।

(२५) अष्टमेश सप्तम स्थान में तथा पापग्रह युक्त चन्द्रमा षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तो ५८ वर्ष में मृत्यु होती है।[१]

(२६) अष्टमेश के साथ गुरु लग्न में हो या पापग्रहों के साथ कुम्भ राशि में केन्द्र स्थान में गुरु हो तो ३० वें वर्ष में मृत्यु होती है।[२]

(२७) लग्न में गुरु हो, मीन राशि में सूर्य, बुध एवं शनि किसी भी भाव में हो तथा चन्द्रमा १२ वें स्थान में हों तो ६६ वर्ष की आयु होती है।[३]

(२८) कर्क लग्न में चन्द्रमा, १० वें स्थान में शनि तथा ७ वें स्थान में सूर्य हो तो ६५ वर्ष की आयु होती है।[४]

(२९) चन्द्रमा के साथ सूर्य दशम स्थान में, शनि लग्न में तथा गुरु चतुर्थ भाव में हो तो ६८ वर्ष की आयु होती है।[५]

(३०) नीच राशि में शनि केन्द्र या त्रिकोण स्थान में हो तथा शुभ ग्रह केन्द्र में हो तो ७० वर्ष की आयु होती है।[६]

दीर्घायु योग

जिन योगों के प्रभाववश व्यक्ति की आयु ७१ से १०० वर्ष की होती है, उन्हें पूर्णायु योग कहते हैं। इन योगों में से कुछ में वर्ष का स्पष्टरूप से उल्लेख रहता है और कुछ में नहीं। जिन योगों में वर्ष का उल्लेख न हो वहाँ मारकेश का निर्णय कर उसकी महादशा एवं अन्तर्दशा के अनुसार मृत्यु का वर्ष निर्धारण कर मनुष्य की आयु का निर्णय किया जाता हैं।

दीर्घायु के योगों में से कुछ महत्वपूर्ण योग इस प्रकार हैं—

(१) अष्टमेश एवं लग्नेश, चन्द्रमा एवं शनि तथा लग्न एवं होरालग्न-ये दोनों चरराशि में हों अथवा इनमें से एक स्थिर राशि में तथा दूसरा द्विस्वभाव राशि में हो तो मनुष्य की पूर्णायु होती है।[७]

(२) यदि केन्द्र में शुभ ग्रह हों, लग्नेश शुभग्रह के साथ हो तथा उसे गुरु देखता हो तो मनुष्य की पूर्णायु होती है।[८]

(३) लग्नेश केन्द्र में गुरु एवं शुक्र के साथ हो तो पूर्णायु होती है।[९]

(४) तीन ग्रह उच्चराशि में हों, लग्नेश एवं अष्टमेश से युक्त हो तथा अष्टम स्थान में पापग्रह न हों तो पूर्णायु होती है।[१०]

(५) अष्टम स्थान में ३ ग्रह हों अथवा ३ ग्रह अपनी उच्च राशि मित्र स्थान या स्ववर्ग में हों तथा लग्नेश बलवान हो तो मनुष्य की दीर्घायु होती है।[११]

१-६. सर्वार्थचिन्तामणि—अध्या० १२ श्लो० १६-२०।

७. जेमिनि सूत्र—अध्याय २ पाठ १ सू० १-२, ५-६।

८-११. जातक पारिजात—अ० ४ श्लो० ८५-८८।

(६) उच्च राशि में स्थित किसी भी ग्रह के साथ शनि या अष्टमेश हो तो मनुष्य की दीर्घायु होती है ।[१]

(७) पापग्रह तृतीय, षष्ठ एवं एकादश स्थान में हों, शुभग्रह केन्द्र-त्रिकोण में हों तथा लग्नेश बली हो तो मनुष्य की पूर्णायु होती है ।[२]

(८) षष्ठ, सप्तम एवं अष्टम में शुभग्रह हों तथा तृतीय षष्ठ एवं एकादश स्थान में पापग्रह हों तो दीर्घायु होती है ।[३]

(९) पापग्रह षष्ठ स्थान में हों तथा लग्नेश केन्द्र में हो तो दीर्घायु होती है ।[४]

(१०) अष्टम स्थान में पापग्रह हों तथा दशमेश अपनी उच्चराशि में हो तो मनुष्य की दीर्घायु होती है ।[५]

(११) अष्टमेश जिस राशि में हो, उसका स्वामी जिस राशि में हो, उस राशि का स्वामी तथा लग्नेश- ये दोनों केन्द्र में हों तो मनुष्य चिरकाल तक जीवित रहता है ।[६]

(१२) जन्मलग्न में द्विस्वभाव राशि हो तथा लग्नेश केन्द्र, उच्चराशि या मूलत्रिकोण राशि में हो तो मनुष्य चिरकाल तक जीवित रहता है ।[७]

(१३) जन्मलग्न में द्विस्वभाव राशि हो तथा लग्नेश से केन्द्र (१, ४, ७ एवं १०) में दो पापग्रह हों तो मनुष्य की दीर्घायु होती है ।[८]

(१४) सूर्य, मंगल एवं शनि ये तीनों चरनवांश में हों, गुरु एवं शुक्र ये दोनों स्थिर नवांश में हों तथा शेष ग्रह द्विस्वभावनवांश में हों तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति १०० वर्ष तक जीवित रहता है ।[९]

(१५) यदि लग्न द्रेष्काण राशि एवं चन्द्र द्रेष्काण राशि-ये दोनों चर हों अथवा इनमें से एक स्थिर एवं दूसरी द्विस्वभाव हो तो मनुष्य की दीर्घायु होती है ।[१०]

(१६) लग्नेश नवांश राशि एवं चन्द्रेश नवांश राशि ये दोनों चर हों अथवा इनमें एक स्थिर एवं दूसरा द्विस्वभाव हो तो मनुष्य की दीर्घायु होती है ।[११]

(१७) लग्नेश द्वादशांश राशि तथा अष्टमेश द्वादशांश राशि-ये दोनों चर हों अथवा इनमें से एक स्थिर तथा दूसरा द्विस्वभाव हो तो मनुष्य की दीर्घायु होती है ।[१२]

(१८) यदि लग्नेश एवं सभी शुभ ग्रह केन्द्र में हों तो दीर्घायु होती है ।[१३]

(१९ यदि अष्टमेश एवं सभी पापग्रह आपोक्लिम में हों तो दीर्घायु होती है ।[१४]

१-५. जातक पारिजात - अध्या० ४ श्लो० ८९-९४ ।

६-९. जातक पारिजात—अध्या० ४ श्लो० ९४-९६ ।

१०-१४. फलदीपिका—अध्याय० १३ श्लो० १४-१६

(२०) जन्मराशि एवं उससे अष्टमेश, लग्नेश एवं अष्टमेश तथा लग्नेश एवं सूर्य परस्पर मित्र हों तो मनुष्य की दीर्घायु होती है ।[१]

(२१) यदि लग्नेश अष्टमेश से अधिक बलवान हों, लग्न नवांशेश अपने अष्टमेश से अधिक बलवान् हो तथा चन्द्रनवांशेश अपने अष्टमेश से अधिक बलवान् हो तो मनुष्य की दीर्घायु होती है ।[२]

(२२) यदि लग्नेश अतिबलवान् हो, पापग्रहों से दृष्ट न हो तथा केन्द्र में बैठा हो तो मनुष्य की दीर्घायु होती है ।[३]

(२६) यदि बुध, गुरु एवं शुक्र केन्द्र या त्रिकोण में हो तो दीर्घायु होती है ।[४]

(२४) यदि केन्द्र-त्रिकोण में स्थित शुभग्रहों की लग्नेश पर दृष्टि हो तथा लग्न या लग्नेशाधिष्ठित राशि के स्वामी पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो दीर्घायु होती है ।[५]

(२५) अष्टमेश केन्द्र में, त्रिकोण में या स्वराशि में हो तथा लाभेश अपनी उच्च राशि में हो तो मनुष्य की दीर्घायु होती है ।[६]

(२६) अष्टमेश केन्द्र-त्रिकोण स्थान में अपनी उच्चराशि या निम्नराशि में हो तथा लग्नेश भी इन्हीं स्थानों में अपनी उच्च आदि राशि में हो तो दीर्घायु होती हैं ।[७]

(२७) अष्टमेश लग्न में हो तथा लग्नेश गुरु एवं शुक्र से दृष्ट युत हो तो पूर्णायु होती है ।[८]

(२८) अष्टमेश अपनी उच्चराशि में हो, शुभग्रहों से युक्त तथा दृष्ट हो अष्टम भाव का कारक बलवान् हो तो दीर्घायु होती है ।[९]

(२९) लग्नेश अष्टमेश के साथ षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तथा षष्ठेश या व्ययेश लग्नेश के साथ हो और उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो दीर्घायु होती है ।[१०]

(३०) अष्टमेश स्वराशि में हो तो दीर्घायु होती है ।[११]

(३१) लग्नेश एवं लग्नेशाधिष्ठित राशीश-ये दोनों चर राशि में हों तो दीर्घायु होती है ।[१२]

(३२) अष्टमेश एवं तृतीयेश केन्द्र त्रिकोण में हों अथवा नवम एवं एकादश स्थान में उच्चराशि में हो तो दीर्घायु होती है ।[१३]

१-३. फलदीपिका—अध्या० १३ श्लो० २१, १६ ।

४-५. उत्तरकालामृत—आयुर्दाय खण्ड श्लो० ६-७ ।

६-८. दैवज्ञाभरण—षोडशप्रकाश श्लो० २४-२६ ।

९-१३. दैवज्ञाभरण—षोडशप्रकाश श्लों० २७-३३, ४२-४३, ४५ एवं ४७ ।

(३३) तृतीयेश एवं दशमेश केन्द्र या तृतीय स्थान में आयु कारक के साथ हो तो पूर्णायु होती है।[१]

(३४) लग्नेश, अष्टमेश एवं दशमेश, केन्द्र त्रिकोण एवं लाभस्थान में हो तो दीर्घायु होती है।[२]

(३५) शुभग्रह अपनी राशि में हों तथा अष्टमेश सप्तम या अष्टम स्थान में हो तो चिरायु होती है।[३]

(३६) लग्नेश केन्द्र में राहु एवं शुक्र के साथ हो या उनसे दृष्ट हो तो दीर्घायु होती हैं।[४]

(३७) स्वोच्चराशिगत किसी भी ग्रह की सूर्य, शनि एवं अष्टमेश पर दृष्टि हो तो दीर्घायु होती है।[५]

(३८) लग्न से षष्ठ भाव पर्यन्त सभी बलवान् शुभ ग्रह हों तथा सप्तम भाव से द्वादश भाव पर्यन्त सभी बलवान् पापग्रह हों तो ८० वर्ष की आयु होती है।[६]

(३९) केन्द्र में शुभग्रह, अष्टम के अलावा अन्य भावों में पापग्रह तथा षष्ठ स्थान में चन्द्रमा हो तो ८६ वर्ष की आयु होती है।[७]

(४०) लग्नेश से केन्द्र में गुरु हो तथा तृतीय, षष्ठ, एकादश एवं द्वादश स्थान में पापग्रह हों तो १०० वर्ष की आयु होती है।[८]

अमितायु योग

अमितायु योग में उत्पन्न व्यक्ति की आयु १०० वर्ष से अधिक होती है। आचार्य वराहमिहिर एवं भट्टोत्पल आदि का कथन है कि इस योग में आयुर्दाय की गणित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।[९] आचार्य वैद्यनाथ के अनुसार इन योगों में उत्पन्न मनुष्य की आयु काफी लम्बी होती है, जिसे उन्होंने युगान्तमायु या 'चिरायु' कहा है। इस प्रकार के कतिपय योग जातक ग्रंथों में मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) जन्म लग्न में कर्क राशि में चन्द्रमा एवं गुरु हो केन्द्र में बुध, शुक्र हों तथा शेष ग्रह (सूर्य, मंगल एवं शनि) तृतीय, षष्ठ एवं एकादश स्थान में हों तो मनुष्य की अमितायु होती है।[१०]

(२) सूर्य, मंगल एवं गुरु ये तीनों शनि के नवांश में नवम भाव में या उसके नवांश में बलवान् हों तथा चन्द्रमा लग्न में हो तो मनुष्य की चिरायु होती है।[११]

१-५. दैवज्ञाभरण -- षोडशप्रकाश श्लोक ४२-४५।

६-८. जातक तत्व —अष्टमविमेक, सूत्र ४८ एवं ४९।

९. बृहज्जातक—अ० ७ श्लो० १४।

१०. तत्रैव तथा जातक पारिजात – अध्याय ४ श्लो० ९९।

११. जातक पारिजात—अ० ४ श्लोक ९६-९७।

(३) सूर्योदय के समय जन्म हो, गुरु एवं शनि एकही नवांश में नवम या दशम में हों तथा उन पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो मनुष्य की चिरायु होती है।[1]

(४) मेष का अन्तिम नवांश लग्न में हो, उसमें गुरु या शुक्र हो, वृष के मध्य नवांश में चन्द्रमा हो तथा मंगल सिंहासनांश में हो तो मनुष्य की असंख्यायु होती है।[2]

(२) कर्क लग्न हो, गुरु केन्द्र में गोपुरांश में हो तथा शुक्र त्रिकोण में पारावतांश में हो तो मनुष्य की युगान्त आयु होती है।[3]

निसर्गादि आयु

पाराशर आदि महर्षि एवं मय, यवन, मणित्थ, शक्ति, जीव-शर्मा, सत्याचार्य एवं वराहमिहिर प्रभृति आचार्यों ने निसर्गादि आयु का स्पष्टीकरण कर उसके द्वारा मनुष्य की आयु का निर्धारण किया है।[4]

निसर्गादि आयु के निम्नलिखित चार भेद होते हैं —

१—निसर्गायु।

२—पिण्डायु।

३—लग्नायु।

४—अंशकायु।

योगायु का विचार करते समय सद्योरिष्ट, बालारिष्ट, अल्पायु, मध्यायु, पूर्णायु एवं अमितायु योगों का विवेचन किया गया है। किन्तु इन योगों में से सद्योरिष्ट, बालारिष्ट एवं अमितायु योग का प्रत्येक व्यक्ति की कुण्डली में मिलना सम्भव नहीं है। तथा अल्पायु, मध्यायु एवं पूर्णायु योगों से व्यक्ति की आयु कितनी वर्ष, मास, एवं दिन की होगी ? इसकी ठीक-ठीक जानकारी नहीं मिलती। अतः व्यक्ति की आयु के बारे में ठीक-ठीक जानकारी के लिए निसर्गादि आयु का स्पष्टीकरण किया जाता है।

वस्तुतः जन्म एवं मृत्यु एक पहेली है। जिसको हल करने के लिए भारतीय मनीषियों ने अनेक पद्धतियों का आश्रय लिया है। भारतीय ज्योतिष शास्त्र के प्रणेताओं ने इस पहेली का हल निकालकर व्यक्ति की आयु का ठीक-ठीक निर्धारण करने का प्रयास किया है।

---

१. जातक पारिजात—अ० ४ श्लोक ९६-९७।

२-३. जातक पारिजात—अध्या० ४ श्लो० १०२ एवं १०४।

४. (क) जातक पारिजात—अ० ५ श्लो १।

(ख) वृहज्जातक—अ० ७ श्लो० १।

(१) निसर्गायु

सूर्य आदि सात ग्रहों की निसर्ग आयु क्रमशः २०, १, २, ९, १८, २० एवं ५० वर्ष होती है।[१]

निसर्ग-आयुचक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
आयुवर्ष	२०	१	२	९	१८	२०	५०

ग्रहों की निसर्ग आयु के उक्त वर्ष उनके उच्चराशि में स्थित होने पर बतलाये गये हैं। यदि ग्रह उच्चराशि से भिन्न राशि में हों, तो वक्ष्यमाण विधि से निसर्ग आयु का स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए।

(२) पिण्डायु—

सूर्य आदि ग्रह अपनी-अपनी राशि में हों तो उनकी पिण्डायु इस प्रकार होती है, यथा—सूर्य की १९ वर्ष, चन्द्रमा की २५ वर्ष, मंगल की १५ वर्ष, बुध की १२ वर्ष, गुरु की १५ वर्ष, शुक्र की २१ वर्ष तथा शनि की २० वर्ष।[२]

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
आयुवर्ष	१९	२५	१५	१२	१५	२१	२०

जो ग्रह अपनी उच्च राशि में हो उसकी पिण्डायु पठितवर्षों के समान होती है। यदि वह नीच राशि में हो तो उसकी आयु आधी रह जाती है। तथा इससे भिन्न राशि में ग्रह होने पर अनुपात द्वारा उसकी आयु का साधन करना चाहिए—यह मय, यवन, मणित्थ एवं शक्ति प्रभृति प्राचीन आचार्यों का मत है।[३]

निसर्ग एवं पिण्डायु का स्पष्टीकरण—

स्पष्टग्रह में से उसके उच्च को घटा कर शेष ६ राशि से अधिक हो तो यथावत् रखना चाहिए। फिर सबकी कला बनाकर उसे निसर्ग या पिण्डायु के वर्ष से गुणा कर उसमें २१,६०० का भाग देने से प्राप्त लब्धि वर्ष, मास, दिन एवं घटी उस ग्रह की स्पष्ट निसर्ग या पिण्डायु होती है।[४]

१. देखिये (क) सारावली—अ० ४ श्लो० २०।
(ख) जातक पारिजात—अध्या० ५ श्लो० २।
२. देखिये (क) बृहज्जातक—अध्या० ७ श्लो० १।
(ख) सारावली—अ० ४० श्लो० १३।
३. बृहज्जातक—अध्या० ७ श्लो० १-२।
४. जातक पारिजात—अध्या० ५ श्लो० ४-६।

ग्रहों की उच्च राशियाँ[1]

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उच्च-राशि अंश	मेष १०	वृष ३	मकर २८	कन्या १५	कर्क ५	मीन २७	तुला २०

उदाहरण—

पिण्डायु साधनार्थ मान लिया कि स्पष्ट बुध
=१/१४/२६/४६ है।

अत :—स्पष्टबुध १/१४/२६/४६
बुध का उच्च ५/१५/ ०/ ०

शेष= ७/२६/२६/४६

इसकी कला = ([(७ × ३०) + २६ × ६०) + २६] ४६
=१४३६६/४६ =कला पिण्ड

इस कला पिण्ड का बुध की पिण्डायु=१२ से गुणा करने पर
१४३६६/४६ × १२
=१,७२,४३७/४८

फिर इसमें २१,६०० का भाग देने पर
१,७२, ४३७/४८ ÷ २१,६००
=१,७२४३७।४८=लब्धि ७ वर्ष ११ मास २४ दिन १ घटी

इस प्रकार बुध की स्पष्ट पिण्डायु के वर्ष आदि ७।११।२४।१ हुए। यह इसकी स्पष्ट पिण्डायु है। इसी प्रकार निसर्गायु का भी स्पष्टीकरण किया जा सकता है।

संस्कार—

इस प्रकार प्रत्येक निसर्ग एवं पिण्ड आयु का स्पष्टीकरण करने के बाद उसमें निम्नलिखित संस्कार करना चाहिये—

मंगल को छोड़कर अन्य कोई भी ग्रह शत्रु राशि में हो तो उसकी स्पष्ट आयु में से उसका १।३ भाग घटा देना चाहिए। किन्तु मंगल शत्रुराशि में भी हो तो उसकी आयु यथावत् रहती है। इसी प्रकार शुक्र एवं शनि के अलावा अन्य ग्रह अस्त हो तो उसकी स्पष्ट आयु में से १।२ भाग घटा देना चाहिए।[2]

१. वृहज्जातक अ० १ श्लो० १३।

२. (क) वृहज्जातक —अध्या० ७ श्लो० २।
(ख) जातक पारिजात—अध्या० ५ श्लो० ७-८।

(३) लग्नायु

जिस प्रकार ग्रहों की निसर्ग आयु या पिण्डायु निकालते हैं, उसी प्रकार लग्न के बलवान् होने पर वक्ष्यमाण रीति से लग्न की आयु निकालनी चाहिए, उसे लग्नायु कहते हैं। लग्न अपने स्वामी ग्रह बुध या गुरु से दृष्ट या युत हो तो वह बलवान् होता है।

लग्नायु साधन की दो रीतियों का जातक ग्रंथों में वर्णन मिलता है। प्रथम रीति के अनुसार स्पष्ट लग्न की कला बनाकर उसमें २०० का भाग देने से जो वर्ष आदि लब्धि मिले वह लग्नायु होती है। दूसरी रीति के अनुसार लग्न की जितनी राशियां भुक्त हों उतने वर्ष का भुक्त अंशों द्वारा अनुपात से मासादि जान कर उन सबका योग लग्नायु होती है।[1] यह आचार्य मणित्थ का मत है।

उक्त दोनों रीतियों में से प्रथम रीति वराहमिहिर, कल्याण वर्मा, केशव एवं वैद्यनाथ आदि आचार्यों को स्वीकार होने के कारण बहुसम्मत है। आचार्य कल्याण वर्मा ने इन दोनों रीतियों का विस्तारपूर्वक विचार करने के बाद कहा है कि यदि लग्न का नवमांशपति बलवान् हो तो प्रथम रीति के द्वारा और यदि लग्नेश बलवान् हो तो द्वितीय रीति के द्वारा लग्नायु का साधन करना चाहिए।[2]

उदाहरण

लग्नायुसाधन के लिए मान लीजिये कि स्पष्टलग्न=५।२५।३३।५३

प्रथम रीति के अनुसार—२५।३३।५३ की कला बनायीं

=(२५×६०)+३४
=१५००+३४
=१५३४

नियमानुसार २०० का भाग देने पर—

२००) १५३४ (७।८।१
१४००
———
१३४×१२
———
१६०८
१६००
———
८×३०
———
२४०
२००
———
४०

---

१. (क) वृहज्जातक—अ० ७ श्लो० २
(ख) जातकपारिजात—अ० ५ श्लो० १४-१५।
(ग) सारावली—अ० ४० श्लो० ५।

२. सारावली—अ० ४० श्लो० १७।

७ वर्ष ८ मास एवं १ दिन लग्नायु हुई।

इसी उदाहरण में द्वितीय रीति के अनुसार—

स्पष्ट लग्न = ५।२५।३३।५३

वर्ष संख्या = ५ हुई।

फिर शेष=(२५।३३।५३) की विकला बनाई

=(२५ × ६० × ६०) + (३३ × ६०) + ५३

=९२०३३

एक राशि में १०८००० विकला होती है। अतः अनुपात किया—

यदि १०८००० विकला में एक वर्ष तो भुक्त विकला = ९२०३३ में क्या ?

$$\frac{१ \times ९२०३३}{१०८०००} = ०।१०।६$$

इसे लब्धि के ५ वर्षों में जोड़ने पर

५। १।०

०।१०।६

५।१०।६

५ वर्ष १० मास एवं ६ दिन लग्नायु हुई।

लग्नायु साधन में विशेषता

लग्नायु साधन करते समय लग्न में पापग्रह होने पर भी 'सार्धोदितोदितनवांशहता०' इत्यादि रीति से आयुर्दाय में ह्रास नहीं करना चाहिए।[1]

(४) अंशकायु

अंशकायु का स्पष्टीकरण सत्याचार्य ने किया है। तथा वराहमिहिर, कल्याणवर्म्मा, गुणाकर एवं वैद्यनाथ प्रभृति परवर्ती सभी विद्वानों ने भी सत्याचार्य के इस मत को स्वीकार किया है। इनके मतानुसार अंशकायु का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जाता है—

स्पष्ट ग्रहण के राश्यादि का कलापिण्ड बनाकर उसमें २०० का भाग देने पर जो लब्धि मिले वह वर्ष तथा शेष को १२ से गुणाकर पुनः २०० का भाग देकर मास आदि का साधन करना चाहिए। यहाँ वर्ष संख्या या प्रथम लब्धि १२ से अधिक होने पर १२ का भाग दे देना चाहिये।[2]

अंशकायु में संस्कार

उक्त रीति से अंशकायु का साधन कर ग्रह उच्च आदि राशियों में स्थिति के अनुसार संस्कार करना चाहिए, यथा—'जो ग्रह अपनी उच्च राशि में हो या वक्री हो उसकी आयु

१. देखिए – बृहज्जातक—अ० ७ श्लो० १२।

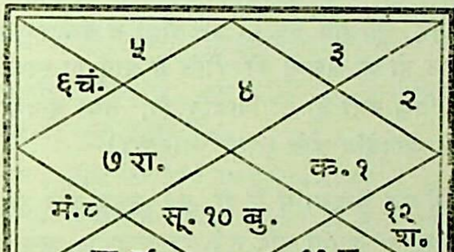
२. (क, बृहज्जातक—अ० ७ श्लो० १०।

(ख) जातकपारिजात—अ० ५ श्लो० १८।

के मान को तिगुना कर देना चाहिए। और जो ग्रह वर्गोत्तम नवांश, स्वनवांश, स्वद्रेष्काण या स्वराशि में हो उसकी आयु के मान को दूना करना चाहिए। जो ग्रह शत्रु राशि में हो उसकी आयु के मान में से उसका तृतीयांश घटाना चाहिए। तथा शुक्र एवं शनि के अलावा अन्य किसी ग्रह के अस्तंगत होने पर उसकी आयु के मान में से उसका आधा भाग घटाना चाहिए। इसी प्रकार किसी ग्रह के क्रमशः १२ वें, ११ वें, १० वें, ९ वें एवं ७ वें स्थान में पापग्रह होने[1] पर उसकी आयु के मान में से क्रमशः उसका सम्पूर्ण मान का आधा भाग, तीसरा भाग चौथाई भाग पाँचवा भाग एवं छठा भाग घटाना चाहिए तथा उक्त स्थान में शुभग्रह होने पर पठित भाग का आधा भाग घटाना चाहिए। किन्तु यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि एकही स्थान में दो तीन या अधिक ग्रह हों तो सब ग्रहों का भाग नहीं घटता हैं। अपितु उनमें से जो सबसे अधिक बलवान् हो उसी का भाग घटाना चाहिए। तात्पर्य यह है कि एकही स्थान में पाप एवं शुभ दोनों प्रकार के ग्रह होने पर उनका सब भाग नहीं घटाया जाता। अपितु उनमें बलवान् एकही ग्रह का भाग घटाया जाता है।[2] इस प्रकार संस्कार करने पर ग्रहों की अंशकायु स्पष्ट हो जाती है।

उदाहरण —

अंशकायु स्पष्ट करने के लिए मान लीजिए कि किसी व्यक्ति का दि० ७ फरवरी १९३९ ई० को कर्क लग्न में जन्म हुआ। उसकी जन्मकुण्डली इस प्रकार है।



इनके जन्म के समय स्पष्ट सूर्य=९।२४।४९।१३ था।

यहाँ स्पष्टसूर्य = (९।२४।४९।१३) की कला बनाई तो १७६८९।१३ हुई।

फिर इन कलाओं में २०० का भाग देने पर—

$\frac{१७६८९।१३}{२००}$ लब्धि = ८८ तथा शेष=८९।१३ हुआ।

---

१. यद्यपि क्षीण चन्द्रमा एवं पापयुक्त बुध को फलित शास्त्र में पापग्रह माना गया है। किन्तु इस संस्कार में इन दोनों को पापग्रह नहीं माना जाता।

२. देखिए - (क) बृहज्जातक—अ० ७ श्लो० ११ तथा ३।

(ख) जातकपारिजात—अ० ५ श्लो० १९ तथा ९-१०।

यह लब्धि १२ से अधिक है। अतः इसमें १२ का भाग देने से शेष=४ वर्ष हुये। फिर शेष को १२ से गुणा कर २०० का भाग देने पर

$$\frac{(८९।१३)\ १२}{२००} = \frac{१०७०।३६}{२००}$$

लब्धि=५ मास हुए। तथा शेष=७०।३६ रहा।

शेष को ३० से गुणा कर पुनः २०० का भाग दिया—

$$\frac{(७०।३६) \times ३०}{२००} = \frac{२११८}{२००}$$

तो लब्धि =१० दिन हुए।

इस प्रकार ४ वर्ष ५ मास एवं १० दिन सूर्य की अंशकायु हुई।

यह सूर्य लग्न से सप्तम में बैठा है। अतः इसकी आयु में उसका षष्ठांश=०।८।२६ घटाया तो (४।५।१०)—(०।८।२६)=३।८।१४ यह आयु हुई।

किन्तु यह सूर्य अपने नवांश में स्थित भी है। अतः उसकी इस आयु को दूना करने पर—(३।८।१४)×२ =७।४।२।८—७ वर्ष ४ मास एवं २८ दिन यह सूर्य की स्पष्ट आयु हुई। उसी प्रकार अन्य ग्रहों की भी अंशकायु का ज्ञान किया जा सकता है।

उक्त चारों आयुर्दायों में से कौन सी आयु ग्राह्य है ?

जन्म काल में लग्नेश, सूर्य एवं चन्द्रमा इन तीनों में लग्नेश यदि सबसे अधिक बली हो और वह शुभग्रह से दृष्ट हो तो अंशायु की रीति से आयु का स्पष्टीकरण करना चाहिए। और यदि सूर्य सबसे अधिक बली हो तो पिण्डायु की, तथा चन्द्रमा सबसे अधिक बली हो तो निसर्गायु की रीति से आयुर्दाय ज्ञात करना चाहिए।[1]

यदि लग्नेश, सूर्य एवं चन्द्रमा में से दो ग्रह तुल्य बली हों तो उन दोनों की आयु का योगार्ध ले लेना चाहिए। अर्थात् यदि सूर्य एवं चन्द्रमा तुल्य बली हों तो अंशायु एवं पिण्डायु एवं निसर्गायु का योगार्ध लेना चाहिए। यदि कदाचित् लग्नेश, सूर्य एवं चन्द्रमा तीनों ही तुल्य बली हों तो अंशायु, पिण्डायु एवं निसर्गायु के योग का तृतीयांश ग्रहण करना चाहिए।

(३) दशायु

दशा के द्वारा साधित आयु को दशायु कहते हैं। योगायु के साधन में सद्योरिष्ट योग, बालारिष्ट योग तथा अमितायु योग अपने प्रभाववश कथित वर्ष में मृत्यु की सूचना देते हैं। अर्थात् इनयोगों के होने पर इनयोगों में कहे गये वर्ष की समाप्ति पर मृत्यु होती है। किन्तु योगायु में अल्पायु योग, मध्यायु योग तथा दीर्घायु योग होने पर मृत्यु काल का निर्णय

१. देखिये-(क) वृहत्पाराशरहोराशास्त्र—अ० ४३ श्लो० ३१।
(ख) जातकपारिजात—अ० ५ श्लो० २८।

दशा-अन्तर्दशा की अपेक्षा रखता है। अतः इन योगों के होने पर योग एवं दशा की एकरूपता द्वारा मृत्युकाल का निर्णय करना चाहिए।[1]

जैमिनी एवं पाराशर प्रभृति महर्षियों ने दशा के अनेक भेद बतलाये है। किन्तु उन भेदों में से हमारे देश में सम्प्रति विंशोत्तरी दशा एवं अष्टोत्तरी दशा का ही अधिकतम प्रचलन है। अतः दशा द्वारा मृत्यु या आयु का ज्ञान करने के लिए व्यक्ति के जन्मनक्षत्र के अनुसार विंशोत्तरी या अष्टोत्तरी दशा का भोग्यकाल ज्ञात कर प्रत्येक ग्रह की दशा में अन्य ग्रहों की अन्तर्दशाओं का ज्ञान कर लेना चाहिए।

मृत्युदायक दशा एवं अन्तर्दशाएँ

महर्षि पाराशर ने जन्मकुण्डली में तृतीय एवं अष्टम स्थान को आयु का स्थान माना है तथा इन दोनों के व्यय (बारहवें) स्थानों अर्थात् द्वितीय एवं सप्तम स्थान को मारक स्थान कहा है। इन दोनों मारक स्थानों में भी सप्तम स्थान से द्वितीय स्थान अधिक बलवान् मारक स्थान होता है।[2]

दशा द्वारा मृत्युकाल का निर्णय करने से पूर्व योगों द्वारा अल्पायु, मध्यायु या दीर्घायु की जानकारी कर लेनी चाहिए,[3] यथा अल्पायु योग होने पर व्यक्ति की अधिकतम आयु ३२ वर्ष, मध्यायु योग होने पर अधिकतम आयु ६४ या ७० वर्ष, तथा दीर्घायु योग होने पर अधिकतम आयु १०० वर्ष होती है। इस प्रकार अल्पायु, मध्यायु या दीर्घायु के योगों द्वारा मनुष्य की अधिकतम आयु की जानकारी कर उस कालावधि के भीतर आने वाले ग्रहों की दशा एवं अन्तर्दशा के द्वारा मृत्युकाल का निर्णय करना चाहिए।

आयुर्दाय की समाप्ति या उसकी कालावधि में निम्नलिखित ग्रहों की दशा एवं अन्तर्दशा[4] हो तो मनुष्यों की मृत्यु होती है—

(१) द्वितीयेश या सप्तमेश की दशा एवं अन्तर्दशा हो।

(२) द्वितीय या सप्तमस्थान में स्थित पापग्रहों की दशा एवं अन्तर्दशा में।

(३) द्वितीयेश या सप्तमेश के साथ स्थित पापग्रह की दशा एवं अन्तर्दशा में।

यदि आयुर्दाय की कालावधि या समाप्ति के आसपास उक्त ग्रहों की दशा अन्तर्दशा न हो तो निम्नलिखित ग्रहों की दशा अन्तर्दशा में मनुष्य की मृत्यु होती है।[5]

(१) उक्त व्ययेश से सम्बन्ध रखने वाले किसी शुभ ग्रह की दशा-अन्तर्दशा में।

(२) अष्टमेश की दशा-अन्तर्दशा में।

---

१. प्रश्नमार्ग—अ० १० श्लो० श्लो० २।

२. वृहत्पाराशरहोराशास्त्र—अ० ४४ श्लो० २-३।

३. तत्रैव—श्लो० ५।

४. तत्रैव—श्लो० ३-४।

५. तत्रैव—श्लो० ६-७।

(३) मात्र पापग्रह की दशा-अन्तर्दशा में।

जातक चन्द्रिकाकार ने पाराशर के मारकेश निर्णय के आधार पर मारक ग्रहों का वरीयता क्रम इस प्रकार बतलाया है :—

(१) द्वितीय भाव का स्वामी।
(२) द्वितीय भाव में स्थित पापग्रह।
(३) सप्तम भाव का स्वामी।
(४) सप्तम भाव में स्थित पापग्रह।
(५) द्वितीयेश से युक्त पापग्रह।
(६) सप्तमेश से युक्त पापग्रह।
(७) अष्टमेश।
(८) तृतीयेश या अष्टमेश यदि वह द्वितीयेश या सप्तमेश के साथ हो।
(९) मारक ग्रहों के साथ बैठा हुआ शनि।
(१०) षष्ठेश।
(११) जो कुण्डली में सबसे निर्बल हो।

मारकेश ग्रह की दशा, अन्तर्दशा निश्चित करने के लिए पाराशर ने जो नियम बतलाये हैं, उनका निष्कर्ष इस प्रकार है—

(१) द्वितीयेश की दशा महादशा में—
(अ) व्ययेश की अन्तर्दशा (आ) सप्तमेश की अन्तर्दशा (इ) व्यय भाव में स्थित ग्रह की दशा (ई) व्ययेश से दृष्ट ग्रह की अन्तर्दशा।

(२) सप्तमेश की महादशा में—
(अ) द्वितीयेश की अन्तर्दशा (आ) द्वितीय स्थान में स्थित पापग्रह की अन्तर्दशा (इ) व्ययेश से सम्बन्धित पापग्रह की अन्तर्दशा।

(३) द्वितीय भाव में स्थित पापग्रह की अन्तर्दशा में—
(अ) सप्तमेश की अन्तर्दशा (आ) द्वितीयेश की अन्तर्दशा (इ) व्ययेश से सम्बन्धी पापग्रह की अन्तर्दशा में।

(४) सप्तम भाव में स्थित पापग्रह की अन्तर्दशा में—
(अ) द्वितीयेश की अन्तर्दशा (आ) सप्तमेश की अन्तर्दशा (इ) द्वितीय भाव में स्थित पापग्रह की अन्तर्दशा (ई) व्यय भाव में स्थित पापग्रह की अन्तर्दशा।

(५) द्वितीयेश से युत पापग्रह की महादशा में—
(अ) द्वितीयेश की अन्तर्दशा (आ) द्वितीय स्थान में स्थित पापग्रह की अन्तर्दशा (इ) सप्तमेश की अन्तर्दशा।

(६) सप्तमेश से युक्त पापग्रह की महादशा में—
(अ) सप्तमेश की अन्तर्दशा (आ) सप्तम स्थान में स्थित पापग्रह की अन्तर्दशा

(इ) द्वितीयेश की अन्तर्दशा।

(७) अष्टमेश की महादशा में—

(अ) अष्टमेश से सम्बन्धी पापग्रह की अन्तर्दशा (आ) षष्ठ स्थान में स्थित पापग्रह की अन्तर्दशा (इ) षष्ठेश से युक्त पापग्रह की अन्तर्दशा।

(८) मारकेश से युक्त अष्टमेश की महादशा में—

(अ) द्वितीयेश की अन्तर्दशा (आ) सप्तमेश की अन्तर्दशा
(इ) षष्ठेश की अन्तर्दशा।

(९) मारकेश से युक्त शनि की महादशा में—

(अ) शनि से युक्त ग्रह की अन्तर्दशा (आ) शुक्र की अन्तर्दशा
(इ) किसी भी मारकेश की अन्तर्दशा।

(१०) षष्ठेश की महादशा में—

(अ) अष्टमेश की अन्तर्दशा (आ) अष्टम स्थान में स्थित ग्रह की अन्तर्दशा
(इ) सप्तमेश की अन्तर्दशा।

(११) व्ययेश की महादशा में—

(अ) द्वितीयेश की अन्तर्दशा (आ) द्वितीयेश के साथ स्थित ग्रह की अन्तर्दशा
(इ) सप्तमेश की अन्तर्दशा।

(१२) पापग्रहों की महादशा में—

(अ) उनके सम्बन्धी ग्रहों की अन्तर्दशा (अ) उनके सधर्मी ग्रहों की अन्तर्दशा
(इ) मारकेश ग्रहों की अन्तर्दशा।

मृत्युकाल निर्णय में कुछ महत्वपूर्ण बातें—

मृत्युकाल का निर्णय सामान्यतया उक्त मारकेश ग्रहों की अन्तर्दशा के अनुसार किया जाता है। किन्तु इस विषय में निम्नलिखित बातों का सदैव ध्यान रखना चाहिए—

(१) मारकग्रह अपने साथ सम्बन्ध होने पर शुभग्रह (त्रिकोणेश) की अन्तर्दशा में मृत्यु नहीं देता: अपितु वह अपने साथ सम्बन्ध न रखने वाले पापग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु देता है।[1]

(२) त्रिषडायाधीश शनि का किसी भी पूर्वोक्त मारक ग्रह से सम्बन्ध हो, तो पूर्वोक्त मारकग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु नहीं होती, अपितु शनि की महादशा में मृत्यु होती है।[2]

(३) अल्पायु योगवालों की विपत्ति (तृतीय) तारा में, मध्यायु योगवालों की प्रत्यरि (पाँचवीं) तारा में तथा दीर्घायु योगवालों की वध (सातवीं) तारा में मृत्यु होती है।[3]

१-३. बृहत्पाराशरहोराशास्त्र—अ० ४४ श्लो० ८,९,१५-१७।

(४) लग्न द्रेष्काण से २२ वें द्रेष्काण का स्वामी तथा विनाश नक्षत्र (जन्म नक्षत्र से २३ वां नक्षत्र) का स्वामी भी मृत्युदायक होता है।[१]

(५) मकर एवं बृश्चिक राशि वालों को राहु मारक होता है।[२]

(६) राहु या केतु लग्न, सप्तम, अष्टम या द्वादश स्थान में हो अथवा मारकेश से सातवें भाव में हो या मारकेश के साथ हो तो उसकी दशा अन्तर्दशा में मृत्यु होती है।[३]

(७) किसी भी मारक ग्रह की दशा में षष्ठेश, अष्टमेश एवं द्वादशेश की अन्तर्दशा में निश्चित रूप से मृत्यु हो जाती है।[४]

(८) अष्टमेश अष्टम स्थान में स्थित हो या उसे देखता हो तो उसकी दशा अन्तर्दशा में मृत्यु होती है।[५]

(९) शनि, लग्न द्रेष्काण से २२ वें द्रेष्काण का स्वामी, जिस राशि में गुलिक हो उसका स्वामी, इन तीनों के नवांशेश तथा राहु इन सब में जो ग्रह दुर्बल हो, यदि वह दुःस्थान में बैठा हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो उसकी दशा अन्तर्दशा में मृत्यु होती है।[६]

असाध्य रोग

जो रोग चिकित्सा एवं अन्य उपाय करने पर भी ठीक नहीं वे होते असाध्य रोग कहलाते हैं। ये रोग २ प्रकार के होते हैं—१—मृत्युदायक तथा २—आजीवन चलने वाले। जिस रोग से व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है उसे मृत्युदायक रोग कहते हैं। तथा जो रोग मनुष्य को जीवन भर कष्ट देता है, उसे आजीवन चलने वाला रोग कहते हैं।

ज्योतिषशास्त्र में अष्टम एवं तृतीय भाव को आयु का प्रतिनिधि भाव माना गया हैं।[५] अतः इन भावों में स्थित या इनको देखने वाले ग्रहों के अनुसार आयु को समाप्त करने वाले (मृत्युदायक) रोग का निर्णय किया जाता है। इसके अलावा जातक ग्रन्थों में मृत्युदायक रोगों के अनेक योगों का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

फलित ज्योतिष में कुण्डली के षष्ठ भाव को रोग कहते हैं। अतः इस भाव में स्थित ग्रह, इस भाव को देखने वाला ग्रह तथा इस भाव के स्वामी ग्रह से आजीवन चलने वाले रोगों का विचार होता है।

१-२. वृहत्पाराशर होराशास्त्र—अ॰ ४४ श्लो॰ ८, ९, १५-१७

३-४. वृहत्पाराशर होराशास्त्र—अ॰ ४४ श्लो॰ २०-२३ एवं १९।

५. प्रश्नमार्ग—अ॰ १० श्लो॰ ४।

६ देखिए (क) बृहत्पाराशरहोरा शास्त्र—अ॰ ४४ श्लो॰ २।

(ख) लघुपाराशरी—अ॰३ श्लो॰ १।

मृत्युदायक रोग

मृत्युदायक रोगों का विचार अष्टम स्थान में स्थित ग्रह, अष्टम स्थान को देखने वाले ग्रह, तृतीय भाव में स्थित ग्रह, अष्टम भाव की राशि, अष्टमेश ग्रह तथा मृत्युदायक योगों से किया जाता है। मृत्युदायक रोगों का विचार करने के लिए सर्वप्रथम व्यक्ति की कुण्डली में अष्टम भाव का गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। यदि उसकी कुण्डली में अष्टम स्थान में कोई ग्रह हो तो अष्टम स्थान को देखने वाले ग्रह से मृत्युदायक रोग विचार किया जाता है।

यदि कुण्डली में कोई ग्रह न हो तथा उस पर किसी ग्रह की दृष्टि न हो तो तृतीय भाव में स्थित ग्रह से मृत्युदायक रोग का निर्णय किया जाता है। यदि कदाचित् तृतीय भाव में भी कोई ग्रह न हो तो अष्टम भाव की राशि, या २२ वें द्रेष्काण से मृत्युदायक का विचार किया जाता है।

मृत्युदायक रोग का निर्णय करने की इस सामान्य रीति का अपवाद होता है मृत्युदायक रोग का योग। यदि किसी व्यक्ति की कुंडली में वक्ष्यमाण मृत्युदायक रोगों के योगों में से कोई भी एक योग हो तो उक्त रीति से विचार किये विना ही उस योग के आधार पर मृत्युदायक रोग का निर्णय कर लेना चाहिए।

अष्टम भाव में स्थित ग्रह के मृत्युदायक रोग

जन्मकुंडली में सूर्य हो तो दाह, तृष्णा एवं जलन से, चन्द्रमा हो तो जलोदर आदि रोग से, मंगल हो तो शस्त्रादि की चोट से, बुध हो तो ज्वर से, गुरु हो तो अज्ञात रोग से, शुक्र हो तो तृषा एवं प्रमेह से तथा शनि हो तो सूखा एवं कमजोरी से मृत्यु होती है।[1]

आचार्य मन्त्रेश्वर का मत है कि अष्टम स्थान में सूर्य आदि ग्रह हो तो निम्नलिखित रोगों से मृत्यु होती है—[2]

ग्रह	मृत्युदायक रोग
सूर्य	आग से जलना, उष्णज्वर, पित्तविकार।
चन्द्रमा	विषूचिका (हैजा), जलोदर (प्लूरिसी) एवं राजयक्ष्मा (टी०बी०)।
मंगल	जल जाना, रक्तविकार, रक्तपात, चोट एवं अभिचार जन्य रोग।
बुध	(पाण्डु-पीलिया), रक्त की कमी तथा भ्रांति।
गुरु	कफज रोग।
शुक्र	वीर्यरोग, मूत्रकृच्छ्र एवं गुप्त रोग।

१. देखिए—(क) बृहज्जातक—अ० २५ श्लो० १।
(ख) प्रश्नमार्ग—अ० ११ श्लो० १।

२. फलदीपिका—अ० १४ श्लो० १४-१५।

ग्रह	मृत्युदायक रोग
शनि	सन्निपात, लकवा एवं वायु रोग ।
राहु	कुष्ठ, विषरोग, सर्प एवं जहरीले जीव का काटना या चर्म रोग ।
केतु	आकस्मिक दुर्घटना, कृमिरोग, कीटदंश एवं किसी जानवर से चोट ।

(२) अष्टम स्थान को देखने वाले ग्रहों के मृत्युदायक रोग

यदि अष्टम स्थान में कोई ग्रह न हो तो जो ग्रह अष्टम स्थान को देखता हो उसकी धातु के विकार से या पूर्वोक्त दाह आदि रोगों से मृत्यु होती है ।[1]

हड्डी, रक्त, मज्जा, त्वचा, वसा (मांस), वीर्य एवं स्नायु[2] ये सूर्य आदि ग्रहों की धातुएँ होती हैं ।[3]

ग्रह	धातु	रोग
सूर्य	अस्थि	अस्थिज्वर, अस्थिस्राव, हड्डी में चोट
चन्द्रमा	रक्त	रक्तस्राव, रक्ताभाव, रक्तचाप एवं अन्य रक्तविकार ।
मंगल	मज्जा	व्रण, स्फोट, विसर्प, विद्रधि एवं मसूरिका ।
बुध	त्वचा	दाद, खाज, खुजली, गाँठ, फोड़ा एवं कुष्ठ ।
गुरु	वसा	सूखा स्थौल्य आदि ।
शुक्र	वीर्य	वीर्यविकार, प्रमेह, मधुमेह एवं गुप्तरोग ।
शनि	स्नायु	सन्निपात, पक्षाघात एवं स्नायुरोग ।

(३) तृतीयभाव में स्थित ग्रहों के मृत्युदायक रोग

यदि अष्टम स्थान में कोई ग्रह न हो तथा उक्त स्थान पर किसी ग्रह की दृष्टि भी न हो तो तृतीय स्थान में स्थित ग्रह के अनुसार मृत्यु के कारक का विचार करना चाहिए । तृतीय स्थान आयु का प्रतिनिधित्व करता है । अतः इस स्थान में स्थित

---

१. प्रश्नमार्ग—अ० ११ श्लो० २ ।

२. यद्यपि आयुर्वेद शास्त्र में वसा, त्वचा एवं स्नायु को धातु नहीं माना गया ; तथापि वसा का मांस में, त्वचा का रस में तथा स्नायु का मेदा मे अन्तर्भाव होने से कोई शास्त्रीय विरोध नहीं रहता ।

३. प्रश्नमार्ग—अ० ११ श्लो० ३ ।

ग्रह से आयु की समाप्ति या मृत्यु का विचार किया जाता है। इस स्थान में सूर्य आदि ग्रह हों तो निम्नलिखित रोगों के कारणों से मृत्यु होती है—[1]

ग्रह	मृत्युदायक रोग
सूर्य	राजकोप, राजदण्ड
चन्द्रमा	राजयक्ष्मा टी०बी०)
मंगल	शस्त्र की चोट, आग से जलना या घाव
बुध	ज्वर
गुरु	शोक आदि रोग
शुक्र	प्रमेह
शनि एवं राहु	विष, जल, अग्नि, गड्ढे में गिरना, ऊपर से गिरना या फाँसी।

(४) अष्टम स्थान की राशिवश मृत्युदायक रोग

यदि अष्टम एवं तृतीय स्थान किसी भी ग्रह से दृष्ट या युत न हो तो अष्टम स्थान की राशि के अनुसार मृत्युदायक रोग का निर्णय करना चाहिए। वराहमिहिर आदि आचार्यों का मत है कि अष्टम स्थान की राशि कालपुरुष के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करती हो मनुष्य के शरीर के उसी अंग में मृत्युदायक रोग पैदा करती है।[2] अष्टम स्थान में मेष आदि राशियाँ होने पर निम्नलिखित रोगों से मृत्यु होती है—

राशियाँ	मृत्युदायक रोग
मेष	शिरोरोग, मानसिकरोग।
वृष	नेत्र, कर्ण, नासिका, मुख एवं कण्ठ के रोग।
मिथुन	हस्तरोग, फेफड़े एवं श्वास नली के रोग
कर्क	हृदयरोग
सिंह	उदररोग
कन्या	नाभि एवं गुर्दे के रोग
तुला	वस्ति एवं मूत्राशय के रोग
वृश्चिक	गुप्तरोग एवं वृषण
धनु	गठिया
मकर	जानुरोग
कुम्भ	जंघाक्षति
मीन	श्लीपद एवं पोलियो

---

१. वृहत्पाराशर होराशास्त्र—अ० ४४ श्लो० २५-३१।

२. देखिए—(क) वृहज्जातक—अ० २५ श्लो० १।
(ख) प्रश्नमार्ग—अ० ११ श्लो० ५।

(५) २२वें द्रेष्काण वश मृत्युदायक रोग—

आचार्य ढुण्ढिराज का मत है कि यदि अष्टम आदि स्थान किसी ग्रह से युत या दृष्ट न हों तो लग्न से २२ वें द्रेष्काण के द्वारा मृत्यु के कारण या मृत्युदायक रोग का विचार करना चाहिए।[१] प्रत्येक राशि में १०-१० अंश के द्रेष्काण होते हैं। यदि वह २२ वें द्रेष्काण का मेष आदि राशियों का प्रथम आदि द्रेष्काण हो तो निम्नलिखित कारणों या रोगों से मृत्यु होती है—[२]

मेष आदि राशियों के द्रेष्काण	मृत्यु के कारण/रोग
मेष का प्रथम द्रेष्काण	प्लीहा, विष, पित्तरोग या सर्पदंश
मेष का द्वितीय द्रेष्काण	जल, कृमि, या जंगली जन्तु से।
मेष का तृतीय द्रेष्काण	कूएँ या तालाब में डूबने से।
वृष का प्रथम द्रेष्काण	गदहा, ऊँट या घोड़े से गिरने अथवा कुत्ते के काटने से।
वृष का द्वितीय द्रेष्काण	पित्तविकार, वायुविकार या अग्नि काण्ड से
वृष का तृतीय द्रेष्काण	उच्चस्थान, घोड़ा या वाहन से गिरकर।
मिथुन का प्रथम द्रेष्काण	वायुरोग, श्वास या खाँसी से।
मिथुन का द्वितीय द्रेष्काण	त्रिदोष, विष या सन्निपात से।
मिथुन का तृतीय द्रेष्काण	पर्वत, हाथी या चतुष्पद से गिरकर।
कर्क का प्रथम द्रेष्काण	विषपान, पानात्यय या गोह से।
कर्क का द्वितीय द्रेष्काण	आघात, विष या अतिसार से।
कर्क का तृतीय द्रेष्काण	श्वास, प्रमेह, रक्तविकार, गुल्म या मूर्च्छा से
सिंह का प्रथम द्रेष्काण	विष, जल या पैर के रोग से
सिंह का द्वितीय द्रेष्काण	श्वास या जल रोग से
सिंह का तृतीय द्रेष्काण	गुदारोग, विष, शाप या शस्त्र से
कन्या का प्रथम द्रेष्काण	शिरोरोग या वातविकार से
कन्या का द्वितीय द्रेष्काण	सर्प, पर्वत या राजकोप से
कन्या का तृतीय द्रेष्काण	गधा, ऊँट, अस्त्र, जल में डूबना या स्त्रीसे।
तुला का प्रथम द्रेष्काण	गिरने, पशु या स्त्री से।
तुला का द्वितीय द्रेष्काण	उदर रोग से
तुला का तृतीय द्रेष्काण	सर्प या जलजन्तु से
वृश्चिक का प्रथम द्रेष्काण	विष, अस्त्र या विषाक्त अन्न से

१. जातकाभरण—निर्याणाध्याय श्लो० ५।

२. देखिए—(क) सारावली—अ० ४७ श्लो० २२-४७।

(ख) जातकाभरण—निर्याणाध्याय श्लो० ७-२१।

मेष आदि राशियों के द्रेष्काण	मृत्यु के कारण/रोग
वृश्चिक का द्वितीय द्रेष्काण	मार, श्रम, कटि या वस्ति के रोग से
वृश्चिक का तृतीय द्रेष्काण	ईट या पत्थर की चोट या पैर की हड्डी टूटने से
धनु का प्रथम द्रेष्काण	गुदा रोग या वात रोग से
धनु का द्वितीय द्रेष्काण	विष, ताप या शर से
धनु का तृतीय द्रेष्काण	जल में डूबने, जलजन्तुओं के खाने या उदर रोग से।
मकर का प्रथम द्रेष्काण	सिंह, बाघ, सूअर या हिंसक जन्तु से
मकर का द्वितीय द्रेष्काण	पैरों में पीड़ा, विष या सर्प से
मकर का तृतीय द्रेष्काण	चोर, अग्नि, शस्त्र या ज्वर से
कुम्भ का प्रथम द्रेष्काण	स्त्री, पुत्र, जल या उदर रोग से
कुम्भ का द्वितीय द्रेष्काण	गुह्यरोग या पहाड़ से गिरने से
कुम्भ का तृतीय द्रेष्काण	मुखरोग, मैथुन रोग या पशुओं से
मीन का प्रथम द्रेष्काण	गुल्म, संग्रहणी, स्त्रीरोग, जंघा या उदर रोग से
मीन का द्वितीय द्रेष्काण	जलोदर या नौका डूबने से
मीन का तृतीय द्रेष्काण	घृणित रोगों से

मृत्युदायक रोगों के योग

मृत्यु के कारणों का भलीभांति विचार करने के लिए ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने मृत्युदायक रोगों का विस्तार पूर्वक विवेचन किया है। प्रायः सभी जातक-ग्रन्थों में इन योगों का उल्लेख मिलता है। इन योगों में से मृत्युदायक रोगों के कुछ प्रमुख योग इस प्रकार हैं:—

(१) जन्मकुंडली में-शनि कर्क में तथा चन्द्रमा मकर में हो तो जलोदर से मृत्यु होती है।[१]

(२) दो पापग्रहों के मध्य में स्थित चन्द्रमा कन्या राशि में हो तो रक्तविकार या शोष रोग से मृत्यु होती है।[२]

(३) द्वितीय स्थान में शनि, चतुर्थ में चन्द्रमा एवं दशम में मंगल हो तो शरीर में कीड़े पड़ने से मृत्यु होती है।[३]

(४) क्षीण चन्द्रमा पर बलवान् मंगल की दृष्टि हो तथा अष्टम भाव में शनि हो तो गुदा रोग, कृमिरोग या दाह से मृत्यु होती है।[४]

१-४. (क) वृहज्जातक—अ० २५ श्लो० ३,७ एवं ९।
(ख) सारावली—अ० ४७ श्लो० ४ एवं ४७।

(५) अष्टम भाव में स्थित क्षीण चन्द्रमा को शनि देखता हो तो गुदारोग, नेत्ररोग या शस्त्र के घाव से मृत्यु होती है।[1]

(६) लग्नेश, चतुर्थेश एवं गुरु एक साथ हो तो अजीर्ण से मृत्यु होती है।[2]

(७) सप्तमेश, चतुर्थेश एवं द्वितीयेश एक साथ हो तो अजीर्ण से मृत्यु होती है।[3]

(८) क्षीण चन्द्रमा अष्टम में हो तो अपस्मार (मिरगी) से मृत्यु होती है।[4]

(९) अष्टम स्थान में निर्बल सूर्य या मंगल हो तथा द्वितीय स्थान में पापग्रह हो तो पित्तरोग से मृत्यु होती है।[5]

(१०) अष्टमस्थान में जलचर राशि में चन्द्रमा या गुरु हो तो क्षयरोग से मृत्यु होती है।[6]

(११) अष्टम स्थान में शुक्र हो और उसे पापग्रह देखते हों तो वातरोग, क्षय या प्रमेह से मृत्यु होती है।[7]

(१२) सूर्य के स्थान में बुध हो और उसे पापग्रह देखते हों तो त्रिदोष या ज्वर से मृत्यु होती है।[8]

(१३) अष्टम स्थान में राहु हो और उसे पापग्रह देखता हो तो फोड़ा-फुंसी, गरमी या सर्पदंश से मृत्यु होती है।[9]

(१४) अष्टम स्थान में राहु हो तो चेचक या पित्तरोग से मृत्यु होती है।[10]

(१५) लग्नेश यदि मेष के नवांश में हो तो तापज्वर से, वृष के नवांश में हो तो श्वास एवं शूल से, मिथुन के नवांश में हो तो शिर पीड़ा से, कर्क के नवांश में हो तो वात एवं उन्माद से, सिंह के नवांश में हो तो स्फोट से, कन्या के नवांश में हो तो मन्दाग्नि या गुप्त रोग से, तुला के नवांश में हो तो ज्वर से, वृश्चिक के नवांश में हो तो घाव से, धनु के नवांश में हो तो वातरोग से, मकर के नवांश में हो तो शूल रोग से, कुम्भ के नवांश में हो तो हिंसक जीव के काटने से तथा मीन के नवांश में हो तो ज्वर या अतिसार से मृत्यु होती है।[11]

(१६) क्षीण चन्द्रमा, मंगल, शनि एवं सूर्य क्रमशः अष्टम, दशम, लग्न एवं चतुर्थ स्थान में हो तो अनेक रोगों से मृत्यु होती है।[11]

(१७) क्षीण चन्द्रमा, मंगल, शनि एवं सूर्य यदि दशम, नवम, लग्न एवं पंचम स्थान में हो तो अनेक रोगों से मृत्यु होती है।[12]

१-७. जातक पारिजात—अ० ५ श्लो० ७८, ८४, ८६-८६।

८-११. जातक पारिजात—अ० ५ श्लो० ९०-९२, ११४ एवं १५।

१२. जातकाभरण-निर्याणाध्याय श्लो० ८७।

(१८) अष्टमेश तृतीयेश के साथ लग्न में हो तो स्फोट से मृत्यु होती है ।[1]

(१६ अष्टमेश मंगल के साथ लग्न में हो तो स्फोट रोग से मृत्यु होती है ।[2]

(२०) चन्द्रमा अष्टमेश हो तथा राहु के साथ शनैश्चर हो तो अपस्मार (मिरगी) से मृत्यु होती है ।[3]

२१) लग्नेश, चतुर्थेश एवं द्वितीयेश एक साथ हों तो अजीर्ण से मृत्यु होती है ।[4]

(२२) षष्ठ भाव में स्थित मंगल पर सूर्य की दृष्टि हो तो कफ या अतिसार से मृत्यु होती है ।[5]

(२३) अष्टम स्थान में सूर्य एवं शनि हो तो विभूति रोग से मृत्यु होती है ।[6]

(२४) चतुर्थ भाव में शनि मंगल तथा दशम में शनि हो तो शूल रोग से मृत्यु होती है ।[7]

(२५) क्षीण चन्द्रमा के साथ पापग्रह नवम, पंचम या लग्न में हो तो शूल रोग से मृत्यु होती है ।[8]

(२६) चतुर्थ में रवि तथा दशम में मंगल हो और इनमें से किसी एक को क्षीण चन्द्रमा देखता हो तो शूल रोग से मृत्यु होती है ।[9]

दुर्घटनासे मृत्यु के योग

जिस व्यक्ति की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो वह किसी दुर्घटना का शिकार होकर मरता है—

(१) लग्न एवं चतुर्थ स्थानों में से एक में सूर्य तथा दूसरे में मंगल हो तो पत्थर की चोट से मृत्यु होती है ।[10]

(२) शनि, चन्द्रमा एवं मंगल क्रमशः चतुर्थ, सप्तम एवं दशम में हो तो कुएँ में गिरने से मृत्यु होती है ।[11]

।३) लग्न में द्विस्वभाव राशि में सूर्य एवं चन्द्रमा हो तो जल में डूबने से मृत्यु होती है ।[12]

(४ मकर या कुम्भ राशि में स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहों के बीच में हो तो फांसी से या जलने मृत्यु होती है ।[13]

(५) अष्टम, दशम, लग्न एवं चतुर्थ भाव में क्रमशः क्षीणचन्द्र, मंगल, शनि एवं सूर्य हो तो लाठी की चोट से मृत्यु होती है ।[14]

१-२. दैवज्ञाभरण प्र० १६ श्लो० ५६ ।

३-४. दैवज्ञाभरण—प्र० १६ श्लो ६१, ६६ ।

५-६. जातकतत्व—अष्टम विवेक सू० ५३, ५७, ७५-७९ :

१०-१२. वृहज्जातक—अ० २५ श्लो० ।

१३-१४. वृहज्जातक—अ० २५ श्लो० ३, ६, ८ एवं १० ।

(६) दशम, नवम, लग्न एवं पंचम में क्रमशः क्षीण चन्द्रमा, मंगल, शनि एवं सूर्य हो तो अग्नि या लकड़ी के प्रहार से मृत्यु होती है।[१]

(७) दशम में सूर्य तथा चतुर्थ में मंगल हो तो वाहन से गिरने से मृत्यु होती है।[२]

(८) सप्तम स्थान में मंगल तथा लग्न में सूर्य, चन्द्रमा एवं शनि हो तो मशीन से कुचलकर या कटकर मृत्यु होती है।[३]

(९) लग्न, पंचम, अष्टम एवं नवम में सूर्य, मंगल, शनि एवं क्षीण चन्द्रमा हो तो पर्वत के शिखर पर से गिरने, दीवाल गिरने या वज्रपात होने से मृत्यु होती है।[४]

(१०) दशम स्थान में सूर्य, चतुर्थ में मंगल तथा लग्न में बुध हो तो गाय बैल के सींघ से या शूली से मृत्यु होती है।[५]

(११) लग्न में सूर्य तथा सप्तम में चन्द्रमा हो और उन्हें पापग्रह देखते हों तो जल में डूबने से मृत्यु होती है।[६]

(१२) द्वितीय, चतुर्थ एवं दशम भाव में क्रमशः शनि, चन्द्रमा एवं मंगल हो तो चोट एवं घाव से मृत्यु होती है।[७]

(१३) दशम एवं चतुर्थ में पापग्रह, षष्ठस्थान में क्षीणचन्द्रमा हो तो यात्रा में शत्रु की घात से मृत्यु होती है।[८]

(१४) लग्न में शनि एवं मंगल तथा अष्टम में क्षीण चन्द्रमा हो तो शस्त्र की चोट से मृत्यु होती है।[९]

(१५) चतुर्थेश एवं केतु ६ ठे भाव में हो तो शस्त्र की चोट से मृत्यु होती है।[१०]

(१६) अष्टम स्थान में राहु के साथ शनि एवं मंगल हो तो शस्त्र से मृत्यु होती है।[११]

(१७) शुक्र की राशि में चन्द्रमा एवं शनि हो तो शस्त्र से मृत्यु होती है।[१२]

(१८) षष्ठ या अष्टम भाव में सूर्य एवं चन्द्रमा साथ साथ हों तो शेर से मृत्यु होती है।[१३]

(१९) चतुर्थ भाव में मंगल तथा दशम में शनि हो तो सिंह से मृत्यु होती है।[१४]

(२०) दशम स्थान में राहु एवं शुक्र हों तो सर्पदंश से मृत्यु होती है।[१५]

(२१) कारकांश लग्न में स्थित सूर्य पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो सर्पदंश से मृत्यु होती है।[१६]

१-४. बृहज्जातक—अ० २५ श्लो० ३,६,८ एवं १०।

५-८. जातक पारिजात—अ० ५ श्लो० ९९-१००,१०४ एवं १०८।

९-१२. जातकतत्व-अष्टम विवेक सू० ३७-४१।

१३-१६. तत्रैव-सू० ३१-३६, ४२,५४-५५,५८।

(२२) चतुर्थ में मंगल, अष्टम में शनि तथा दशम में रवि हो तो सर्पदंश से मृत्यु होती है।[1]

(२३) सूर्य, शनि एवं राहु सप्तम स्थान में हो तो सर्पदंश से मृत्यु होती है।[2]

(२४) सप्तम में रवि तथा दशम स्थान में गुरु एवं मंगल हो तो कुत्ते के काटने से मृत्यु होती है।[3]

(२५) शनि अष्टम भाव में हो तो गाड़ी या वाहन के टकराने या दुर्घटना ग्रस्त हो जाने से मृत्यु होती है।[4]

(२६) बुध एवं शनि दोनों अष्टम में हों तो फांसी से मृत्यु होती है।[5]

(२७) मंगल एवं शनि दोनों अष्टम स्थान में हों तो फांसी से मृत्यु होती है।[6]

(२८) धनेश एवं त्रिकेश दोनों राहु या केतु के साथ त्रिक स्थान में हों तो फांसी से मृत्यु होती है।[7]

(२९) मकर या कुम्भ राशि में लग्नेश के साथ सूर्य हो तो बिजली गिरने से मृत्यु होती है।[8]

(३०) शनि के साथ चतुर्थेश षष्ठ स्थान में हो तो वाहन से मृत्यु होती है।[9]

(३१) मंगल चतुर्थ में तथा सूर्य दशमस्थान में हो तो वाहन से मृत्यु होती है।[10]

(३२) लग्नेश, चतुर्थेश एवं अष्टमेश-एक साथ हों तो वाहन से मृत्यु होती है।[11]

(३३) राहु एवं चतुर्थेश षष्ठ स्थान में हो तो चोर या डाकू से मृत्यु होती है।[12]

(३४) लग्नेश एवं अष्टमेश दोनों राहु या केतु के साथ षष्ठ में हों तो चोर या डाकू से मृत्यु होती है।[13]

(३५) अष्टम स्थान में स्थित शुभ ग्रह पर पापग्रह या उसके शत्रु की दृष्टि हो तो युद्ध या फौजदारी में मृत्यु होती है।[14]

(३६) निद्रा या शयनावस्था में पापग्रह अष्टम भाव में हो तो शत्रु से मृत्यु होती है।[15]

(३७) लग्न पर सूर्य एवं मंगल की दृष्टि हो तथा गुरु या शुक्र की दृष्टि न हो तो सांड़ से मृत्यु होती है।[16]

(३८) लग्न में स्थित सूर्य एवं शनि पर राहु की दृष्टि हो तो वृक्ष के गिरने से मृत्यु होती है।[17]

(३९) नवम स्थान में स्थित पापग्रह पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो बाण से मृत्यु होती है।[18]

१-६. जातकतत्व—सू० ३१-३६,४२,४५-५५,५८।

७-१२. तत्रैव— अष्टम विवेक सू० ५९-६३ एवं ६५।

१३-१८. तत्रैव—सू० ६६, ८९-९१, ९३-९४।

(४०) तृतीयेश लग्नेश के साथ अष्टम स्थान में हो तो अग्निकाण्ड में मृत्यु होती है।[१]

(४१) शनि की राशि में लग्नेश हो तथा वह मंगल एवं केतु से युत-दृष्ट हो तो आग में जलने से मृत्यु होती है।[२]

(४२) अष्टमेश के साथ शनि हो उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तथा चन्द्रमा निर्बल हो तो जल में डूबने से मृत्यु होती है।[३]

(४३) लग्न के दोनों ओर चन्द्रमा एवं शनि हो तो जल में डूबने से मृत्यु होती है।[४]

रोगारम्भ काल से रोग के साध्यासाध्यत्व का विचार

यदि रोगारम्भ काल में निम्नलिखित ग्रहयोगों में से कोई एक हो तो रोगी की मृत्यु हो जाती है अथवा रोग दीर्घकाल तक चलता है और वह असाध्य होता है—

(१) जन्मकुण्डली में अष्टमेश, गुलिक, शनि, २२ वां द्रेष्काण या उसके स्वामी जिस राशि में हों उस राशि में गोचरीय चारवश शनि गया हुआ हो।[५]

(२) जन्म लग्न के द्रेष्काण का स्वामी, अष्टमेश या २२ वें द्रेष्काण का स्वामी जिस राशि में हो उस राशि में गोचरीय क्रम से गुरु चल रहा हो।[६]

(३) जन्मकुण्डली में सूर्य के द्वादशांश की राशि, अष्टमेश के नवांश की राशि या लग्नेश के नवांश की राशि में रोगारम्भ के समय गुरु एव सूर्य हों।[७]

(४) जन्मकाल में जो अष्टमेश या सूर्य की राशि हो, रोगारम्भ के समय उस राशि में चन्द्रमा हो।[८]

(५) रोगारम्भ के समय चन्द्रमा उस राशि में हो जिसमें लग्न से २२ वां द्रेष्काण हो।[९]

(६) रोगारम्भ के समय चन्द्रमा प्रश्न लग्न से अष्टम स्थान में हो।[१०]

(७) रोगारम्भ के समय प्रश्न लग्न में पृष्ठोदय राशि हो तथा पापग्रह केन्द्र या अष्टम में हो।[११]

(८) रोगी की राशि से त्रिकोण में गुलिक हो।[१२]

(९) रोगी की जन्मराशि या जन्मलग्न से अष्टम में गुलिक हो।[१३]

(१०) रोगी के नक्षत्रेश की राशि में गुलिक हो।[१४]

(११) रोगी का नक्षत्रेश अष्टम स्थान में हो।[१५]

(१२) रोगी का जन्म नक्षत्रेश, प्रश्न नक्षत्रेश या गुलिक नक्षत्रेश उसकी राशि से अष्टम में हो।[१६]

१-४ दैवज्ञाभरण – प्र० १६ श्लो० ५७-५८, ६० एवं ६७।

५-९. फलदीपिका—अ० १७ श्लो० २-५ एवं १९।

१०-१२. प्रश्न मार्ग—अ० ९ श्लो० २५।

१३-१६. तत्रैव श्लो० १३।

उक्त योगों के अलावा रोगारम्भ के समय यदि निम्नलिखित में से कोई एक दोष हो तो उस समय होने वाला रोग असाध्य होता है, तथा चिकित्सा एवं अन्य उपाय करने पर भी वह ठीक नहीं होता। ये दोष इस प्रकार हैं :—

(१) रोगारम्भ कालीन लग्न एवं चन्द्रमा का निर्बल होना।

(२) तात्कालिक लग्न एवं चन्द्रमा पर पापग्रहों की दृष्टि।

(३) तात्कालिक लग्न एवं चन्द्रमा की पापग्रहों से युति।

(४) जन्मलग्नेश एवं राशीश का अस्त होना या पापाक्रान्त होना।

(५) जन्मलग्नेश एवं राशीश का निर्बल होना या त्रिक स्थान में होना।

(६) रोगारम्भ के समय अपशकुन एवं अशुभ निमित्तों का होना।

(७) तात्कालिक लग्न एवं चन्द्रमा का मृत्युसंज्ञक अंशों में होना।

(८) तात्कालिक चन्द्रमा का पापग्रहों के साथ केन्द्र या अष्टम स्थान में मृत्युसंज्ञक अंशों में होना।

(९) तात्कालिक लग्नेश से दृष्ट चन्द्रमा का षष्ठ या अष्टम स्थान में होना।

(१०) तात्कालिक लग्न में चरराशि हो तथा उस पर वक्री एवं पापग्रह की दृष्टि हो।

(११) शुभग्रह षष्ठ एवं अष्टम में तथा पापग्रह लग्न एवं सप्तम में हो।

(१२) केन्द्र, त्रिकोण तथा अष्टम स्थान में पापग्रह हो।

साध्य रोग

जो रोग चिकित्सा या अन्य उपाय करने पर ठीक हो जाते हैं, साध्य कहलाते हैं। यदि रोगारम्भ के साथ रोगी की आयु समाप्त न होती हो तथा रोगी की कुण्डली में पूर्वोक्त असाध्य रोगों का कोई योग न हो तो रोग साध्य होता है।

जातकशास्त्र के आचार्यों ने कुछ ऐसे योगों को भी बतलाया है, जिनमें उत्पन्न व्यक्ति का स्वास्थ्य प्रायः आजीवन ठीक रहता है, तथा उसे होने वाले रोग चिकित्सा आदि से ठीक हो जाते हैं। ये योग इस प्रकार हैं—

(१) शुभग्रह के साथ लग्नेश लग्न में स्थित हो।[1]

(२) शुभग्रह के साथ लग्नेश केन्द्र में स्थित हो।[2]

(३) लग्नेश केन्द्र या त्रिकोण स्थान में अपनी उच्चराशि या मित्र राशि में हो।[3]

(४) शुभग्रह से युत या दृष्ट लग्नेश स्वनवांश में हो।[4]

---

१. जातकालंकार—अ० २ श्लो २।

२-३. (क) जातकालंकार—अ० २ श्लो २।

(ख) भावप्रकाश—अ० ३ श्लो० २।

४. जातकतत्व-प्रकीर्णतत्व सू० ९।

(५) लग्नेश केन्द्र, त्रिकोण या उच्च राशि में हो तथा लग्न पर किसी शुभग्रह की दृष्टि हो।[1]

(६) लग्नेश किसी शुभग्रह के साथ केन्द्र, त्रिकोण या अपनी उच्च राशि में हो।[2]

(७ लग्नेश अपनी उच्चराशि; मित्रराशि या स्वराशि में हो, वह बलवान् हो तथा उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो।[3]

(८) केन्द्र एवं त्रिकोणस्थानों में शुभग्रह हों।[4]

(९) लग्नेश चर राशि में हो तथा उस पर शुभग्रहों की दृष्टि हो।[5]

(१०) बलवान् लग्नेश केन्द्र में हो, उस पर केन्द्रगत शुभग्रहों की दृष्टि हो तथा पापग्रह न देखते हों।[6]

रोगी की मृत्यु होगी या नहीं

रोगी की मृत्यु होगी या नहीं ? फलित शास्त्र के ग्रन्थों में इस प्रकार का शास्त्रीय रीति से विचार किया गया है। रोगोउत्पन्न होने के समय जो तिथि, नक्षत्र वार एवं ग्रहस्थिति होती है, उसके द्वारा रोगी के जीवन-मृत्यु का विचार किया जाता है। कुछ आचार्यों का मत है कि इस बारे में जब भी प्रश्न किया जाय, उस समय की प्रश्नकुण्डली बनाकर वक्ष्यमाण योगों के अनुसार रोगी के जीवन-मरण का निश्चय कर लेना चाहिये—

(१) रोगी की मृत्यु के योग

१—आश्लेषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा, शतभिषा, भरणी, तीनोंपूर्वा, विशाखा, धनिष्ठा एवं कृत्तिका इन ११ नक्षत्रों में सूर्य,मंगल या शनिवार में, चतुर्थी, षष्ठी, नवमी, द्वादशी या चतुर्दशी तिथि में रोग उत्पन्न हो तो रोगी की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।[7]

२—ज्येष्ठा, स्वाति, आश्लेषा, आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी,, पूर्वाषाढ़ एव पूर्वा-भाद्रपद-इन सात नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र में उत्पन्न रोग मृत्युदायक होता है।[8]

३—छिद्म तिथियों[9] में पापग्रहों (सूर्य, मंगल एवं शनि) के वारों में; कृत्तिका, धनिष्ठा, भरणी एवं शतभिषा नक्षत्र में उत्पन्न रोग मृत्युदायक होता है।[10]

४—अष्टमी, पर्व (अमावस्या एवं पूर्णिमा) या रिक्ता तिथि में, पापग्रह के वार में तथा त्रिजन्मनक्षत्र,[11] विपत् प्रत्यरि या वध नक्षत्र में चन्द्रमा होने पर उत्पन्न रोग मृत्यु-दायक होता है।[12]

१-३. दैवज्ञाभरण, —प्रकाश९ श्लो० ५१-५२।
४-५. वृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्—अ० १२ श्लो० २ एवं ६।
६. जातकपारिजात—अ० ११ श्लो० ४८।
७. मूहूर्त चिन्तामणि—प्र० २ श्लो० ४७।
८-९. प्रश्न मार्ग—अ० १३ श्लो १७।
१०. रिक्ता, षष्ठी, अष्टमी एवं द्वादशी तिथि को छिद्म तिथि कहते हैं।
११. जन्म, आधान एवं अनुजजन्म-इन तीन नक्षत्रों को त्रिजन्मनक्षत्र कहते हैं।
१२. प्रश्न मार्ग—अ० १३ श्लो० १८

५—सूर्य एवं आरूढ़राशि के नक्षत्र से ६ वें, १२ वें या २१ वें नक्षत्र में रोग की शुरुआत हो तो रोगी मर जाता है।[1]

६—सूर्य के पार्श्ववर्ती, आरूढ़ के पार्श्ववर्ती तथा इन दोनों से ६ वें, १५ वें एवं २१ वें नक्षत्र-इस प्रकार इन १० नक्षत्रों में से किसी एक में रोग पैदा हो, तो रोगी की मृत्यु होती है।[2]

७—जन्मनक्षत्र से रोगारम्भ के नक्षत्र तक गणना कर उस संख्या को ३ से गुणा कर ४ का भाग देना चाहिए। यदि १ शेष बचे तो रोगी की शीघ्र मृत्यु होती है, २ शेष बचे तो धीरे-धीरे बढ़ने से मृत्यु होती है, ३ शेष बचे तो कष्ट से जीवन बचता है और यदि शून्य शेष बचे तो चिकित्सा का प्रयास न करने पर भी रोगी ठीक हो जाता है।[3]

८—प्रश्नकुण्डली में अष्टम स्थान में चन्द्रमा हो तथा लग्न में सर्पवेष्टित, गृध्र; सूकर; आदि द्रेष्काण हों—उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो रोगी मर जाता है।[4]

९—प्रश्न लग्न में पृष्ठोदय राशि हो, केन्द्र स्थानों में पापग्रह हों तथा चन्द्रमा अष्टम में हो तो रोगी मर जाता है।[5]

१०—प्रश्न कुण्डली में द्वितीय, सप्तम एवं द्वादश स्थान में पापग्रह हो तथा लग्न, षष्ठ या अष्टम में चन्द्रमा हो तो रोगी शीघ्र मर जाता है।[6]

११—प्रश्नकाल में चन्द्रमा के दोनों ओर पापग्रह हों तो रोगी मर जाता है।[7]

१२—प्रश्नलग्न में सूर्य तथा सप्तम में चन्द्रमा हो तो रोगी मर जाता है।[8]

१३—प्रश्न कुण्डली में चन्द्रमा एवं लग्नेश अष्टम स्थान में हो तो रोगी मर जाता है।[9]

१४—प्रश्नकाल में लग्नेश एवं अष्टमेश का इत्थशाल हो तो रोगी मर जाता है।[10]

१५—प्रश्नकुण्डली में लग्नेश एवं अष्टमेश ८ वें एवं ११ वें स्थान में हो तथा उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो रोगी मर जाता है।[11]

१-२. प्रश्नमार्ग—श्लो० २०।

३. तत्रैव—अ० १३ श्लो० २२।

४-५. कृष्णीयम्-कृष्णाचार्य, ओरियन्टियल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, केरल विश्वविद्यालय १९७६-अध्याय १३ श्लो० १-२।

६-९. भुवनदीपक-विज्ञानभाष्य, सम्पा० शुकदेव चतुर्वेदी, रंजन पब्लिकेशंस दिल्ली, १९७६ श्लो० ११५-१६।

१०. प्रश्नशिरोमणि-रुद्रमणि, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई १९६२ पृ० ७१ श्लो० ७।

११. तत्रैव—पृ० ७१-७२ श्लो० ८।

१६—प्रश्न के समय लग्नेश एवं चन्द्रमा केन्द्र में या अष्टम में स्थित पापग्रहों से इत्थशाल करते हों या अस्तंगत होकर पापग्रहों से दृष्ट हों तो रोगी मर जाता है।[1]

१७—प्रश्नकुण्डली में चन्द्रमा लग्न में, शनि १२ वें, सूर्य ८ वें तथा मंगल १० वें स्थान में हो तो रोगी मर जाता है।[2]

१८—प्रश्न के समय केन्द्र में पापग्रह तथा अष्टम में पृष्ठोदय राशि में चन्द्रमा हो तो रोगी मर जाता है।[3]

१९—प्रश्नकाल में लग्न, सप्तम एवं अष्टम स्थान में पापग्रह हो तथा शुभग्रह निर्बल हो तो रोगी मर जाता है।[4]

२०—प्रश्नकुण्डली में चन्द्रमा चतुर्थ या अष्टम स्थान में दो पापग्रहों के मध्य में हो तो रोगी मर जाता है।[5]

(२) रोगी की मृत्यु कितने दिन में होगी ?

उक्त रीति से रोगी की मृत्यु का निश्चय करने के बाद, उसकी मृत्यु कितने दिन में होगी ?—इस प्रकार का विचार करना चाहिए। प्रश्नशास्त्र में रोगी की मृत्यु के दिनों का ज्ञान निम्नलिखित योगों[6] के द्वारा किया जाता है—

१—लग्न से अष्टम और दशम में पापग्रह हों तो रोगी ३ दिन में मर जाता है।

२—गुरु एवं शुक्र तृतीय स्थान में हो तथा दशम भाव में पापग्रह हो तो रोगी ७ दिन में मर जाता है।

३—लग्न, चतुर्थ एवं अष्टम स्थान में पापग्रह हो तो रोगी ८ दिन में मर जाता है।

४—तृतीयस्थान में सूर्य एवं दशम स्थान में पापग्रह हो तो रोगी १० दिन में मर जाता है।

५—चतुर्थ और दशम स्थान में पापग्रह हो तो रोगी १० दिन में मर जाता है।

६—लग्न एवं द्वितीय स्थान में पापग्रह हो तो रोगी १४ दिन में मर जाता है।

(३) रोगी के जीवित एवं स्वस्थ रहने के योग

प्रश्नकुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो तो रोगी जीवित रहता है तथा वह शीघ्र स्वस्थ हो जाता है—

१-५. प्रश्नशिरोमणि—पृ० ७१-७२, श्लो० ९-१३।

६. भुवनदीपक-विज्ञानभाष्य—पृ० २२५।

१—प्रश्नलग्न से उपचय स्थान में चन्द्रमा हो तथा केन्द्र, त्रिकोण, द्वितीय एवं अष्टम में शुभग्रह हो।[1]

२—पूर्णचन्द्रमा लग्न में हो तथा उस पर गुरु की दृष्टि हो।[2]

३—प्रश्नलग्न से केन्द्र में गुरु एवं शुक्र दोनों हों।[3]

४—केन्द्र एवं त्रिकोण में शुभग्रह हो, शुभग्रह लग्न को देखते हों तथा चन्द्रमा केन्द्र, तृतीय या लाभ स्थान में हो।[4]

५—लग्न में बुध एवं पूर्णचन्द्रमा, केन्द्र में गुरु एवं शुक्र तथा षष्ठ एवं एकादश स्थान में पापग्रह हों।[5]

६—लग्नेश बलवान् हो तथा शुभग्रह उच्च या मूलत्रिकोण-राशि में केन्द्र में हो।[6]

७—एक भी शुभग्रह बलवान् होकर लग्न में बैठा हो तथा चन्द्रमा को देखता हो।[7]

८—शुभग्रह ३,६,६ एवं ११ वें स्थान में हों।[8]

६—लग्न एवं चन्द्रमा-इन दोनों पर शुभग्रहों की दृष्टि हो।[9]

१०—प्रश्नकुण्डली में १,५,७ एवं ८ वें स्थान में शुभग्रह हों तथा बलवान् चन्द्रमा उपचय स्थान में हो।[10]

११—लग्नेश एवं चन्द्रमा का शुभग्रह से इत्थशाल हो।[11]

रोगी कब ठीक होगा ?

रोगी की मृत्यु का योग न होने पर प्रश्नकालीन तथा गोचरीय ग्रहस्थिति द्वारा रोग के ठीक होने का समय जाना जाता है। निम्नलिखित योगों द्वारा रोग के होने के समय का ज्ञान किया जाता है—

१—गोचरीय क्रम से जब लग्न, लग्नेश एवं चन्द्रमा शुभग्रहों से युत एवं दृष्ट हों तब रोग ठीक हो जाता है।[12]

२—प्रश्नलग्न में वर्तमान नवांशेश के द्वादशांश की राशि में चन्द्रमा के जाने पर रोग ठीक हो जाता है।[13]

१-३. प्रश्नज्ञान-भट्टोत्पल, वी. सुब्रह्मण्य शास्त्री, बैंगलोर, १६७१ श्लो० २७-८।

४-५. प्रश्न शिरोमणि—पृ० ७२ श्लो० १५।

६-७. भुवन दीपक-विज्ञान भाष्य पृ० १२६।

८-६. भुवन दीपक-विज्ञान भाष्य पृ० १२६।

१०. मूकप्रश्न विचार-शुकदेव चतुर्वेदी, रंजन पब्लिकेशंस, दिल्ली, १६७७ पृ० १५५।

११. ताजिक नीलकण्ठी-नीलकण्ठाचार्य, चौखंबा सीरिज, वाराणसी, १६६०, प्रश्नतन्त्र-श्लो० ४७।

१२-१३. प्रश्नमार्ग—अ० १३ श्लो ११-१२ एवं १७।

३—जब गोचरीय चन्द्रमा गुलिक की राशि का अतिक्रमण कर लेता है, तब रोग ठीक होता है।[1]

४—अष्टम राशि का चन्द्रमा द्वारा अतिक्रमण हो जाने पर रोग ठीक हो जाता है।[2]

रोग के ठीक होने का योग होने पर तथा मृत्यु योग न होने पर रोगारम्भ के नक्षत्र द्वारा रोग का समाप्ति काल जाना जाता है,[3] यथा-

रोगारम्भ का नक्षत्र	समाप्ति काल
उत्तराषाढ़, मृगशीर्ष	१ मास
धनिष्ठा, हस्त एवं मूल	१५ दिन
चित्रा, रोहिणी, भरणी एवं श्रवण	११ दिन
मघा	२० दिन
पुष्य, ज्येष्ठा, उ० भा० एवं पू० फा०	७ दिन
मूल, अश्विनी एवं कृत्तिका	६ दिन

रोगनिवृत्ति के उपाय

जिस प्रकार सभी प्रकार के कार्यों की सहायता सामग्री दृष्ट एवं अदृष्ट[4] दोनों प्रकार की होती है। उसी प्रकार दृष्ट एवं अदृष्ट निमित्त-जन्य रोगों की निवृत्ति के उपाय भी दृष्ट एवं अदृष्ट भेद से दो प्रकार के होते हैं। दृष्ट उपायों को ग्रह-चिकित्सा तथा अदृष्ट उपायों को प्रायश्चित्त कहते हैं।

ग्रहचिकित्सा-विचार

ग्रहों के अशुभ-प्रभाव से छुटकारा पाने की वह रीति, जिसमें मुख्यतया मणि, मन्त्र, ओषधि, दान एवं स्नान का उपयोग किया जाता है, ग्रह-चिकित्सा कहलाती है। फलित-ज्योतिष के ग्रन्थों में तो ग्रहचिकित्सा पर पर्याप्त प्रकाश डाला ही गया है। साथ ही ग्रह चिकित्सा के प्रमुख उपकरणों का सर्वाङ्गीण तथा शास्त्रीय विवेचन करने के लिए भारतीय वाङ्मय में स्वतन्त्र शास्त्रों का भी प्रणयन हुआ है। रत्नविज्ञान, मन्त्रशास्त्र आयुर्वेद एवं धर्मशास्त्र ऐसे शास्त्र हैं जिनमें यथाक्रम से मणि, मन्त्र, औषधि, दान एवं स्नान के समस्त शास्त्रीय पहलुओं का विस्तार से विवेचन किया गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में केवल ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से रोगों का विचार किया जा रहा है। अतः यहाँ हम ग्रह चिकित्सा के उक्त उपकरणों का मन्त्र शास्त्र, आयुर्वेद या धर्मशास्त्र की दृष्टि से विस्तारपूर्वक विचार न करते हुए मात्र ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से ही विचार करेंगे।

१-३. प्रश्नमार्ग—अ० १३ श्लो० ११-१३ एवं १७।

४. बन्धु, मित्र एवं सहयोगियों की सहायता तथा स्वयं का शारीरिक एवं बौद्धिक प्रयास दृष्ट-सामग्री कहलाता है। और वरदान, आशीर्वाद, दैवीकृपा, भाग्य एवं तान्त्रिक प्रयोगों का प्रभाव आदि अदृष्ट सामग्री कहलाता है।

(१) रोगनिवृत्ति के लिए मणि (रत्न) धारण

ग्रहों के अनिष्ट प्रभाव को दूर करने के लिए हमारे देश में रत्न धारण की परिपाटी सुदूर प्राचीन काल से प्रचलित है। आचार्य वराहमिहिर ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ-बृहत्संहिता में रत्नों तथा उनके गुण-दोषों का विस्तार से विचार किया है।

रत्न धारण के पीछे विज्ञान का रहस्य छिपा है। प्रायः सभी लोग इस बात से परिचित हैं कि सौरमण्डलीय वातावरण तथा ग्रहरश्मियों का प्रभाव पाषाणों के रंग-रूप आकार-प्रकार एवं उनके गुण-धर्मों को निरन्तर प्रभावित करता रहता है। अतः समानगुण वाली रश्मियों के ग्रहों से पुष्ट एवं संचालित व्यक्ति को यदि वैसी ही रश्मियों के प्रभाव से उत्पन्न रत्न धारण कराया जाय, तो वह उचित परिणाम देगा। और यदि प्रतिकूल प्रभाव के मानव को विपरीत प्रभावशाली रश्मियों में उत्पन्न रत्न धारण करा दिया जाय, तो वह उसके लिए हानिकारक परिणाम देगा।

रत्नों के धारण करने के भी कुछ सिद्धान्त हैं, जिनका विवेचन, रत्नविज्ञान में किया गया है। रत्नों का प्रयोग करते समय इन सिद्धान्तों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। इनमें सबसे बड़ा या सदैव ध्यान रखने योग्य सिद्धान्त यह है—कि जिस ग्रह से सम्बन्धित रत्न धारण किया जावेगा, वह ग्रह उस व्यक्ति की जन्मकुण्डली से इस धारणक्रिया द्वारा बल प्राप्त कर लेगा। क्योंकि उस ग्रह से सम्बन्धित जो रश्मियाँ उस रत्न में हैं, धारण करने वाले व्यक्ति के शरीर में प्रविष्ट हो जायेंगी। अतः रत्न धारण करते समय ग्रहों के अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभाव का भलीभांति विचार करके ही रत्न धारण करना चाहिए।

रोगों से बचने के लिए किस ग्रह का या कौन सा रत्न धारण करना चाहिए—यह एक अहं प्रश्न है। मेरे विचार से लग्नेश का रत्न व्यक्ति को रोगों से छुटकारा दिलाने में सर्वाधिक उपयोगी है। कारण यह है कि जिस व्यक्ति में प्रतिरोध क्षमता (रेजिस्टेन्स पावर) अधिक होती है, उस व्यक्ति को रोग न्यूनतम हानि पहुँचाता है। तथा उसका स्वास्थ्य प्रायः अच्छा रहता है। प्रतिरोध क्षमता एवं स्वास्थ्य एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। तथा इनका प्रतिनिधित्व कुण्डली का प्रथम भाव या लग्न करता है। अतः रोगों के आक्रमण से अपना बचाव करने के लिए मनुष्य को अपने लग्नेश का रत्न पहनना चाहिए।

माणिक्य, मोती, मूँगा, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम, गोमेद एवं वैदूर्य ये सूर्य आदि ९ ग्रहों के रत्न माने गये हैं।[1] मेषादि लग्न में उत्पन्न व्यक्तियों को रोगनिवृत्ति के अपने लग्नेश से सम्बन्धित धारणीय रत्न इस प्रकार हैं—

---

१. जातकपारिजात—अ० २ श्लो० २१।

जन्मलग्न	लग्नेश	धारणीय रत्न
मेष	मंगल	मूंगा
वृष	शुक्र	हीरा
मिथुन	बुध	पन्ना
कर्क	चन्द्रमा	मोती
सिंह	सूर्य	माणिक्य
कन्या	बुध	पन्ना
तुला	शुक्र	हीरा
वृश्चिक	मंगल	मूंगा
धनु	गुरु	पुखराज
मकर	शनि	नीलम
कुम्भ	शनि	नीलम
मीन	गुरु	पुखराज

कुछ आचार्यों का यह मत है कि वर्तमान समय में जिस ग्रह की दशा अन्तर्दशा चल रही हो, या जो ग्रह अनिष्टकारक हो उसका रत्न धारण करना चाहिए। ऐसा करने से ग्रह का अनिष्ट प्रभाव दूर हो जाता है। अथवा ग्रहों के अनिष्ट प्रभाव से छुटकारा पाने के लिये माणिक्य आदि ९ रत्नों की अंगूठी पहिननी चाहिए।[1] इस मत के समर्थन में भी 'विष विष को समाप्त करता है' या 'कांटे से ही कांटा निकाला जाता है' जैसे तर्क दिये जा सकते हैं। किन्तु इस मत की अभी उतनी विज्ञान सम्मत व्याख्या नहीं हो पायी, जैसी कि पूर्वोक्त समरश्मि वाले रत्न को धारण करने के सिद्धान्त की जा सकती है।

(२) रोग की निवृत्ति के लिए मन्त्रानुष्ठान

'आकृष्णेन रजसा०', 'इमं देवा०', 'अग्निर्मूर्धा दिवः'०, 'उद्बुध्य स्वाग्ने०', 'बृहस्पतेऽति यदर्यो०', 'अन्नात्परिस्रुतो०', 'शन्नो देवीरभिष्टय०', 'कयानश्चित्र०' एवं 'केतुं कृण्वन्नकेतवे०' इत्यादि प्रसिद्ध वैदिक मन्त्र सूर्य आदि ९ ग्रहों के मन्त्र माने गये हैं।[2] जिस व्यक्ति की कुण्डली में जो ग्रह रोगकारक हो; तथा जब जब जिस रोग कारक ग्रह की दशा अन्तर्दशा आती हो तब तब उस ग्रह के वैदिक मन्त्र का अनुष्ठान करना चाहिए।

उक्त वैदिक मन्त्रों के अलावा सूर्य आदि नवग्रहों के अनेक तान्त्रिक मन्त्र भी बतलाये गये हैं, जिसमें से प्रमुख मन्त्र इस प्रकार हैं—[3]

---

१. मुहूर्तचिन्तामणि—गोचरप्रकरण श्लो० ९-१०।

२. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्—अ० ८५ श्लो० १७-१८।

३. विस्तृत जानकारी के लिए देखिए— मन्त्र महोदधिः, तरंग १५ सं० शुकदेव चतुर्वेदी प्राच्यप्रकाशन वाराणसी, १९८०

ग्रह	तान्त्रिक मन्त्र
सूर्य	ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः, ॐ घृणि सूर्याय नमः ।
चन्द्रमा	ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्रमसे नमः, ॐ चं चन्द्रमसे नमः ।
मंगल	ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः, ॐ अं अंगारकाय नमः ।
बुध	ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः, बुं बुधाय नमः ।
गुरु	ॐ ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरवे नमः, ॐ गुं गुरवे नमः ।
शुक्र	ॐ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः, ॐ शुं शुक्राय नमः ।
शनि	ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनये नमः, ॐ शं शनैश्चराय नमः ।
राहु	ॐ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः, ॐ रां राहवे नमः ।
केतु	ॐ स्रां स्रीं स्रौं सः केतवे नमः, ॐ कें केतवे नमः ।

सूर्य आदि ग्रहों के मन्त्रानुष्ठान में सूर्य के मन्त्र का ७ हजार, चन्द्रमा के मन्त्र का ११ हजार, मगल के मन्त्र का १० हजार, बुध के मन्त्र का ९ हजार, गुरु के मन्त्र का १९ हजार, शुक्र के मन्त्र का १६ हजार, शनि के मन्त्र का २३ हजार, राहु के मन्त्र का १८ हजार तथा केतु के मन्त्र का १७ हजार जप किया जाता है।[1] कलियुग (वर्तमान समय) में ग्रहों की उक्त जप संख्या के चारगुना कर जप किया जाता है। प्रतिदिन ग्रहों का विधिवत् ध्यान एवं पूजन करते हुए एकाग्र मन से निर्धारित संख्या में जप करके उसके दशांश का हवन, हवन के दशांश का तर्पण, उसके दशांश का मार्जन (अभिषेक) एवं उसके दशांश तुल्य ब्राह्मणों को भोजन कराना मन्त्रानुष्ठान कहलाता है।

ग्रहों के मन्त्रानुष्ठान में जप आदि की संख्या

ग्रह	जपसंख्या	हवनसंख्या	तर्पणसंख्या	मार्जनसंख्या	ब्राह्मणभोजनसंख्या
सूर्य	२८,०००	२,८००	२८०	२८	३
चन्द्रमा	४४,०००	४,४००	४४०	४४	५
मंगल	४०,०००	४,०००	४००	४०	४
बुध	३६,०००	३,६००	३६०	३६	४
गुरु	७६,०००	७,६००	७६०	७६	८
शुक्र	६४,०००	६,४००	६४०	६४	७
शनि	९२,०००	९,२००	९२०	९२	१०
राहु	७२,०००	७,२००	७२०	७२	८
केतु	६८,०००	६,८००	६८०	६८	७

ग्रहों के ध्यान—[2]

कमलासन पर विराजमान, हाथ में कमल लिए हुए, कमल के समान रक्तवर्ण, सात घोड़ों के रथ पर आसीन तथा दो भुजावाले सूर्य का ध्यान करना चाहिए।

---

१. बृहत्पाराशर होरा शास्त्र—अ० ८५ श्लो० १९-२०।

२. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्—अ० श्लो० ६-१४।

श्वेतवर्ण, श्वेतवस्त्रधारी, दश घोड़ों के रथ पर आसीन, श्वेत आभूषणों से सुशोभित, दोनों हाथों में गदा एवं वर धारण करने वाले चन्द्रमा का ध्यान करना चाहिए।

लाल वस्त्र एवं मालाधारी, चतुर्भुज, हाथों में क्रमशः शक्ति, शूल, गदा एवं वर धारण किये हुए तथा मेष पर आरूढ़ मंगल का ध्यान करना चाहिए।

पीले वस्त्र तथा मालाओं से सुशोभित, हरित आभावाले, चारों हाथों में क्रमशः खड्ग, चर्म, गदा एवं वर धारण किये हुए तथा सिंह पर आसीन बुध का ध्यान करना चाहिए।

गुरु का पीतवर्ण तथा शुक्र का श्वेतवर्ण है। दोनों चतुर्भुज हैं तथा उनके हाथों में क्रमशः दण्ड, अक्षसूत्र, कमण्डलु एवं वर हैं--ऐसे गुरु एवं शुक्र का ध्यान करना चाहिए।

नीलमणि जैसी आभावाले, चतुर्भुज, शूल, शर, धनुष एवं वर धारण करने वाले तथा गृध्र पर आसीन शनि का ध्यान करना चाहिए।

नीलवर्ण, विकरालवदन, चतुर्भुज, हाथों में तलवार, ढाल, शूल और वर धारण करने वाले तथा सिंह पर आसीन राहु का ध्यान करना चाहिए।

धूम्रवर्ण, दो भुजावाले, गदा एवं वर धारण करनेवाले विकराल वदन तथा गृध्र पर आसीन केतु का ध्यान करना चाहिए।

ध्यान एवं पूजा के लिए सब ग्रहों की मूर्तियाँ अपने अंगुल से १०८ अंगुल ऊँची, किरीट कुण्डल सहित तथा पूर्वोक्त ध्यान में बतलाये गये स्वरूप जैसी बनानी चाहिए।

ग्रहों की पूजा[1]

जिस ग्रह का जो वर्ण बतलाया गया है, उसके पूजन में उसी रंग का वस्त्र एवं पुष्प चढ़ाना चाहिए तथा जिस ग्रह को जो धान्य प्रिय है,[2] उस धान्य से नैवेद्य बनाकर समर्पित करना चाहिए। गन्ध, अक्षत, धूप, दीप आदि उपचारों को यथावत् समर्पित करना चाहिए। इस प्रकार षोडशोपचार[3] से ग्रहों का पूजन करना चाहिए।

ग्रहों का हवन

प्रत्येक ग्रह का पूर्वोक्त संख्यातुल्य जप करने के बाद हवन करना चाहिए। अर्क, पलास, खदिर, अपामार्ग, अश्वत्थ, उदुम्बर, शमी, दूर्वा एवं कुशा—ये सूर्य आदि ग्रहों की समिधा होती हैं। मधु, घी एवं दही मिलाकर इन समिधाओं से हवन करना चाहिए।[4]

---

१. बृहत्पाराशरहोराशास्त्र—अ० ८५ श्लो० १५-१६।
२. सूर्य आदि ग्रहों को यथाक्रमेण गेहूँ, चावल, मसूर, मूँग, चनेकी दाल, चावल, उड़द, तिल एवं तिल—ये धान्य प्रिय होते हैं।
३. ध्यान, आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, पुनराचमनीय, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल-पूगीफल, दक्षिणा एवं नमस्कार ये १६ षोडश उपचार कहलाते हैं।
४. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्— अ० ८५ श्लो० २१-२२।

ग्रहों के हवन में तिल, आज्य एवं समिधाओं से दी जाने वाली आहुतियों की संख्या जप के दशांश तुल्य होती है।

रोगनिवृत्ति के लिए औषधि सेवन

किस रोग को ठीक करने के लिए कौन सी औषधि का सेवन करना चाहिये?—यह आयुर्वेद शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय है। ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थों में आधिकारिक तौर पर इसका विवेचन नहीं किया गया। किन्तु फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में यत्र तत्र कतिपय प्रमुख रोगों की औषधियों की चर्चा की गयी है। यह चर्चा कई स्थानों पर साक्षात् तथा अन्य स्थानों पर दृष्टान्त के रूप में की गयी है।

प्रश्नमार्ग में उन्माद एवं अपस्मार इन दो रोगों के कारण, लक्षण एवं चिकित्सा का विस्तारपूर्वक विचार किया गया है, यथा—

उन्माद के कारण

विषम भोजन, अपवित्र भोजन, उपवास, भय, वैराग्य, अकारण क्रोध, अभिचार; गुरुनिन्दा, यज्ञ आदि में त्रुटि एवं देवनिन्दा—इन १० दोषों से वात, पित्त एवं कफजन्य उन्माद होता है।[1] सामान्यतया यह रोग—'हर्ष', इच्छा (महत्वाकांक्षा) भय एवं शोक की प्रवलता से; स्वास्थ्य के प्रतिकूल या अपथ्य वस्तु खाने से तथा गुरु एवं देवता के कोप से होता है।[2]

उन्माद के भेद एवं लक्षण—

उन्माद पांच प्रकार का होता है—१—वातजन्य २—पित्तजन्य ३—कफजन्य ४—सन्निपातजन्य एवं ५—आगन्तुक (गुरु देव आदि के कोप से उत्पन्न)।

हँसना, चिल्लाना, बिलखना, गाना, नाचना, रोना, एक जगह पर न रुकना, हाथ-पैर आदि अंगों को फेंकना-पटकना, लाल एवं कमजोर शरीर होना, कमजोर होने पर भी वल होना तथा अधिक बड़बड़ाना—यह वातजन्य उन्माद का लक्षण है।[3]

१. विषमाशुचिभोजनोपवासैर्भयवैराग्यमुधाक्रुधाभिचारैः।
गुरुपावकदेवतापवादैस्त्रिविधोन्माद उदाहृतस्त्रिदोषैः॥
प्रश्नमार्ग अ० १२ श्लो० ४४

२. हर्षेच्छाभयशोकादेर्विरुद्धाशुचिभोजनात्।
गुरुदेवादिकोपाच्च पंचोन्मादा भवन्त्यथ॥
—प्रश्नमार्ग अ० १२ श्लो० ३४।

३. हसनास्फोटनाक्रन्दगीतनर्तनरोदनम्।
अस्थानमङ्गविक्षेपस्ताम्रा मृदुकृशा तनुः।
जीर्णे वलं च वाग्वह्वी वातोन्मादस्य लक्षणम्॥
—तत्रैव श्लो० ३५-३६।

व्याकुलता, क्रोध, विदग्धता, द्रवीभूत होना, जोर-जोर से बोलना या लड़ना, छाया, ठण्डी वस्तु या पानी की इच्छा, अधिक रोष तथा शरीर का पीला पड़ना एवं गरम होना-यह पित्तजन्य उन्माद का लक्षण माना गया है।[१]

स्त्रियों से बोलने की इच्छा, निद्रा में बोलना, साधारणतया कम बोलना, मुँह से लार या झाग निकलना, उल्टी होना, अधिक खाना, नाखून एवं पुतली आदि का सफेद पड़ना—यह कफजन्य उन्माद का लक्षण है।[२]

उक्त लक्षणों के मिश्रणवाला या उनसे भिन्न लक्षण वाला उन्माद सन्निपातजन्य होता है।[३] देवता एवं राक्षस आदि आगन्तुक ग्रह होते हैं। इनके कोप से उत्पन्न उन्माद को आगन्तुक उन्माद कहते हैं।[४]

उन्माद की चिकित्सा

वातजन्य उन्माद में स्नेहपान, पित्तजन्य उन्माद में विरेचन, कफजन्य उन्माद में नस्य एवं वमन तथा आगन्तुक उन्माद में पूर्वोक्त समस्त क्रियायें करनी चाहिए।[५]

सारावलीकार आचार्य कल्याणवर्मा ने अरिष्टयोगों के भंगों का विवेचन करते हुए दृष्टान्त अलंकार द्वारा वतलाया है कि—जैसे कल्याणघृत उन्माद को नष्ट कर देता है, वैसे ही चन्द्रमा से ६, ७ एवं ८ वें स्थान में स्थित शुभ ग्रह अरिष्टों को नष्ट कर देते हैं।[६] कल्याणवर्मा के इस कथन का यह अभिप्राय है कि कल्याणघृत उन्माद रोग की रामबाण औषधि है। आचार्य चरक ने भी उन्मादरोग की चिकित्सा में कल्याणघृत के प्रयोग पर बल दिया है, यथा—

---

१. संरम्भामर्षवैदग्ध्यमभिद्रवणतर्जनम्।
छायाशीतान्नतोयेच्छा रोषः पीतोष्णदेहता॥ तत्रैव श्लो० ३७।

२. नारीविविक्तप्रियता निद्रारोची मनाग्वचः।
लाला छर्दिर्बलं मुक्तौ नखादिषु च शुक्लता॥
—प्रश्नमार्ग अ० १२ श्लो० ३८।

३. संमिश्रलक्षणो वर्ज्य उन्मादः सान्निपातिकः। तत्रैव—श्लो० ३९।

४. आगन्तवो ग्रहा ज्ञेयास्ते तु देवासुरादयः।
अमर्त्या वलवाग्ज्ञानविक्रमादिसमन्विताः॥ तत्रैव—श्लो० ४०।

५. वातोन्मादे स्नेहपानं पित्तोन्मादे विरेचनम्।
श्लेष्मके नस्यवमनमागन्तुष्वखिलाः क्रियाः॥ तत्रैव— श्लो० ४१।

६. सप्ताष्टमषष्ठस्थाः शशिनः सौम्या हरन्त्यरिष्टफलम्।
पापैरमित्रचाराः कल्याणघृत यथोन्मादम्॥
—सारावली अ० ११ श्लो० ७।

"कल्याणकं प्रयुञ्जीत महद्वा चैतसं घृतम् ।
भूतोपहतचित्तानां गद्गदानामचेतसाम् ।"

अपस्मार का लक्षण

शरीर का शिथिल होकर अकस्मात् गिर जाना, मूर्च्छित होना, मुंह से फेन एवं कठोर आवाज निकलना, अंगों का कठोर तथा टेढा-मेढ़ा होना, पुतलियों का घूमना या चढ़ना, दांत भिच जाना, रंग पीला पड़ना, प्यास से व्याकुलता तथा मुखाकृति का विगड़ना— ये सब अपस्मार के लक्षण होते हैं ।[१]

अपस्मार की चिकित्सा

प्रश्नमार्ग में अपस्मार (मिरगी) के दौरे को दूर करने के लिए एक सूंघने की (नस्य) तथा दूसरे खाने की औषधि बतलायी गयी है, जो इस प्रकार हैं—

सैन्धव, वृश्चिकाली, कुष्ठ, कणा एवं भार्ङ्गी—इन औषधियों का बारीक चूर्ण बनाकर नाक से सुंघाना, मिरगी के भीषण दौरे को शान्त करने की प्रशस्त औषधि है ।[२]

ब्राह्मी के रस में वचा, शंखपुष्पी, आंवले का रस एवं मधुक मिलाकर बनाये गये घृत का तथा वृषमूत्र में मधुक, सिद्धार्थ एवं हिंगु मिलाकर बनाये गये घृत का सेवन अपस्मार को दूर कर देता है ।[३]

अन्य रोगों की औषधियां

आचार्य कल्याणवर्मा ने अरिष्टयोगों के भंग का विवेचन करते समय कुछ रोगों की रामबाण औषधियों या उनकी चिकित्सा की चर्चा की है, जो इस प्रकार है—[४]

रोग	औषधि चिकित्सा
वातरोग	बस्ति क्रिया
कफरोग	विरेचन

---

१. विस्रस्ताङ्गः पतति सहसा भूतले नष्टसंज्ञः,
फेनोद्गारी रसति परुषं सन्नकायश्चिराय ।
व्यावृत्ताक्षो दशति दशनं पीतवर्णः प्रमादी,
तोयासक्तो विवृतवदनः स्यादपस्मार एषः ।। प्रश्नमार्ग—अ० १२ श्लो० ५२ ।

२. सिन्धूत्थवृश्चिकालीकुष्ठकणा भार्ङ्गिभिः कृतं चूर्णम् ।
नसि योजयेत्तु शस्तं तीव्रापस्मारशान्तये पुंसाम् ।।
तत्रैव - श्लो० ५६ ।

३. ब्राह्मीरसे घृतवचामयशंखपुष्पधात्रीसुमुद्भवरसे मधुकान्वितं च ।
सिद्धार्थहिंगुसहिते वृषवस्तमूत्रे पानादिना हरति सर्पिरपस्मृतिं तत् ।।
प्रश्नमार्ग—अ० १२ श्लो० ६० ।

४. देखिए—सारावली—अ० ११ श्लो० ४-६,१३ एवं १५ ।

रोग	औषधि चिकित्सा
पित्तरोग	वमन
महातिसार	जायफल के छिलके की क्वाथ
उन्माद	कल्याणघृत
कर्णरोग	लवणस्नुतिपूरण
गुदारोग	तक्र का सेवन
सफेद दाग	उष्णा एवं विदल से बनाया अंजन ।
चातुर्थिक ज्वर	अगस्त्यरस से बना नस्य ।

औषधि से लाभ होगा या नहीं ?

ज्योतिषशास्त्र में प्रत्येक रोग को औषधि का शास्त्रीय रीति से विवेचन नहीं किया गया है । किन्तु जिस औषधि का किया जा रहा हैं, उससे लाभ होगा या नहीं ? तथा जिस वैद्य की चिकित्सा चल रही है वह लाभप्रद होगी या नहीं ? इत्यादि प्रश्नों का इस शास्त्र में गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है ।

प्रश्नशास्त्र में कहा गया है कि—प्रश्नकुण्डली का प्रथम भाव वैद्य का, चतुर्थ भाव औषधि का, षष्ठभाव रोग का तथा दशम भाव रोगी का प्रतिनिधित्व करता है । अतः यदि प्रश्न लग्न में पापग्रह हो तो इलाज करने वाला वैद्य नीमहकीम होता है । तथा उसके इलाज से रोग बढ़ जाता है, इसके विपरीत यदि लग्न में शुभग्रह हो तो वैद्य अनुभवी होता है तथा उसके इलाज से रोग ठीक हो जाता है ।[1]

इसी प्रकार यदि प्रश्नकुण्डली में चतुर्थ स्थान में पापग्रह हों तो रोगी को दी जाने वाली औषधियाँ प्रभावहीन होती हैं तथा उनके सेवन से रोग बढ़ जाता है । यदि उक्त स्थान में शुभग्रह हों तो रोगी को दी जाने वाली औषधियों से रोगी को लाभ मिलता है । यदि कदाचित् प्रश्न कुण्डली से सप्तम स्थान में पापग्रह हों तो वैद्य के निर्देशानुसार दी जाने वाली औषधियों से कोई और रोग हो जाता है । और यदि दशम स्थान में पापग्रह हों तो रोगी अपनी बदपरहेजी द्वारा रोग को बढ़ा लेता है ।[2]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रश्नकुण्डली में जब चतुर्थ स्थान में शुभग्रह हों तथा सप्तम स्थान में पापग्रह न हो तो रोगी को दी जाने वाली औषधियों से उसे लाभ होता है । तथा लग्न में शुभग्रह हों तो वैद्य के अनुभव एवं चिकित्सा से लाभ होता है अन्यथा नहीं ।

(४) रोगनिवृत्ति के लिए दान

पूर्वार्जित अशुभ कर्मों के प्रभाव द्वारा रोग उत्पन्न होते हैं । अतः औषधि, जप, दान, होम एवं पूजा द्वारा रोगों की निवृत्ति होती है ।[3] जिस व्यक्ति की कुण्डली में जो ग्रह

१. प्रश्नशिरोमणि—पृ० ७० १—२ ।
२. तत्रैव—श्लो० ३ ४ ।
३. प्रश्नमार्ग—अ० १३ श्लोक २६ ।

रोगकारक हो, उसके अरिष्ट प्रभाववश उत्पन्न होने वाले रोग से छुटकारा पाने के लिए उस ग्रह को प्रिय लगने वाली वस्तुओं का ध्यान करना चाहिए।

आचार्य सुश्रुत का कथन है कि कर्म प्रकोप, दोष प्रकोप तथा कर्म एवं दोष दोनों के प्रकोप से मनुष्यों को शारीरिक एवं मानसिक रोग होते हैं।[1] इन रोगों में से दोष प्रकोप से उत्पन्न रोग औषधियों के सेवन से ठीक हो जाते हैं। किन्तु जो रोग कर्मप्रकोप या कर्म एवं दोष दोनों के प्रकोप से उत्पन्न होते हैं, वे रोग दान आदि प्रायश्चित्त तथा औषधियों का सेवन करने पर अशुभ कर्मों तथा दोषों के क्षीण हो जाने पर ही ठीक होते हैं।[2] अतः पूर्वार्जित अशुभ कर्मों के प्रभाववश उत्पन्न दीर्घ कालीन एवं असाध्य रोगों से छुटकारा पाने के लिए रोगी को रोगकारक ग्रह की वस्तुओं का विधिवत् दान करना चाहिए।

सूर्य आदि ग्रहों के दान की वस्तुएँ[3]

ग्रह	दान की वस्तुएँ
सूर्य	गेहूँ, गुड, ताम्र, स्वर्ण, रक्तचन्दन, माणिक्य, लालवस्त्र, अलंकार सहित सवत्सा गौ।
चन्द्रमा	बांस के पात्र में चावल, घी से भरा कुम्भ, मोती, चांदी, श्वेत वस्त्र, कपूर, वृषभ, दही एवं शंख।
मंगल	गेहूँ, गुड़, ताम्र, स्वर्ण, मूँगा, रक्तबैल, लालवस्त्र, रक्तचन्दन, मसूर एवं लाल कनेर के फूल।
बुध	नीलावस्त्र, हरापुष्प, हाथी दाँत, सोना, दासी, मूँग, घी कांस्यपात्र, भेड़ एवं पन्ना।
गुरु	हल्दी, पीलावस्त्र, शर्करा, चने की दाल, सोना, लवण, पुखराज, घोड़ा एवं पीले रंग का फूल।
शुक्र	सोना, चित्रविचित्र रंग का कपड़ा, चांदी, गौ, श्वेत, घोड़ा, हीरा, घृत, चावल कपूर एवं श्वेत पुष्प।

१—कर्मप्रकोपेण कदाचिदेके दोषप्रकोपेण भवन्ति चान्ये।
तथापरे प्राणिषु कर्मदोषप्रकोपजाः कायमनोविकाराः॥
बीरसिंहावलोक—पृ० ८।

२—दानादिभिः कर्मभिरौषधीभिः कर्मक्षये दोषपरिक्षये च।
सिध्यन्ति ये यत्नवतां कथंचित्ते कर्मदोषप्रभवा विकाराः॥
तत्रैव—पृ० ६

३—देखिये—(क) जातकचन्द्रिका—ग्रहदानाध्याय पृ० ११२-१३
(ख) भावप्रकाश—ग्रहदानाध्याय पृ० ८५-८६

शनि	तिल, कम्बल, कालावस्त्र, कुल्थी, तेल, भैंस, नीलम, उड़द, कृष्ण गौ एवं काले फूल।
राहु	तिल, कम्बल, कालावस्त्र, लोहा, तेल, गोमेद, घोड़ा, चाँदी, ऊन एवं भेड़।
केतु	तिल, कम्बल, तैल, शस्त्र, वैदूर्य, कस्तूरी, नीलेफूल, ऊन, बकरा एवं नमक।

(५) रोग निवृत्ति के लिए स्नान

ग्रह चिकित्सा में रोग पीड़ा से निवृत्ति के लिये स्नान भी एक प्रमुख उपाय माना गया है। फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में कहा गया है कि—लाजवन्ती, कूट, वरियार, कांगनी, मोथा, सरसों, हल्दी, देवदारु, शरफोंका तथा लौंघ को तीर्थोदक में मिलाकर स्नान करने से ग्रहपीड़ा तथा रोगपीड़ा नष्ट हो जाती है।[1]

कुछ आचार्यों का मत है कि जिस व्यक्ति की कुण्डली में जो ग्रह रोगकारक हो, उस व्यक्ति को उस ग्रह की औषधियों के जल से स्नान करना।

सूर्य आदि ग्रहों की औषधियाँ

ग्रह	स्नानार्थ औषधियाँ
सूर्य	मेनशिल, इलायची, देवदारु, खश, केशर, मुलेठी, कनेर के फूल।
चन्द्रमा	पंचगन्ध, गजमद, शंख, सीप, श्वेतचन्दन एवं स्फटिक।
मंगल	विल्वछाल, रक्तचन्दन, धमनी, रक्तपुष्प, सिंगरफ, मालकांगनी, मौलसिरी।
बुध	गोबर, मधु, अक्षत, फल, स्वर्ण, मोती एवं गोरोचन।
गुरु	मालतीपुष्प, पीली सरसों, मुलहटी, मधु एवं मालती।
शुक्र	इलायची, मैनसिल, सुवृक्षमूल एवं केशर।
शनि	कालेतिल, सुरमा, लोवान, धमनी, सौंफ, मुत्थरा एवं खिल्लां।
राहु	लोवान, तिलपत्र, मुत्थरा, हाथी दांत एवं कस्तूरी।
केतु	लोवान, तिलपत्र, मुत्थरा, हाथी दांत एवं कस्तूरी।

(६) रोग निवृत्ति के अन्य उपाय

आचार्य सुश्रुत का मत है कि उदररोग, गुदारोग, उन्माद, अपस्मार, रक्तस्राव, पंगुता, अन्धता, वधिरता, मूकता, प्रमेह, भगंदर, प्रदर, वातरोग, कुष्ठ, क्षय एवं पक्षाघात आदि रोग पूर्वकाल-पूर्वजन्म में किये गये परद्रव्यापहरण, गुरुपत्नी गमन एवं विप्रहत्या प्रभृति दुष्कर्मों के द्वारा होते हैं। इन रोगों को कर्मज रोग कहते हैं। ये रोग केवल औषधियों के सेवन से ठीक नहीं होते।[2] अतः इन कर्मज असाध्य रोगों से मुक्ति पाने के लिये आचार्य

---

१. भावप्रकाश अ० ८ श्लो० १६।

२ जठरगुदजोन्मादापस्मृत्यसृगुत्स्रुतिपंगुता—
श्रुतिविकलतावाग्वैकल्यप्रमेहभगंदराः।
प्रदरपवनव्याधिश्वित्रक्षयदान्धता—
तिमिरवदनघ्राणार्शांसि श्वयथुविपचीव्रणाः॥

सायण ने कर्मविपाक संहिता में इन सभी के प्रायश्चित्त तथा उनके करने की रीतियाँ विस्तार से बतलायी हैं।[1] उदाहरणार्थ—तपेदिक आदि रोगों का कारण ब्रह्महत्या आदि पाप हैं। तथा वस्त्रदान आदि इस पाप का प्रायश्चित्त कहा गया है।[2] इसलिए चिकित्सा करने पर भी जो रोग ठीक न हों उनसे छुटकारा पाने के लिए उनके प्रायश्चित्त[3] करने चाहिए।

उपसंहार

वैदिक दर्शन के अनुसार आत्मा अमर है, इसका कभी भी नाश नहीं होता। केवल यह कर्मों के अनादि प्रवाह के कारण अनेक योनियों को बदलता रहता है। प्राणीमात्र के शरीर में स्थित यह तत्त्व नित्य, निष्क्रिय, स्वतन्त्र, वशी, विभु एवं निर्विकार होते हुए भी कर्मानुबन्ध के प्रभाव के कारण विनाशशील, परतन्त्र, दुःखी, जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधियों से युक्त प्रतीत होता है।

आत्मा का अनादिकालीन कर्म-प्रवाह के कारण लिंग-शरीर, कार्मण शरीर एवं भौतिक स्थूल शरीर के साथ सम्बन्ध रहता है। जब एक समय में आत्मा भौतिक शरीर का त्याग करता है तो वह लिंग शरीर में रहता है, तथा कार्मण शरीर की सहायता से कर्मानुबन्ध के अनुसार भौतिक शरीर प्राप्त कर लेता है। जन्म-मृत्यु का यह अनवरत चक्र तब तक चलता रहता है, जब तक कर्मप्रवाह रुकता नहीं। और जब चित्तवृत्तियों का

वल्मीकीकाकिणिकशंखकपुडरीक—
रक्तार्बुदव्रणविसर्पवपुःप्रकम्पाः।
पक्षाभिघातगलगण्डगलग्रहाश्म,
दंडापतानकसमीरणशोणिताद्याः॥
दन्तामयाः स्युरपरद्रविणापहार-
गुर्वङ्गनागमनविप्रवधादिभिर्ये।
दुष्कर्मभिस्तनुभृतामिह कर्मजास्ते,
नोपक्रमेण भिषजामुपयान्ति सिद्धिम्॥ सुश्रुत।
वीरसिंहावलोक—पृ० ८।

१. प्रायश्चित्तं दुश्शमरोगे शमना तत्तदुदितमपि।
कार्यं सर्वेष्ववदत् स्वग्रन्थे सायणोऽस्य वचनमिदम्॥
—प्रश्नमार्ग अ० १३ श्लो० २५।

२. राजयक्ष्मादिरोगाणां ब्रह्महत्यादि कारणम्।
वस्त्रदानादिकं प्रायश्चित्तं तद्दिगितीरिता॥ तत्रैव—श्लो० ३३।

३. विस्तृत जानकारी के लिए देखिए—
(क) कर्मविपाकसंहिता
(ख) प्रश्नमार्ग—अध्याय २३।

निरोध कर समाधिस्थ हो जाने से कर्मप्रवाह रुक जाता है, तो प्रारब्ध कर्मों का फल भोगकर आत्मा जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है। इसी को मोक्ष कहते हैं।

इस भौतिक शरीर की यह विशेषता है कि इसमें प्रवेश करते ही यह आत्मा जन्म-जन्मान्तरों के संचित संस्कारों की निश्चित-स्मृति को खो देती है। यही नहीं इस शरीर में आते ही यह निष्क्रिय होते हुए भी सक्रिय, स्वतन्त्र होते हुए भी परतन्त्र, वशी होते हुए भी दुःखदायक भावों से आक्रान्त, विभु एवं सर्वगत होते हुए भी सीमित तथा निर्विकार होते हुए भी सुख-दुःख आदि विकारों का अनुभव करने लगती है। नित्य, शुद्ध एवं बुद्ध आत्मा को इस स्थिति में लाकर खड़ा कर देने वाला एक मात्र कारण है कर्मानुबन्ध।

कार्य करने के बाद कर्त्ता को अनिवार्य रूप से प्राप्त होने वाला परिणाम कर्मानुबन्ध कहलाता है। और यही कर्मानुबन्ध कृत कर्म के शुभा-शुभत्व के अनुसार उसे इष्टानिष्ट योनियों में ले जाता है। वस्तुतः आत्मा की स्वतन्त्रता केवल कार्य करने में है—वह चाहे तो अच्छा या बुरा कार्य करे। परन्तु कार्य करने पर वह उसके अपरिहार्य-फल से अनुबन्धित हो जाता है।

यद्यपि आत्मा निष्क्रिय है। तथापि यह मन एवं इन्द्रियों को चेतनता प्रदान करने के कारण कर्त्ता कही जाती है। वास्तव में मन अचेतन एवं क्रियाशील है। तथा आत्मा क्रियाशून्य चेतनता प्रदान करनेवाली होती है। तात्पर्य यह है कि आत्मा के सम्पर्क मात्र से चेतनता प्राप्त कर मन समस्त क्रियाकलापों को करता है। किन्तु यदि आत्मा मन को चेतनता प्रदान न करे तो क्रियाशील मन भी निष्क्रिय हो जाता है। इसलिए मन की क्रियाशीलता में आत्माका सम्पर्क हेतु है। परिणामतः मन से किये गये कर्म का वही कर्त्ता तथा कर्मफल का उपभोक्ता कहलाती है।

यदि आत्मा को कर्त्ता न माना जाय तो सुख, दुःख, गति, अगति, ज्ञान, शास्त्र, जन्म, मृत्यु, बन्धन एवं मोक्ष आदि कुछ भी नहीं होगा। इसीलिए वैदिक दर्शन में आत्मा को कर्ता माना गया है। जैसे कुम्हार के बिना मिट्टी, दण्ड एवं चक्र आदि के रहने पर भी घड़ा नहीं बनता या राजगीर के बिना ईंट, सीमेन्ट, लोहा एवं लकड़ी आदि के होने पर भी मकान नहीं बनता, ठीक उसी प्रकार मन, बुद्धि, इन्द्रिय के समूह मात्र से शरीर नहीं बनता। वस्तुतः कर्त्ता के बिना कार्य की उत्पत्ति ही नहीं होती। अतः शरीर की उत्पत्ति में आत्मा कारण है तथा शरीर एवं मन द्वारा किये गये कार्यों का वह उपचार द्वारा कर्ता भी है।

आत्मा की एक विशेषता यह है कि वह वशी है। वशी का तात्पर्य यह है कि यह उत्तम फल भोगने की इच्छा होने पर उत्तम कार्य और निकृष्ट फल भोगने की इच्छा होने पर निकृष्ट कार्य करता है। जब उत्तम या निकृष्ट फल को भोगने की इच्छा नहीं होती तब आत्मा चंचल मन को समाधि-स्थ कर लेता है, जिससे कर्मप्रवाह रुक जाता है। क्योंकि इन्द्रियों के साथ मन का सम्पर्क होने से ही कर्म होते हैं। अतः मन समाधिस्थ होने

पर कर्म नहीं होते। इस स्थिति में मन राग या द्वेष से अथवा रजस् एवं तमस् से मुक्त हो जाता है और वह समस्त सांसारिक वस्तुओं एवं वृत्तियों को त्याग देता है। इस त्याग से मोक्ष प्राप्त होता है। यदि आत्मा वशी न होता तो मन में एकाग्रता नहीं आ सकती थी, मन को विषयों से हटाकर समाधिस्थ नहीं किया जा सकता था। और न ही वह मोक्ष की ओर अग्रसर हो सकता था। अतः कर्म करने या न करने में आत्मा वशी है। किन्तु कर्म करने के बाद उसका फल भोगने में वह वशी नहीं है। क्योंकि किये गये कर्म का फल भोगे बिना उसका क्षय नहीं होता।

इस प्रकार यह आत्मा कर्मानुबन्ध के प्रभाववश अनेक योनियों में विचरण करता हुआ जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधियों को प्राप्त करता हैं। जब तक यह कर्म करता रहता है, तब तक जन्म-मृत्यु आदि का चक्र चलता है और जब यह समाधिस्थ होकर कर्म प्रवाह को रोक देता है, तो मुक्ति की ओर अग्रसर हो जाता है।

रोगोत्पत्ति के कारण

आयुर्वेद में रोगोत्पत्ति के दो कारण माने गये हैं—१—कर्म प्रकोप तथा २—दोष प्रकोप।[१] जन्म जन्मान्तरों में किये गये कर्मों को 'दैव' कहते हैं। यह रोगोत्पत्ति का प्रमुख कारण माना गया है।[२] यदि नियमित आहार विहार करने एवं संयमपूर्वक रहने पर भी रोग उत्पन्न हो जाय तो उस रोग को कर्मजन्य रोग कहते हैं।

वात, पित्त एवं कफ के प्रकोप से उत्पन्न रोग दोषजन्य रोग कहे जाते हैं। आचार्य चरक ने दोषों के प्रकोप एवं उनके परिणामस्वरूप पैदा होने वाले रोगों के तीन कारण माने हैं—१—प्रज्ञापराध, २—असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग तथा ३—काल संप्राप्ति।

बुद्धि से उचित रूप में ज्ञान न होना तथा मन का विषम या अनुचित कर्म में प्रवृत्त होना—प्रज्ञापराध कहलाता है। बुद्धि, धृति एवं स्मृति के भ्रष्ट हो जाने पर मनुष्य जो भी अनुचित कार्य करता है, उन्हें प्रज्ञापराध कहते हैं।[३] नित्य वस्तु को अनित्य और अनित्य को नित्य समझना, अहितकारी काल, कर्म प्रभृति को हितकारी और हितकारी को अहितकारी समझना बुद्धि भ्रंश कहलाता है। बुद्धिभ्रंश हो जाने पर व्यक्ति को यथार्थ तथा हित की जानकारी नहीं होती। विषयवासना की ओर प्रवृत्त मन पर अंकुश न होना धृतिभ्रंश कहलाता है। धृतिभ्रंश हो जाने पर मन को विषयवासना आदि अनर्थों में प्रवृत्त होने से रोका नहीं

---

१. कर्मजा व्याधयः केचिद् दोषजाः सन्ति चापरे।
चरकसंहिता—उत्तरतंत्र अ० ४०।

२. निर्दिष्टदैवशब्देन कर्म यत्पौर्वदैहिकम्।
हेतुस्तदपि कालेन रोगाणामुपलभ्यते॥
—तत्रैव शरीरस्थानम् १।११६।

३. चरक संहिता—शरीरस्थानम् अ० १ श्लो० १०२।

जा सकता। रजस् एवं तमस् अथवा राग एवं द्वेष की प्रवलता से यथार्थ विषयक स्मृति नष्ट हो जाती है और मनुष्य अत्यन्त भावुक हो जाता है—इसे स्मृतिभ्रंश कहते हैं। स्मृतिभ्रंश हो जाने पर वह अनुभवशून्य हो जाता है। स्मृति पूर्वकाल में विहित अहितकारी कार्यों का स्मरण दिलाकर उनसे बचने की ओर तथा हितकारी कर्मों का स्मरण दिलाकर उनकी ओर प्रवृत्त होने की प्रेरणा देती है। इस प्रकार बुद्धि, धृति एवं स्मृति के भ्रष्ट हो जाने पर मनुष्य अनुचित कर्मों में लिप्त हो जाता है जिससे उसके शरीर एवं मन में विकार उत्पन्न होते हैं। उदाहरणार्थ मल, मूत्र, छींक, पाद एवं डकार जैसे गतिशील वेगों को रोकना या वेग न होने पर उन्हें बलात् निकालने का प्रयत्न करना, असामयिक एवं दुःसाहसिक कर्म करना, अधिक परिश्रम, आहार या मैथुन करना, पूज्य एवं प्रभावशाली लोगों का अपमान करना, अपवित्र स्थान पर घूमना या रहना, ईर्ष्या, दम्भ, भय, क्रोध, लोभ, मोह एवं भ्रम के वशीभूत होकर निन्दित कार्य करना आदि समस्त कर्म प्रज्ञापराध के उदाहरण माने जाते हैं। यह प्रज्ञापराध शरीर एवं मन में विकारों (रोगों) को उत्पन्न करने वाला एक प्रमुख कारण है।

इन्द्रियों के इन्द्रियार्थों के साथ अतियोग, अयोग या मिथ्यायोग को असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग कहते हैं।[1] कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा एवं नासिका इन पांच इन्द्रियों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध—ये ५ अर्थ होते हैं। उक्त पाँचों इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय का अपने विषय से साथ अतियोग, अयोग या मिथ्यायोग उस इन्द्रिय में, इन्द्रिय के अधिष्ठान भूत अङ्ग एवं शरीर में विकार उत्पन्न कर देता है। जैसे अत्यधिक ऊँचे शब्दों को सुनने से या अत्यन्त क्षीण शब्दों को सुनने से श्रवणशक्ति नष्ट हो जाती है। तथा कठोर, भीषण, अशस्त, अप्रिय एवं विपत्तिसूचक शब्दों के सुनने से शरीर एवं मन में व्यथा या व्याधि उत्पन्न होती है।

काल को अपने गुणों के साथ अतियोग, अयोग या मिथ्यायोग को काल सम्प्राप्ति कहते हैं। सर्दी गर्मी एवं बरसात जैसे गुणवाले मौसम या ऋतुओं को काल कहते हैं।[2] यद्यपि ऋतुएँ ६ होती हैं। किन्तु उनमें उक्त तीन ही गुण होने के कारण दो-दो ऋतुओं से एक-एक मौसम का ग्रहण किया गया है। जैसे हेमन्त एवं शिशिर को सर्दी का बसन्त एवं ग्रीष्म को गर्मी का तथा वर्षा एवं शरद को बरसात का मौसम कहा जाता है। इन मौसमों में इनके गुणों की अत्यधिकता, अत्यल्पता एवं विपर्यय को अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग कहा जाता है। जैसे हेमन्त में अत्यधिक सर्दी पड़ना, ग्रीष्म में उत्कट गर्मी पड़ना एवं वर्षा ऋतु में धुंआंधार बरसात होना अतियोग कहा जाता है। इसी प्रकार हेमन्त में सर्दी न पड़ना, ग्रीष्म में गर्मी न पड़ना तथा वर्षा ऋतु में बरसात न होना अयोग कहलाता है। तथा किसी एक ही ऋतु में कभी सर्दी, कभी गर्मी और कभी बरसात का

१. चरक संहिता—सूत्रस्थानम् १।५४ तथा ११।३७।

२. तत्रैव ११.४२।

होना मिथ्यायोग कहा जाता है। यह काल का अपने गुणों के साथ अतियोग, अयोग या मिथ्यायोग—जिसे काल सम्प्राप्ति कहते हैं, शरीर एवं मन में विकार उत्पन्न कर देता है। अतः इसे भी रोगोत्पत्ति का एक कारण माना जाता है।

आयुर्वेद शास्त्र में दोषों को कुपित कर रोग उत्पन्न करने के जो पूर्वोक्त तीन हेतु बतलाये हैं, उन पर यदि गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय, तो यह कहा जा सकता है कि प्रज्ञापराध एवं असात्म्यैन्द्रियार्थसंयोग एक प्रकार का अनुचित कर्म है। तथा काल-सम्प्राप्ति एक प्रकार का परिणाम है। क्योंकि काल ही समस्त अच्छे एवं बुरे कर्मों को धर्म या अधर्म के रूप में परिणत कर यथासमय उनका फल देता है। इसलिए संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हमारे अनुचित कर्म एवं कालक्रमेण मिलने वाला परिणाम दोषों को कुपित कर रोग उत्पन्न करता है।

सामान्यतया कर्म तीन प्रकार का होता है संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण। आयुर्वेद में कर्मजन्य रोगों का कारण जो कर्म है, वह संचित कर्म ही है, जिसके एक भाग को दैव या प्रारब्ध कहते हैं। तथा दोषों को कुपित करने वाले प्रज्ञापराध एवं असात्म्यैन्द्रियार्थ संयोग हमारे क्रियमाण कर्म हैं। इस प्रकार कर्म प्रकोप एवं दोष प्रकोप इन दोनों के मूल-अनुचित कर्म ही एक मात्र हेतु हैं, यह कर्म इस जन्म या जन्मान्तर कभी का हो सकता है। इसलिए जन्म-जन्मान्तरों से लेकर अद्यावधि किये गये समस्त अनुचित कर्मों, जिन्हें पूर्वार्जित कर्म कहते हैं, को ज्योतिष शास्त्र में रोगोत्पत्ति का हेतु माना गया है।

इसका कारण यह है कि जन्म या जन्मान्तर में किये गये कर्मों का फल अनिवार्य रूप से भोगना पड़ता है। उसी से कर्मानुबन्ध बनता है। तथा कर्मानुबन्ध के कारण ही आत्मा अनेक योनियों में जन्म लेकर जरा व्याधि एवं मृत्यु प्राप्त करती है। अस्तु, यदि जन्मान्तर में किये गये कर्म को रोगोत्पत्ति का कारण न माना जाय, तो भूकम्प, बाढ़, तूफान एवं अन्य दुर्घटना में ग्रस्त लोगों में से कुछ की मृत्यु, कुछ के चोट ग्रस्त होने और कुछ एक के सकुशल बच जाने का कोई कारण नहीं बतलाया जा सकता।

रोग विचार में ज्योतिष की भूमिका

मनुष्य के द्वारा जन्म-जन्मान्तरों में किये गये शुभ या अशुभ कर्मों का परिणाम उसे इस जीवन में किस क्रम से, कब-कब एवं क्या मिलेगा ? इसे जानने का एक मात्र साधन है, ज्योतिष शास्त्र। जैसे दीपक अन्धकार में रखे पदार्थों का बोध करा देता है, ठीक उसी प्रकार यह शास्त्र जन्मान्तर में किये गये कर्मों के परिणामों को हृदयंगम करा देता है।[1] अतः जन्म-जन्मान्तरों में किये गये अशुभ कर्मों द्वारा उत्पन्न रोगों का विचार करने में यह शास्त्र एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

रोग एवं उनके भेद

ज्योतिष शास्त्र की मान्यता के अनुसार उन समस्त शारीरिक एवं मानसिक विकारों को रोग कहते हैं, जो हमारे शरीर या मन को किसी भी प्रकार का कष्ट पहुँचाते

१. यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पंक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव॥ —लघुजातक अ० १।२।

हैं। ये रोग सामान्यतया दो प्रकार के होते हैं—१. जन्मजात तथा २. आगन्तुक। जन्म से ही होने वाले रोग जन्मजात और जन्म के बाद कभी भी होने वाले रोग आगन्तुक रोग कहलाते हैं।

जन्म के बाद उत्पन्न होने वाले रोगों के दो भेद माने गये हैं—१. दृष्ट निमित्तजन्य एवं २. अदृष्ट निमित्तजन्य। शाप, अभिचार, घात एवं दुर्घटना जैसे प्रत्यक्ष घटनाओं द्वारा उत्पन्न रोगों को दृष्टनिमित्तजन्य रोग कहते हैं। ये बहुधा आकस्मिक रूप से होते हैं। अतः इन्हें आकस्मिक रोग भी कहा जा सकता है। किन्तु जो रोग पूर्वार्जित अशुभ कर्मों के प्रभाव या प्रारब्धवश उत्पन्न होते हैं, उन्हें अदृष्टनिमित्तजन्य रोग कहते हैं।

इस प्रकार जन्मजात, दृष्टनिमित्तजन्य एवं अदृष्टनिमित्तजन्य इन त्रिविध रोगों के अधिष्ठान भेद से दो-दो भेद माने गये हैं, जिन्हें शारीरिक एवं मानसिक रोग कहा जाता है। शरीर में वात, पित्त एवं कफ के विपर्यय से उत्पन्न समस्त शारीरिक विकारों को शारीरिक रोग कहते हैं। तथा मन में क्रोध, हर्ष, शोक, ईर्ष्या, राग एवं द्वेष आदि आवेगों से उत्पन्न मनोविकारों को मानसिक रोग कहते हैं।

रोग विचार का प्रमुख उपकरण-योग (ग्रह योग)

ज्योतिष शास्त्र में ग्रहयोग के संक्षिप्त रूप को 'योग' कहते हैं। ग्रहों की इष्टानिष्टस्थान में स्थितिवश जो मनुष्यों को पूर्वार्जित कर्मों के परिणाम से मिलता है, उसे योग कहते हैं, यथा—

ग्रहाणां स्थितिभेदेन पुरुषान् योजयन्ति हि।
फलैः कर्मसमुद्भूतैरिति योगाः प्रकीर्तिताः ।। प्रश्नमार्ग ९।४८।

होरा शास्त्र में सूर्य आदि ग्रहों को मनुष्य के शरीर के अंग, धातु एवं दोषों का प्रतिनिधि माना गया है। जब कोई ग्रह अनिष्ट स्थानादि में स्थित होने के कारण अनिष्ट प्रभाव का द्योतक बन जाता है, तो वह शरीर के जिस अंग, धातु या दोष का प्रतिनिधित्व करता है, उसमें विकार या रोग की सूचना देता है। किन्तु जब कोई ग्रह इष्ट स्थानादि में स्थित होने के कारण इष्टप्रभावयुक्त हो जाता है, तो वह शरीर के जिन अंग, धातु एवं दोषों का प्रतिनिधित्व करता है उसमें समता, पुष्टि या आरोग्यता की सूचना देता है। यही कारण है कि इस शास्त्र में सभी प्रकार के रोगों का विचार ग्रहयोगों के द्वारा किया जाता है।

योगों के तीन प्रमुख तत्त्व-ग्रह, राशि एवं भाव

योग निम्नलिखित तीन तत्त्वों से बनते हैं—१. ग्रह, २. राशि एवं ३. भाव। भारतीय ज्योतिष में हर्षल, नेप्चून एवं प्लेटो को छोड़कर सूर्य आदि ९ ग्रह, मेष आदि १२ राशियों तथा लग्न आदि १२ भावों को मनुष्य के शरीर के विविध अंग, धातु एवं दोषों का प्रतिनिधि माना गया है। अतः ग्रह, राशि एवं भाव द्वारा बने योग शरीर के विविध अंग, धातु या दोष में विकार या रोग की सूचना देते हैं।

योगों के तीन सहायक तत्त्व—दृष्टि, युति एवं स्थिति

दृष्टि, युति एवं स्थिति ये तीन ऐसे तत्त्व हैं, जो योग के फल में ह्रास या वृद्धि कर देते हैं। सामान्यतया सभी ग्रह अपने स्थान से ७ वें स्थान में स्थित ग्रह, राशि एवं भाव को देखते हैं। किन्तु मंगल ७ वें स्थान के अलावा, चौथे एवं ८ वें स्थान को; गुरु ९ वें एवं ५ वें स्थान को तथा शनि तीसरे एवं १० वें स्थान को भी देखता है। इसे ग्रहों की दृष्टि कहते हैं। किसी ग्रह का किसी अन्य ग्रह के साथ किसी राशि या भाव में बैठना युति कहलाता है। तथा किसी ग्रह, भाव या राशि से इष्ट या अनिष्ट स्थानों में ग्रह आदि के बैठने को स्थिति कहते हैं। जब योगकारक तत्त्वों (ग्रह, भाव या राशि) पर शुभग्रहों की दृष्टि या युति होती है, तो योगजन्य शुभफल बढ़ जाता है और अशुभ फल घट जाता है। इसके विपरीत योगकारक तत्त्वों पर पापग्रहों की दृष्टि या युति हो तो शुभ फल घट जाता है और पापफल बढ़ जाता है। इष्टस्थान में स्थिति शुभ फल में वृद्धि तथा पापफल में ह्रास करती है। जब कि अनिष्ट स्थान में स्थिति पापफल में वृद्धि एवं शुभफल में ह्रास करती है। इस प्रकार योगों का सामान्य फल इन दृष्टि, युति एवं स्थिति के प्रभाववश कभी-कभी अपनी अतिभूमि पर चला जाता है, तो कभी-कभी नष्ट प्रायः हो जाता है। जातक ग्रन्थों में अरिष्ट योगों पर शुभग्रहों की दृष्टि-युति द्वारा उनका भंग होना तथा राजयोगों पर पापग्रहों की दृष्टियुति द्वारा उनका भंग होना, इसके उदाहरण हैं।

रोग परिज्ञान के सिद्धान्त

अपने स्वभावानुसार कोई भी ग्रह रोगकारक नहीं हुआ करता। ग्रह का स्वभाव मनुष्य के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ करना नहीं है। किन्तु जब वह कुछ विशेष परिस्थितियों में मनुष्य के शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य में विकार उत्पन्न होने की सूचना देता है, तब वह रोगकारक कहलाता है। फलितज्योतिष में ग्रहों को रोगकारक बनाने वाले निम्नलिखित ९ हेतु माने गये हैं—

१—रोग (षष्ठ) भाव का प्रतिनिधित्व।
२—अष्टम या व्यय भाव का प्रतिनिधित्व।
३—रोग भाव में स्थिति।
४—लग्न में स्थिति या लग्न का प्रतिनिधित्व।
५—नीचराशि, शत्रुराशि में स्थिति या निर्बलता।
६—अवरोहीपन (उच्च राशि से आगे बढ़कर नीचाभिमुख होना)
७—क्रूरषष्ठ्यंश में स्थिति।
८—पापग्रहों का प्रभाव।
९—अरिष्टकारकत्व या मारकत्व।

उक्त ९ हेतुओं से सूर्य आदि ग्रह रोगकारक बन जाते हैं। तथा अन्य ग्रह की युति-दृष्टि, इष्ट या अनिष्ट भाव या राशि में स्थिति के अनुसार मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होने वाले विविध रोगों की सूचना देते हैं।

जब सूर्य रोगकारक बन जाता है तो वह पित्तरोग, ज्वर, दाह, अपस्मार, हृदयरोग, नेत्ररोग, क्रोड एवं बस्ति के रोग, चर्मरोग, अस्थिस्राव, विषपीड़ा, मन्दाग्नि, क्षय, अतिसार, चित्त व्याकुलता, अग्नि, शस्त्र या काष्ठ से व्रण एवं शिरः पीड़ा आदि रोग की सूचना देता है।

यदि चन्द्रमा रोगकारक हो, तो निद्रारोग, आलस्य, कफरोग, अतिसार, पिटक, शीतज्वर, मन्दाग्नि, अरुचि, पीलिया, रक्तविकार, मानसिक रोग, पाण्डु, जलोदर, कामला, स्त्रीजन्यरोग, प्रमेह एवं वातप्रकोप आदि रोगों की सम्भावना व्यक्त करता है।

यदि मंगल रोगकारक हो, तो तृष्णा, पित्तप्रकोप, पित्तज्वर, जलन, विषपीड़ा, रक्तकुष्ठ, नेत्ररोग, गुल्म, अपस्मार, मज्जारोग, कण्डू, चर्मरोग, अंग या हड्डी का टूटना, मुष्कवृद्धि, कफज ग्रन्थि, व्रण एवं रक्त विकार आदि रोग उत्पन्न करता है।

यदि बुध रोगकारक हो, तो भ्रान्ति, वाग्दोष, नेत्ररोग, गले के रोग, नासिका रोग, त्रिदोष ज्वर, विषव्याधि, चर्मरोग, पीलिया, खुजली, दाद, उदरविकार गुप्तरोग, वायुविकार, कुष्ठ, मूर्छा, संग्रहणी, चेचक एवं जड़ता आदि रोग होते हैं।

यदि गुरु रोगकारक हो, तो गुल्म, आन्त्रज्वर, मूर्च्छा, कर्णरोग, कफजरोग, मोहजन्य या शोकजन्य रोग, छर्दी, आन्त्र रोग, शोफ या स्थौल्य आदि रोग होते हैं।

यदि शुक्र रोगकारक हो, तो पाण्डु, मोतियाबिन्द, कालापानी, मूत्ररोग, प्रमेह, वीर्यविकार, नपुंसकता, अतिसम्भोग के कारण कास, श्वास या क्षय, सूखा, स्त्रीजन्यरोग, वात एवं श्लेष्मा विकार, उपदंश, शूक, कामोन्माद, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष एवं धातु क्षय आदि रोग पैदा होते हैं।

यदि शनि रोगकारक हो, तो वात एवं कफजन्यरोग, पादरोग, थकावट, भ्रान्ति, कुक्षिरोग, उष्णता, हृदयताप, सन्धिरोग, गुप्तरोग, वातशूल, पक्षाघात, स्नायुरोग एवं उदरशूल आदि रोग हो जाते हैं।

यदि राहु रोगकारक हो, तो हृदयरोग, कुष्ठ, प्रमाद, विष कीटाणुओं के रोग, पैर में चोट, अपस्मार, मसूरिका, गण्डमाला, कृमिरोग एवं अरुचि आदि रोग हो सकते हैं।

यदि केतु रोगकारक हो, तो श्वेतकुष्ठ, गर्भस्राव, चर्मरोग, कण्डु, मसूरिका, जलोदर एवं विषव्याधि जैसे रोग होते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति की जन्मकुण्डली में षष्ठ स्थान रोग का, अष्टम स्थान मृत्यु का तथा द्वादश स्थान स्वास्थ्य के ह्रास का प्रतिनिधित्व करता है। अतः षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश भाव अपने स्वभाव से ही रोगोत्पत्ति करने वाले माने गये हैं। यदि इन भावों में इनके स्वामी बैठे हों या इन भावों को इनके स्वामी देखते हों तो मनुष्य का स्वास्थ्य प्रायः हमेशा ही नरम रहता है। इन भावों का रोगोत्पत्ति से इतना निकट का सम्बन्ध माना गया है, कि इन भावों का स्वामी ग्रह जिस भाव में स्थित हो, वह भाव मनुष्य के शरीर के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करता हो, उस अंग में इनकी स्थिति के प्रभाववश रोग हो जाता है।

उदाहरणार्थ षष्ठेश, अष्टमेश या द्वादशेश ग्रह यदि लग्न में हो तो शिरोरोग, द्वितीय भाव में हो तो नेत्र रोग एवं इसी प्रकार द्वादश भाव में हो तो पादरोग होता है।

उक्त भावों के अलावा अन्य भाव तथा राशियाँ स्वभावतः रोगकारक नहीं होती। किन्तु जब वे निम्नलिखित कारणों से अनिष्ट प्रभावग्रस्त हो जाती हैं, तो रोगकारक बन जाती हैं। लग्न आदि भाव तथा मेष आदि राशियों को रोगकारक बनाने वाले प्रमुख हेतु इस प्रकार हैं—

१—पापग्रहों के मध्य में स्थिति।

२—पापग्रहों से युति या पापग्रहों की दृष्टि।

३—त्रिक स्थान से सम्बन्ध।

४—स्वामियों की अनिष्ट स्थान में स्थिति।

५—भाव, राशि या इनके स्वामियों की निर्बलता।

६—भाव से चतुर्थ, अष्टम, द्वादश या त्रिकोण स्थान में पापग्रहों की स्थिति।

७ रोगकारक ग्रहों से सम्बन्ध।

८ शुभग्रहों के प्रभाव का अभाव।

उक्तकारणों से अनिष्ट प्रभावग्रस्त होने पर लग्न आदि भाव तथा मेष आदि राशियाँ किन-किन रोगों की उत्पत्ति की सूचना देती हैं—इसकी संक्षिप्त तालिका इस प्रकार है--

भाव	राशि	रोग
प्रथमभाव	मेष	शिरोरोग।
द्वितीयभाव	वृषभ	नेत्ररोग, नासारोग, मुखरोग।
तृतीयभाव	मिथुन	कर्णरोग, कण्ठरोग, बाहुरोग।
चतुर्थभाव	कर्क	हृदयरोग, वक्षरोग।
पंचमभाव	सिंह	उदररोग।
षष्ठभाव	कन्या	कटिरोग।
सप्तमभाव	तुला	वस्तिरोग।
अष्टमभाव	वृश्चिक	गुप्तरोग।
नवमभाव	धनु	उरुरोग।
दशमभाव	मकर	जानुरोग।
एकादशभाव	कुम्भ	जंघारोग।
द्वादशभाव	मीन	पादरोग।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जब कोई ग्रह, राशि या भाव पूर्वोक्त किसी कारण से रोगकारक बन जाता है तथा वह अपने सम्बन्धी, सधर्मी या पापग्रह से दृष्ट-युत होता है या उससे अनिष्टस्थान में सम्बन्धी, सधर्मी या पापग्रहों की स्थिति होती है, तो

वह कुण्डली में रोग का योग उत्पन्न कर मनुष्य के शरीर या मन में जन्मजात या आगन्तुक रोगों की सूचना देता है।

जन्मजात रोग

जातक ग्रन्थों में लूलापन, लंगड़ापन, कुबड़ापन, अन्धापन, कानापन, गूंगापन, बहिरापन, नपुंसकता एवं जड़ता प्रभृति जन्मजात शारीरिक एवं मानसिक रोगों का विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। ये जन्मजात रोग व्यक्ति के पूर्वार्जित अशुभ कर्म तथा माता-पिता के द्वारा किये गये अनुचित कर्मों के परिणामस्वरूप होते हैं। अतः इन रोगों का विचार जन्म कुण्डली एवं गर्भाधानकुण्डली से किया जाता है। व्यक्ति की जन्मकुण्डली के योग उसके पूर्वार्जित कर्म, जिन्हें संचित-कर्म भी कहा जाता है, के परिणाम को बतलाते हैं। तथा गर्भाधान कुण्डली के ग्रहयोग गर्भाधान से लेकर प्रसवकाल-पर्यन्त की समस्त गतिविधियों पर प्रकाश डालते हैं। इस प्रकार जन्मकुण्डली के ग्रहयोगो से व्यक्ति के पूर्वार्जित कर्मों के परिणामस्वरूप होने वाले जन्मजात रोगों की तथा गर्भाधान कुण्डली के ग्रहयोगों से उसके माता-पिता द्वारा किये गये अनुचित कार्यों के परिणामस्वरूप होने वाले जन्मजात रोगों की पूरी-पूरी जानकारी मिल जाती है, जिनका विवेचन इस ग्रन्थ के तृतीय अध्याय में किया गया है।

आगन्तुक रोग

जन्म के बाद उत्पन्न होने वाले समस्त शारीरिक एवं मानसिक रोग आगन्तुक रोग कहलाते हैं। ये रोग निमित्त के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष भेद से दो प्रकार के होते हैं - १. दृष्टनिमित्तजन्य तथा २. अदृष्टनिमित्तजन्य।

चोट, शाप, संसर्ग, महामारी, भय, शाप एवं अभिचार जैसे प्रत्यक्ष कारणो से उत्पन्न रोगों को दृष्टनिमित्तजन्य रोग कहते हैं। ये रोग बहुधा अकस्मात् या अप्रत्याशित रूप से उत्पन्न हो जाते हैं। अतः इन्हें आकस्मिक रोग भी कहा जाता है।

आकस्मिक व्याधियों का प्रमुख प्रतिनिधि ग्रह मंगल होता है। फलित ज्योतिष की मान्यतानुसार यह ग्रह—'अग्नि, विष एवं शस्त्र से पीडा, दुर्घटना, विस्फोट, युद्ध, ब्रह्मराक्षस आदि से भय, शत्रुता, विनाशकारी संकल्प, मारण आदि अभिचार तथा षड्यन्त्र आदि का प्रतिनिधित्व करता है। इन समस्त आकस्मिक उपद्रवों में राहु, केतु एवं अन्य पापग्रह इसके सहयोगी की भूमिका प्रस्तुत करते है।

चोट, दुर्घटना, महामारी, भय, शाप एवं अभिचार के मूल में प्रकृति या व्यक्ति का उग्रतम विरोध मुख्य कारण है। जब किसी व्यक्ति का किसी अन्य से किसी कारणवश विरोध हो जाता है, तथा यह विरोध उग्रतम रूप धारण कर लेता है, तब वह अपना विरोध प्रकट करने के लिए भय, शाप, अभिचार या घात का आश्रय लेता है और इसी प्रकार जब प्रकृति उग्र हो जाती है तो वह अपना विरोध दुर्घटना एवं महामारियों के द्वारा व्यक्त करती है। जन्मकुण्डली में इस उग्रतम विरोध एवं विरोध करने वाले शत्रु का प्रतिनिधित्व मंगल ग्रह एवं षष्ठ भाव करता है। अतः दृष्टनिमित्तजन्य (आकस्मिक)

रोगों का विचार मंगल, उसके सहयोगी पापग्रह, षष्ठभाव, षष्ठेश, षष्ठस्थान में स्थित ग्रह एवं षष्ठ स्थान को देखने वाले ग्रहों से होता है।

दृष्टनिमित्तजन्य रोगों में प्रमुख है—चोट एवं दुर्घटना। इस विषय में जातक ग्रंथों में विविध योगों के आधार पर न केवल चोट लगने या दुर्घटनाग्रस्त होने का विचार किया गया है, अपितु किस अंग में चोट लगेगी ? किस चीज से चोट लगेगी ? क्या चोट या दुर्घटना से अंग भंग होगा ? और चोट या दुर्घटना से मृत्यु होगी या नहीं ?— इन सभी प्रश्नों पर विचार किया गया है। इसके साथ ही चेचक, हैजा, तपेदिक एवं कुष्ठ जैसे महामारी एवं संसर्गजन्य रोगों का जलभय, अग्निभय, चोरभय, दुर्जनभय, विषभय, सर्पभय, पशुभय एवं जीव जन्तु से भय एवं पीड़ा मिलने का तथा शाप एवं अभिचार जन्य रोगों का विचार कर किस किस व्यक्ति को इस प्रकार की शारीरिक या मानसिक पीड़ा हो सकती है ? इसका शास्त्रीय रीति से समाधान किया है।

आगन्तुक रोगों के दूसरे भेद को अदृष्टनिमित्तजन्य रोग कहते हैं। जो रोग पूर्वार्जित अशुभ कर्मों के प्रभाववश मनुष्य के शरीर एवं मस्तिष्क को रुग्ण बना देते हैं, उन्हें अदृष्टनिमित्तजन्य रोग कहा जाता है। ये रोग अधिष्ठान भेद से दो प्रकार के होते हैं—शारीरिक तथा मानसिक।

अदृष्टनिमित्तजन्य शारीरिक रोग भी दो प्रकार के होते हैं—१. अङ्ग विकार तथा २. सर्वांग विकार। सिर से लेकर पैर तक शरीर के विविध अंगों में उत्पन्न होने वाले विकारों को अङ्गविकार या अंगों का रोग कहते हैं। इन रोगों की संक्षिप्त तालिका इस प्रकार है—

अङ्ग	उत्पन्न होने वाले रोग
शिर	शिरःशूल, गंजापन, उन्माद, मिरगी एवं मूर्छा आदि।
नेत्र	अन्धत्व, काणत्व, मेंगापन, रतौंधी आदि।
कान	बधिरत्व, कम सुनाई देना, कर्णशूल आदि।
नाक	नाक कटना एवं अन्य नाक के रोग।
मुख	मूकत्व, हकलाहट, तुतलाहट, दन्तरोग एवं तालुरोग आदि।
गला	गलगण्ड, गण्डमाला एवं अन्य कण्ठरोग।
हाथ	लूलापन एवं हाथ कटना।
हृदय	हृदयशूल, हृत्कम्प, हृदयरोग एवं वक्ष के रोग।
उदर	मन्दाग्नि, अजीर्ण, अतिसार, संग्रहणी, गुल्म, कृमि, जलोदर, पाण्डु एवं उदर शूल आदि।
वस्ति	मूत्रकृच्छ, अश्मरी।
जननेन्द्रिय	प्रमेह, प्रदर, नपुंसकता, वन्ध्यत्व, वीर्यविकार, उपदंश, शूक, वृषण रोग आदि।
गुदा	अर्श एवं भगंदर।
पैर	जंघाक्षति, पङ्गुता, लंगड़ापन, श्लीपद।

लग्न आदि १२ भाव तथा मेष आदि १२ राशियाँ मनुष्य के शरीर के शिर से लेकर पैर तक विविध अंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं अतः अंगों में उत्पन्न होने वाले रोगों में भाव एवं राशियों की प्रमुखता रहती है। यद्यपि ग्रह मनुष्य के शरीर के विविध अंग, धातु एवं दोषों का प्रतिनिधित्व करते हैं, किन्तु धातु एवं दोषों का प्रतिनिधित्व करने के कारण अंगों के रोगों में उनका सहायकत्व स्वीकार किया गया है। इस प्रकार अंगों के प्रतिनिधि भाव एवं राशियों पर बाधक ग्रह तथा पापग्रहों के प्रभाववश बनने वाले योगों से विविध अंगों में उत्पन्न होने वाले रोगों-विकारों का विचार किया जाता है।

अदृष्टनिमित्तजन्य शारीरिक रोगों का दूसरा भेद सर्वांग विकार माना गया है। इस वर्ग में ऐसे रोग आते हैं, जिनका शरीर के किसी एक अंग विशेष से सम्बन्ध न होकर धातु या दोष (वात, पित्त एवं कफ) से सम्बन्ध होता है, जैसे आमवात, शूल, सन्धिशूल, पक्षाघात, रक्तपित्त, दाह, तृष्णा, छर्दि, कफ, खांसी, श्वास, क्षय, ज्वर, पाण्डु, सूखा, शोफ, स्थौल्य, फोड़ा, फुन्सी, व्रण, दाद, खाज, खुजली एवं कुष्ठ आदि।

इन रोगों के विचार में बाधक ग्रहों की प्रमुखता रहती है तथा भाव एवं राशियों का सहायकत्व। इन सभी रोगों की उत्पत्ति का प्रमुख हेतु पूर्वार्जित अशुभ कर्म माना गया है। अतः इनका विचार महर्षियों एवं मनीषी आचार्यों द्वारा परीक्षित एवं प्रदत्त विविध ग्रह योगों द्वारा किया जाता है।

शारीरिक रोगों के बाद अदृष्टनिमित्तजन्य मानसिक रोगों का विचार होता है। अदृष्ट या दैव के प्रभाववश मन एवं मस्तिष्क से उत्पन्न होने वाले विकारों को मानसिक रोग कहते हैं। इन रोगों में प्रमुख हैं—उन्माद एवं अपस्मार। आयुर्वेद के ग्रन्थों में भी इन रोगों को कर्मज व्याधि कहा गया है। फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में इन दोनों के मात्र सहयोगों का ही विचार नहीं किया गया अपितु इनके कारण, भेद, लक्षण एवं चिकित्सा का सांगोपांग विवेचन किया गया है।

हर्ष, इच्छा, भय शोक आदि आवेगों, विषम एवं अपवित्र भोजन, उपवास, अकारण क्रोध, गुरुनिन्दा, देवनिन्दा, धार्मिक कार्य में त्रुटि, निराशा या शत्रुकृत अभिचार आदि किसी प्रत्यक्ष कारण से किस रोगी को उन्माद हुआ है? इसको यथार्थ रूप में जान लेने की कोई निश्चित रीति आयुर्वेद शास्त्र में नहीं बतलायी गयी है। जबकि फलित ज्योतिष में इस रोग के न केवल प्रत्यक्ष कारणों का निर्धारण करने के लिए परीक्षित योग बतलाये गये हैं, अपितु ग्रहयोगों के द्वारा इसको उत्पन्न करने वाले अदृष्ट का विचार तथा उसके प्रतिकार की विधि भी बतलायी गयी है।

मानसिक रोगों के कारण का विचार करते करते जहाँ आयुर्वेद शास्त्र थककर विश्राम करने लगता है, ज्योतिष शास्त्र वहां से आगे बढ़ उसके उत्पादक तथ्य का अन्वेषण करना शुरू करता है, और उसे इस अन्वेषणों में काफी सफलता भी मिली है।

रोग कब होगा ?

जन्मजात एवं आजीवन चलने वाले असाध्य रोगों की उत्पत्ति के समय का विचार नहीं किया जाता। किस-किस व्यक्ति को इस प्रकार के रोग हो सकते हैं, इसका विचार ग्रहयोगों के आधार पर कर लिया जाता है। किन्तु सभी प्रकार के आगन्तुक रोगों के होने के सम्भावित समय का विचार किया जाता है।

ज्योतिष शास्त्र में रोगोत्पत्ति के सम्भावित समय का विचार ग्रहों की महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा, सूक्ष्मदशा, प्राणदशा, प्रश्नकालीन ग्रह स्थिति, गोचरीय ग्रहस्थिति एवं कुछेक योगों के बतलाये गये समय के आधार पर किया जाता है। रोग अपनी कालावधि के अनुसार दो प्रकार के होते हैं—१. दीर्घकालीन तथा २. अल्पकालीन। दीर्घकालीन रोग प्रायः ग्रहों की महादशा या अन्तर्दशाओं में शुरू होकर लम्बे समय तक चलते हैं। जब कि अल्पकालीन रोग ग्रहों की प्रत्यन्तर्दशा, सूक्ष्मदशा या प्राण दशा में उत्पन्न होकर उन्हीं दशाओं में ठीक हो जाते हैं।

प्रत्येक ग्रह की महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा, प्राणदशा एवं सूक्ष्मदशा की एक निश्चित कालावधि होती है। दशाओं की इस कालावधि में रोग कब होगा ?—इसका निश्चय ग्रहों के गोचरीय-परिभ्रमण या प्रश्नकालीन ग्रह स्थिति के अनुसार किया जाता है।

कुछ योगों में रोग के साथ साथ उसके उत्पन्न होने के समय की सूचना भी अन्तर्निहित होती है, यथा––"षष्ठभाव में राहु, केन्द्र में शनि एवं अष्टम भाव में लग्नेश हो तो २६ वें वर्ष में क्षयरोग होता है।" ऐसे सभी योगों में प्रायशः किसी एक निश्चित वर्ष का उल्लेख मात्र मिलता , जिसमें योग में प्रतिपादित रोग हो सकता है। योग में बतलाये गये उक्त वर्ष की कालावधि के भीतर वह रोग कब होगा ?––इसका निर्णय भी योगकारक ग्रहों के गोचरीय परिभ्रमण या प्रश्नकालीन ग्रहस्थिति के द्वारा किया जाता है।

होराशास्त्र की यह एक प्रमुख विशेषता है कि यह दशाओं के विविध भेद ग्रहों के गोचरीय परिभ्रमण द्वारा रोग कब होगा ? दिन में होगा या रात में ? किस प्रहर या क्षण में होगा ? इत्यादि काल के सूक्ष्मतम भेद को जानकर रोगारम्भ के वास्तविक काल का ज्ञान कराता है। प्रश्नशास्त्र इस निर्णय में होराशास्त्र की सहायता अवश्य करता है, किन्तु वह अकेला इसका निर्णय नहीं कर पाता। फलित ज्योतिष की अन्य शाखाओं–– जैसे सामुद्रिक, अंकविद्या, केरल, रमल या शकुन शास्त्र द्वारा रोगारम्भ के वास्तविक समय का पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता। इसीलिए यहाँ इन शास्त्रों का उपयोग नहीं किया गया है।

रोगों का साध्यत्व एवं असाध्यत्व

साध्यता की दृष्टि से रोग दो प्रकार के होते हैं—१. असाध्य एवं २. साध्य। जो रोग समुचित चिकित्सा करने पर भी ठीक नहीं हो पाते अपितु जीवन भर चलते हैं या जिनके कारण रोगी की मृत्यु हो जाती है, वे रोग असाध्य कहलाते है। किन्तु जो रोग चिकित्सा द्वारा न्यून या अधिक समय में ठीक हो जाते हैं, वे साध्य कहे जाते हैं।

ज्योतिष शास्त्र के मनीषी आचार्यों ने रोगों के साध्यासाध्यत्व का विचार बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से किया है। उनका कहना है कि सामान्यतया दीर्घकालीन रोगों के योगों के प्रभाववश उत्पन्न होने वाले रोग असाध्य तथा शेष रोग साध्य होते हैं। तथापि "रोगों की साध्यता या असाध्यता का निर्णय करने या रोगों का परिणाम जानने के लिए सर्वप्रथम रोगी की आयु का निर्णय कर लेना चाहिए"। यदि रोगारम्भ के समय रोगी की आयु। जीवनावधि समाप्त हो जाय, तो उस समय उत्पन्न होने वाले छोटे से छोटे रोग से भी रोगी की मृत्यु हो जाती है। और प्रकार से वह साधारण सा दीखने वाला रोग उस व्यक्ति के लिए उस समय असाध्य हो जाता है। और यदि रोगारम्भ के समय रोगी की आयु समाप्त न होती हो तथा रोगी की कुण्डली में दीर्घकालीन रोग का योग न हो तो रोगी साध्य होता है। अतः रोगों के साध्यत्व या असाध्यत्व का निर्णय करने के लिए उसके 'आयुर्दाय' की जानकारी अवश्य कर लेनी चाहिए।

आयु एवं उसके भेद

ज्योतिष शास्त्र की मान्यता के अनुसार—"जन्मान्तरों में किये गये कर्मों का फल भोगने के लिए प्राणी को इस जीवन में जो जीवनावधि मिली है, वह आयु कहलाती है।" सामान्यतया जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त काल को आयु कहते हैं। यह आयु प्रारब्ध आदि कर्मों के प्रभाववश पूर्ण, मध्य या अल्प होती है। अल्पायु में जीवन की अधिकतम कालावधि, २३ वर्ष तक, मध्यायु में ७० वर्ष तक तथा पूर्णायु में १०० वर्ष तक होती है। कुछ एक लोगों की आयु १०० वर्ष से भी अधिक होती है, जिसे अमितायु कहते हैं।

आयु का निर्णय

आयु का निर्णय तीन प्रकार से किया जाता है—१. योग, २. निसर्गादि स्पष्टीकरण तथा ३. दशा। विविध योगों के द्वारा निर्णीत आयु को योगायु कहते हैं। योगायु का ज्ञान मुख्यतया निम्नलिखित ६ प्रकार के योगों द्वारा किया जाता है—

१—सद्योरिष्ट योग।
२—बालारिष्ट योग।
३—अल्पायु योग।
४ मध्यमायु योग।
५—पूर्णायु। दीर्घायु योग।
६—अमितायु योग।

सद्योरिष्ट होने पर जातक की अधिकतम आयु १ वर्ष की होती है। बालारिष्ट योग होने पर बालक की आयु २ वर्ष से १२ वर्ष तक की होती है। अल्पायु योग होने पर व्यक्ति की आयु १३ वर्ष से ३२ वर्ष तक की, मध्यमायु योग होने पर उसकी आयु ३३ वर्ष से ७० वर्ष तक की तथा पूर्णायु-दीर्घायु योग होने पर उसकी आयु ७१ वर्ष से १०० वर्ष की होती है। जिस व्यक्ति की कुण्डली में अमितायु योग होता है, उसकी आयु १०० वर्ष से अधिक की भी होती है।

उक्त योगों के द्वारा मनुष्य की आयु के बारे में एक स्थूल जानकारी ही मिल पाती है। क्योंकि इन योगों के द्वारा ज्ञात आयु की न्यूनतम एवं अधिकतम मर्यादाओं में

बीसियों वर्ष का अन्तर रहता है। अतः इन योगों द्वारा आयु की स्थूल जानकारी प्राप्त कर सूक्ष्मता के लिए उसका स्पष्टीकरण किया जाता है, जिसे निसर्गादि स्पष्टीकरण कहते हैं। मय यवन, मणित्थ, शक्ति, जीवशर्मा, सत्याचार्य एवं वराहमिहिर प्रभृति आचार्यों ने मनुष्य की आयु का स्पष्टीकरण करने के लिए जिन चार प्रमुख पद्धतियों का आश्रय लिया है, उन्हें यथाक्रमेण निसर्गायु, पिण्डायु, लग्नायु एवं अंशकायु कहते हैं।

उक्त चार पद्धतियों में से किस व्यक्ति की आयु का निर्णय किस पद्धति द्वारा करना चाहिए? इस विषय में बतलाया गया है कि मनुष्य की जन्मकुण्डली में लग्नेश, सूर्य एवं चन्द्रमा—इन तीनों में से जो ग्रह सर्वाधिक बलवान् हो उसके अनुसार आयु का स्पष्टीकरण करना चाहिए। यदि जन्मकाल में लग्नेश सर्वाधिक बली हो और उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो अंशायु की रीति से, यदि सूर्य सर्वाधिक बली हो तो पिण्डायु की रीति से तथा यदि चन्द्रमा सर्वाधिक बली हो तो निसर्गायु की रीति से आयु का स्पष्टीकरण करना चाहिये। यदि उक्त लग्नेश, सूर्य एवं चन्द्रमा में से कोई भी दो ग्रह तुल्यबली हों, तो उन दोनों के द्वारा आगत आयु का योगार्थ ग्रहण करना चाहिए। और यदि उक्त तीनों ग्रह तुल्यबली हों, तो अंशायु, पिण्डायु एवं निसर्गायु इन तीनों रीतियों से प्राप्त आयु का तृतीयांश ग्रहण करना चाहिये। किन्तु सत्याचार्य का मत है कि आयु का स्पष्टीकरण लग्नायु की रीति से ही करना चाहिए।

योगायु एवं निसर्गादि आयु के विचार करने की प्रक्रिया मे मनुष्य की आयु का विचार जन्मकालीन ग्रहस्थिति के अनुसार होता है, जो मनुष्य के जन्मजन्मान्तरों वे संचित कर्मों के फलों की द्योतक मानी गयी है। भारतीय ज्योतिष में संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण इन त्रिविध कर्मों के फल का विचार यथाक्रमेण जन्मकालीन ग्रहस्थिति, ग्रह दशा एवं गोचरीय ग्रह परिभ्रमण के आधार पर किया जाता है। जन्म-जन्मान्तरों में किये गये विविध कर्मों के फल का एकत्रित भण्डार संचित कहलाता है। कर्मों की विविधता के कारण संचित के फल में विविधता होती है, और इस विविधता के कारण संचित कर्मफल को एक साथ भोगा नहीं जा सकता। क्योंकि विविध कर्मों के परिणामस्वरूप मिलने वाले फल परस्पर विरोधी होते हैं। अतः इन्हें एक के बाद एक के क्रम से भोगना पड़ता है। वर्तमान जीवन में हम जितने कर्मफल को भोगना प्रारम्भ कर चुके हैं, उसे प्रारब्ध कहते हैं, जिसका विचार ग्रह दशाओं द्वारा किया जाता है। हमारे जीवन की अवधि या हमारी आयु के बारे में संचित की अपेक्षा प्रारब्ध निर्णायक भूमिका अदा करता है। इसीलिए भारतीय ज्योतिष के प्रणेताओं ने योगायु एवं निसर्गायु का विचार करने के साथ-साथ दशायु पर विशेष जोर दिया।

दशा के द्वारा निर्णीत आयु दशायु कहलाती है। दशायु द्वारा आयु का निर्णय करते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि योगायु के पूर्वोक्त ६ प्रकार के योगों में से सद्योरिष्ट, बालारिष्ट एवं अमितायु योग दशा की अपेक्षा नहीं रखते। सद्योरिष्ट एवं बालारिष्ट ये दोनों ऐसे योग हैं, जो न केवल जातक के पूर्वार्जित कर्मों की सूचना देते हैं,

अपितु वे उसके माता-पिता द्वारा किये गये अनुचित कर्मों की भी सूचना देते हैं। किसी भी बालक की जन्म के तुरन्त बाद या बचपने में मृत्यु होने का जितना महत्वपूर्ण कारण उसका पूर्वाजित कर्म है, उतना ही महत्व उसके माता-पिता के अनुचित आचरण को भी दिया जाता है। इसलिये इन दोनों योगों में दशा का विचार नहीं होता। अमितायु योग के होने पर व्यक्ति की आयु १०० वर्ष से अधिक की होती है, जो हमारी 'जीवेम शरदः शतम्' की इच्छा को पूरा कर देती है। अतः इस योग में भी दशायु का विचार नहीं किया जाता किन्तु अल्पायु, मध्यायु या पूर्णायु का योग होने पर मृत्युकाल का निर्णय दशायु की अपेक्षा रखता है। अतः इन योगों के होने पर योग एवं दशा की एकरूपता (संवाद) द्वारा मृत्युकाल का निर्णय करना चाहिए।

जैमिनी एवं पाराशर प्रभृति महर्षियों ने दशा के अनेक भेद बतलाये हैं। किन्तु मारकेश का निर्णय करने के लिये विंशोत्तरी दशा ही ग्राह्य मानी गयी है।[1] दशायु का विचार करते समय सर्वप्रथम व्यक्ति की कुण्डली में अल्पायु, मध्यायु या पूर्णायु के योगों द्वारा उसकी आयु का मोटा-मोटा अनुमान कर उक्त अल्पायु, मध्यायु या पूर्णायु की कालावधि के भीतर आनेवाली मारकेश ग्रहों की दशा एवं अन्तर्दशा द्वारा उसके मृत्युकाल का निर्णय किया जाता है।

कौन-सा ग्रह मारकेश होगा ?—इसका निर्णय करने के लिए आचार्यों ने निम्नलिखित वरीयता क्रम बतलाया है—

१—द्वितीय भाव का स्वामी।
२—सप्तम भाव का स्वामी।
३—द्वितीय भाव में स्थित पापग्रह।
४—सप्तम भाव में स्थित पापग्रह।
५—द्वितीयेश से युत पापग्रह।
६—सप्तमेश से युत पापग्रह।
७—व्ययेश से सम्बन्ध रखने वाला पापग्रह।
८—अष्टमेश।
९—मारकग्रहों के साथ बैठा शनि।
१०—षष्ठेश।
११—कुण्डली का निर्बल ग्रह।
१२—शुभ ग्रह।

योग द्वारा निर्णीत आयु की समाप्ति या उसकी कालावधि में उक्त वरीयता के क्रम से जिस ग्रह की महादशा हो वह ग्रह मारकेश कहा जाता है। इस मारकेश ग्रह की महादशा में इसके सम्बन्धी ग्रह या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा आने पर व्यक्ति की मृत्यु होती है।

---

१. 'दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या'—लघुपाराशरी १।३।

असाध्य रोग

आयु या मृत्युकाल का ज्ञान करने के बाद उस समय में उत्पन्न होने वाले रोगों पर विशेष ध्यान देना चाहिए क्योंकि वे रोग ही मृत्यु का एक कारण बनते हैं। अतः मृत्युकाल के आसपास में उत्पन्न होने वाला प्रत्येक छोटे से छोटा रोग असाध्य माना गया है। इसके अलावा दीर्घकाल तक चलने वाली दशाओं तथा योगों से उत्पन्न रोग भी असाध्य होते हैं।

साध्य रोग

यदि रोगारम्भ के समय रोगी की आयु समाप्त नहीं होती हो, और उसकी कुण्डली में दीर्घकालीन रोग का कोई योग न हो तो रोग साध्य होता है। साध्य रोग भी दो प्रकार के होते हैं – १. कृच्छ्रसाध्य एवं २. सुख साध्य। जो रोग चिकित्सा करने पर भी कठिनाई से ठीक होते हैं, उन्हें कृच्छ्रसाध्य रोग कहते हैं। अदृष्टनिमित्तजन्य सभी शारीरिक एवं मानसिक रोग इसी श्रेणी में आते हैं। ये रोग जन्मान्तर में किये गये अशुभ कर्मों के परिणामस्वरूप होते हैं। और उन कर्मों का फल भोगने पर ही ये ठीक होते हैं इन रोगों को आयुर्वेद में कर्मज रोग कहा जाता हैं।[१] रोगों के अलावा जन्मजात रोगों में से कुछ असाध्य तथा कुछ कृसाच्छ्रध्य होते हैं।

जो रोग चिकित्सा द्वारा जल्दी ठीक हो जाते हैं, उन्हें सुखसाध्य कहते हैं। इन रोगों का कारण अदृष्ट नहीं होता। अतः इनके कारण की जानकारी हो जाने से इनका निदान एवं चिकित्सा में सुविधा तथा सरलता रहती है। दृष्टनिमित्त जन्य रोगों में से अंगभंग आदि को छोड़कर शेष रोग सुखसाध्य होते हैं। यद्यपि आयुर्वेद में शाप एवं अभिचार आदि से उत्पन्न रोगों को असाध्य या कृच्छ्रसाध्य माना गया है, क्योंकि आयुर्वेद में उनके वास्तविक कारण के जानने या निदान की कोई निश्चित विधि नहीं है। किन्तु ज्योतिष शास्त्र में भय, शाप एवं अभिचार आदि के प्रभाववश उत्पन्न रोगों के कारण को जानने की सुगम रीति उपलब्ध है। अतः यहाँ इन्हें सुखसाध्य ही माना गया है। भारतीय ज्योतिष के वेत्ताओं का स्पष्ट मत है कि जब तक मृत्यु नहीं आती, दीर्घकाल तक रोग चलने का कोई योग, दशा आदि उपलब्ध नहीं होती या प्रबल अदृष्ट के प्रभाववश रोग उत्पन्न नहीं होता, तब तक प्रत्येक रोग सुखसाध्य रहता है।

रोग कब ठीक होगा ?

रोग कब ठीक होगा ?—इसका विचार करने के लिए पूर्वोक्त रीति से रोगों की साध्यता एवं असाध्यता का निर्णय कर लेना चाहिये। जो रोग साध्य होते हैं वे चिकित्सा करने से जल्दी या देर से ठीक हो जाते हैं। साध्य रोगों के ठीक होने के समय का ज्ञान

---

१. (क) पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये।
बाधते व्याधिरूपेण तस्य कृच्छ्रादिभिः शमः। —शातातपीयतन्त्र।
(ख) दुष्टामया इतरद्रव्यऋणापहारगुर्वंगनागमनविप्रवधादिभिर्वा।
दुष्कर्मभिस्तनुभृतामिह कर्मजास्ते नोपक्रमेण भिषजामुपयाति सिद्धिम्॥
—शार्ङ्गधर
—विमर्श—सुश्रुतसंहिता—उत्तरतन्त्रम् अ० ४० श्लो० १६३।

जिसे रोग की कालावधि भी कह सकते हैं, प्रश्नकालीन ग्रहस्थिति, गोचरीय ग्रहस्थिति एवं रोगारम्भ के नक्षत्र से किया जाता है। इसके अलावा जो रोग किसी ग्रह की दशा या अन्तर्दशा आदि के प्रभाववश उत्पन्न होते हैं, वे दशा आदि की समाप्ति पर स्वयं ठीक हो जाते हैं। इस प्रकार ग्रहदशा, गोचरीय ग्रहस्थिति, रोगारम्भ का नक्षत्र एवं प्रश्नकालीन ग्रहस्थिति का विचार कर रोग का समाप्तिकाल जाना जाता है।

रोग निवृत्ति के उपाय

जिस प्रकार प्रत्येक कर्म की सहायक सामग्री दृष्ट एवं अदृष्ट भेद से दो प्रकार की होती है, उसी प्रकार रोगों से मुक्ति के उपाय भी दृष्ट एवं अदृष्ट दोनों प्रकार के होते हैं। इनमें से दृष्ट उपायों को ग्रह चिकित्सा तथा अदृष्ट उपायों को प्रायश्चित्त कहते हैं।

ग्रह चिकित्सा तीन प्रकार की होती है—(१) दैवव्यपाश्रय (२) युक्ति व्यपाश्रय एवं (३) सत्यावश्रय। ज्योतिष शास्त्र की मान्यतानुसार सभी रोग पूर्वार्जित अशुभ कर्मों के परिणामस्वरूप होते हैं, जिसे दैव की प्रतिकूलता कहा जा सकता है। अतः दैव की प्रतिकूलता को दूर करने के लिए मणि धारण करना, दान करना एवं स्नान करना आदि को दैवव्यपाश्रय चिकित्सा कहते हैं। युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा में रोगों को उत्पन्न करने वाले दोषों तथा पथ्यापथ्य का विचार किया जाता है। इस चिकित्सा मे औषधियों पर विशेष जोर दिया गया। आयुर्वेद, यूनानी, होम्योपैथी, एलोपैथी एवं शल्यक्रिया आदि सब युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा की विविध पद्धतियाँ हैं। जिस चिकित्सा में मन को अनर्थों की ओर जाने से रोक कर दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति का प्रयास किया जाता है, उसे सत्याश्रय चिकित्सा कहते हैं। योग एवं दर्शन इसी चिकित्सा के अंग हैं।

प्रायश्चित्त भी तीन प्रकार के होते हैं—(१) अन्तर्मार्जन, (२) वहिर्मार्जन एवं (३) धर्मानुष्ठान। पूर्वार्जित अशुभ कर्मों के प्रभाव से दूषित अन्तःकरण की शुद्धि के लिए किये जाने वाले मन्त्रजप एवं ध्यान आदि को अन्तः मार्जन कहते हैं। ग्रह एवं वातावरण के प्रभाव से दूषित शरीर की शुद्धि के लिए किये जाने वाले स्नान, मार्जन एवं प्रक्षालन आदि को वहिर्मार्जन कहते हैं। अन्तः मार्जन एवं वहिर्मार्जन की क्रिया से हमारा अन्तःकरण एवं शरीर पूर्वार्जित एवं तात्कालिक अशुभ कर्मो के दूषित प्रभाव से मुक्त हो जाता है, दैव को अनुकूल बनाने की प्रक्रिया का नाम धर्मानुष्ठान है। जैसे खून की कमी वाले रोगियों को तुरन्त खून चढ़ाना आवश्यक होता है, उसी प्रकार देव की प्रतिकूलता या अनुकूलता वाले व्यक्तियों को धर्मानुष्ठान आवश्यक होता है। हवन, पूजन, तर्पण, प्रार्थना आदि सब धर्मानुष्ठान के अंग हैं, जो कि नवीन भाग्य का सृजन कर वर्तमान एवं भविष्य में आने वाले समस्त दुःखों से छुटकारा दिलाते हैं।

इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र के फलित ग्रन्थों में यत्र तत्र बिखरे हुए बहुमूल्य सिद्धान्तों द्वारा अन्वय-व्यतिरेक रूप कार्य-कारण जन्य अनुमान द्वारा मनुष्य के जीवन में आने वाले रोगों का पूर्वानुमान किया जा सकता है। उसके साथ ही रोगोत्पत्ति, उसकी समाप्ति तथा रोगों का साध्यासाध्यत्व आदि जानकर उनकी सफलतापूर्वक चिकित्सा की जा सकती है।

—शमिति—

सहायक ग्रन्थ सूची

पुस्तक का नाम	लेखक सम्पादक प्रकाशक
उत्तरकालामृत	कालीदास, गोपाल एण्ड कं० दिल्ली, १९७६।
एस्ट्रोलाजी एण्ड माडर्न थाट	बी० वी० रामन्, राजेश्वरी, बेंगलोर।
कर्मविपाकसंहिता	भार्गव पुस्तकालय, काशी सम्वत् १९८९।
गदावली	आचार्य चक्रधर जोशी, श्री लक्ष्मीधर विद्या मन्दिर, देवप्रयाग, सन् १९५८।
गणकतरंगिणी	सुधाकर द्विवेदी, गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, काशी।
चमत्कारचिन्तामणि	भाव प्रबोधिनी टीका, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वारासणी।
चरक संहिता १ भाग	विद्योतिनी टीका, चौखम्वा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९७७।
चरक संहिता २ भाग	विद्योतिनी टीका, चौखम्वा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९७०।
जातकचन्द्रिका	जयदेव कवि, गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, बम्बई, सन् १९७०।
जातकतत्त्व	दैवल महादेव शर्मा, भुवनेश्वरी यन्त्रालय, रतलाम, सन् १९१५।
जातकपारिजात	वैद्यनाथ विरचित, चौखम्वा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९४२।
जातकाभरणम्	सं० अच्युनानन्द झा, चौखम्वा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी, सन् १९५१।
जैमिनीपद्यामृतनम्	निर्णयसागर प्रेस, बम्वई, १९२५।
जैमिनीयसूत्र	चौखम्वा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९५६।
ताजिकनीलकण्ठी	नीलकण्ठदैवज्ञ, चौखम्वा संस्कृत सीरिज आफिस, बनारस १९५०।
दैवज्ञकल्पद्रुम	पं० गंगाराम मुखोपाध्याय, भवानी शंकर एण्ड सन्स, धौलपुर
दैवज्ञाभरणम्	गवर्नमेण्ट औरियन्टल मेन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी मद्रास, सन् १९५४।
प्रश्नचण्डेश्वर	दैवज्ञ रामकृष्ण, गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, बम्बई, सम्वत् २०१२।
प्रश्नज्ञान	भट्टोत्पल, बंगलौर, सन् १९७१
प्रश्नज्ञानप्रदीप	महाराज शंभुसिंह, गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, बम्बई, सन् १९५८।
प्रश्नभैरव	बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा, १९४२।
प्रश्नमार्ग, १ भाग	सं० शुकदेव चतुर्वेदी रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९७८।
प्रश्नमार्ग २ भाग	सं० शुकदेव चतुर्वेदी, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९७९।
प्रश्नशिरोमणि	रुद्रमणि, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, सन् १९६२।
फलदीपिका	मन्त्रेश्वर, मोतीलाल वनारसीदास, दिल्ली, सन् १९७५।
वृहज्जातक	सं० अच्युतानन्द झा, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, १९७६।
वृहज्जातक	वराहमिहिर—ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स, वाराणसी, संवत् २०३१।
वृहज्जातक	वी० सुब्रह्मण्यम् शास्त्री, बंगलौर, सन् १९७१।
वृहत्पाराशर होराशास्त्रम्	म० खेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद, वाराणसी, सन् १९६८।

बृहत्संहिता	सं० अच्युतानन्द झा. चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी।
बृहत्संहिता	भट्टोत्पल टीका, सं० अवधबिहारी त्रिपाठी सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् १९७६।
बृहत्यवन जातकम्	गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, बम्बई, सन् १९५३।
भारतीय ज्योतिष	डा० नेमिचन्द शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, सन् १९७८।
भारतीय ज्योतिष	शं० बा० दीक्षित, हिन्दी अनुवाद शिवनाथ झारखण्डी हिन्दी समिति, उ० प्र० सरकार, लखनऊ।
भावकुतूहल	जीवनाथ झा, ब्रजवल्लभ हरिप्रसाद, कालबादेवी रोड़, बम्बई।
भावदीपिका	भास्कराचार्य, गोयल एण्ड कं०, दिल्ली, १९७३।
भावप्रकाश	जीवनाथ दैवज्ञ, मास्टर खेलाड़ी लाल एण्ड संस, वाराणसी, शक सं० १८८६।
भुवनदीपक	सं० शुकदेव चतुर्वेदी, रंजन पब्लिकेशंस, दिल्ली, १९७६।
मन्त्रमदोदधि	कमलाकर भट्ट-खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई शक १८६४।
मन्त्रमहोदधि-मोहिनी व्याख्या	सं० शुकदेव चतुर्वेदी, प्राच्यप्रकाशन, वाराणसी, सन् १९८०
मानसागरी पद्धति	चौखम्वा संस्कृत सीरिज, वाराणसी।
मुहूर्तचिन्तामणि	रामदैवज्ञ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सन् १९७२।
मुहूर्तमार्तण्ड	चौखम्वा संस्कृत सीरिज, वाराणसी।
मूकप्रश्नविचार	शुकदेव चतुर्वेदी, रंजन पब्लिकेसन्स, दिल्ली, १९७७।
लघुजातक	आचार्य वराहमिहिर, गंगा पुस्तकालय, वाराणसी, सन् १९५८।
लघुपाराशरी	गंगा पुस्तकालय, वाराणसी, १९४८।
वीरसिंहावलोक	वीरसिंहकृत, गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, बम्बई, सम्वत् १९८१।
सत्यजातकम्	रंजन पब्लिकेसंस, दिल्ली, १९७९।
सर्वार्थचिन्तामणि	गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, बम्बई सम्वत् २०१२।
सारावली	कल्याण वर्मा, मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड संस, वाराणसी सम्वत् २००३।
सिद्धान्त शिरोमणि	गणिताध्याय, महामण्डल शास्त्र प्रकाशक समिति, काशी, १९१३।
सुश्रुतसंहिता	आयुर्वेद तत्वसन्दीपिका, चौखम्वा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी; १९१३।
सुश्रुतसंहिता—उत्तरतन्त्रम्	चौखम्वा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी, १९७४।
सूर्य सिद्धान्त	सं० कपिलेश्वर शास्त्री, चौखम्वा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, सन् १९४६।

ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार

डॉ० शुकदेव प्रसाद चतुर्वेदी

प्रस्तुत ग्रन्थ में ग्रहों का मानव जीवन पर प्रभाव, ग्रहों के प्रभाव को जानने के साधन, ज्योतिष एवं कर्मवाद, ज्योतिष एवं आयुर्वेद, रोगोत्पत्ति के कारण एवं ज्योतिषशास्त्र में रोग विचार की ऐतिहासिक परम्परा का विवेचन किया गया है।

इस ग्रन्थ के नौ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में रोगों की जानकारी के प्रमुख उपकरण, योग, उसके भेद एवं उदाहरण तथा रोग विचार के प्रसंग में ग्रह, राशि एवं भावों का परिचय दिया गया है। द्वितीय अध्याय में रोगपरिज्ञान के सिद्धान्त तथा रोगों का वर्गीकरण है। तृतीय अध्याय में जन्मजात रोगों का जैसे जन्मान्धता, काणत्व, मूकता, चतुर्थ अध्याय में दृष्टिनिमित्तजन्य (आकस्मिक) रोगों का जैसे चेचक, हैजा, तपेदिक। पञ्चम् अध्याय में अदृष्टिनिमित्तजन्य शारीरिक रोगों का जैसे नेत्र, कर्ण, नासा, दन्त, तालु, कण्ठ, गल, हृदय, नाभि, गुर्दा, शिश्न, गुदा आदि के रोगों का, छठवें अध्याय में वात, पित्त, कफ आदि विकारजन्य रोगों का, सातवें अध्याय में मानसिक रोगों जैसे उन्माद आदि, आठवें अध्याय में ग्रहों की दशा में उत्पन्न होने वाले दोष, नौवें अध्याय में ग्रह दशा के अनुसार साध्य एवं असाध्य रोगों का विवरण दिया गया है।

प्राचीन पुस्तकों को आधार बनाकर लिखी गई यह पुस्तक रोग शान्ति के लिये अतीव उपयोगी सिद्ध होगी।

मूल्य : रु० ४५